“रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान”

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

को

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेत प्रस्तत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोध–निर्देशिका

डॉ. वत्सला

विभागाध्यक्ष – संस्कृत

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय.

झालावाड (राज.)–326001

शोधकर्त्री

विनिता शर्मा

संस्कत–विभाग

कोटा विश्वविद्यालय. कोटा

वर्ष 2016

CERTIFICATE

I feel great pleasure in Certifying that the thesis entitled **"RAMKATHA KO ABHIRAJ RAJENDRA MISHRA KA YOGDAN"** embodies a record of the results of investigations carried out by Vinita Sharma under my guidance. I am satisfied with the analysis of data, inter pretation of results and conclusions drawn.

She has completed the resiential requirement as per rules.

I recommend the submission of thesis.

Date :

Name & Designation of Supervisor

Dr. Vatsala

Head of the Department-Sanskrit

Govt. Post Graduate College
Jhalawar (Raj.)-326001

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधकर्त्री विनिता शर्मा ने संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ में दो वर्ष से अधिक समय तक उपस्थित रहकर **"रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान"** विषय पर शोध प्रबन्ध तैयार किया है।

इनका यह कार्य पूर्णतया मौलिक है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

शोध–निर्देशिका

डॉ. वत्सला

विभागाध्यक्ष – संस्कृत

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय.

झालावाड (राज.)–326001

प्राक्कथन

21वीं शताब्दी से भारतीय विश्वविद्यालयों में आधुनिक साहित्य पर शोध करने की परम्परा चल पड़ी है और शोध कार्य भी सशरीरी (जीवित) महाकवियों की कृतियों पर किया जा रहा है जो अधुनातन संस्कृत साहित्य की साधना में मनसा, वाचा, कर्मणा संजुष्ट हैं। प्रस्तुत शोध **''रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान''** इसी परम्परा से अभिप्रेरित है। इस शोध परम्परा के प्रवर्तमान होने के दो कारण मेरी अल्पमति में समझ में आते हैं, पहला कारण यह है कि आधुनिक कवि की कृतियाँ, उनका जीवन वृत्त आदि अति सुगमता से उपलब्ध हो जाते हैं एतदर्थ शोधार्थी को उपर्युक्त तथ्यों के लिए ज्यादा श्रम नहीं करना पड़ता और महाकवि भी सहर्ष शोध सामग्री को शोधार्थी को प्रेषित कर देते हैं। इसके विपरीत प्राच्य कवियों की कृतियों, उनकी तिथियों तथा जीवन वृत्त आदि का अन्वेषण करना श्रमसाध्य कार्य होता है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि आज पूरा देश व समाज आधुनिकता परस्ती में संलग्न है (आधुनिकता की दौड़ में शामिल है) चाहे आधुनिकता का स्वरूप कैसा भी हो। यह आधुनिकता परिवार, समाज, कला, साहित्य, संस्कृति, (रीति–रिवाज, आचार–विचार, खान–पान, वेश–भूषा) आदि में दृष्टिगोचरीभूत हो रही है एतदर्थ साहित्य में शोधकार्य भी आधुनिकता से अछूता नहीं रहा और परम्परा का यह प्रक्रम चल पड़ा।

आर्ष महाकाव्य वाल्मीकि रामायण सहस्राब्दियों से रामकथा आधृत ग्रन्थों का उपजीव्य रहा है। रामकथा का आश्रयण कर शताधिक ग्रन्थ प्राचीनकाल से लेकर अधुनातन प्रणीत किए गए हैं लेकिन सभी ग्रन्थों में प्रमुखता राम के चरित्र की है। यद्यपि वाल्मीकि अपने आदिकाव्य में स्वयं लिखते हैं कि इसमें सीता का चरित्र प्रधान रूप से प्रतिपादित किया गया है–

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः ।।

इस उद्धरण से रामायण सीताचरित प्रधान महाकाव्य है किन्तु प्राचीनकाल में रामकथा अवलम्बित जितने भी ग्रन्थ प्रणीत किए गए हैं सभी में रामचरित का ही संकीर्तन किया गया है क्योंकि प्राचीनकाल में कवियों की दृष्टि नारी के प्रति उदासीन रही है। किन्तु आधुनिक युग में जब से नारीवादी चेतना, नारी अस्मिता, महिला सशक्तिकरण का सूत्रपात हुआ है तब से नारी के प्रति सामाजिक चेतना में परिवर्तन होने के साथ ही कवियों की लेखनी को भी नई दृष्टि व नई चेतना मिली है। यही कारण है कि आधुनिक काल में वैदिक, पौराणिक तथा महाभारतीय नारियों के चरित्रों को आधृत कर नाटक एवं महाकाव्य प्रणीत किए गए हैं। नाटकों में यथा– कृष्णलाल कृत मैत्रेयी, चन्द्रभानु त्रिपाठी कृत उर्वशी, वेदकुमारी घई कृत मदालसा व मेनका वात्सल्यम्, कृष्णमणि त्रिपाठी कृत सावित्री, परीक्षित शर्मा कृत सावित्री, ब्रह्मदेव शास्त्री कृत सावित्री, डॉ. बलभद्र प्रसाद गोस्वामी कृत सैरन्ध्री, रामजी उपाध्याय कृत कैकेयीविजयम् तथा सीताभ्युदयम्, लीलाराव कृत मीराचरित, डॉ. एम. एल. शर्मा कृत सावित्रीचरितम् आदि प्रमुख नाटक हैं। महाकाव्यों में यथा– विष्णुदत्त शर्मा कृत सौलोचनीयम्, आत्माराम शास्त्री प्रणीत सावित्रीचरित्रम्, श्रीनारायण शुक्ल कृत उर्मिलीयम्, आगेटिपरीक्षित शर्मा कृत यशोधराचरितम्, सुभाषचन्द्रपंत प्रणीत झाँसीश्वरीचरितम्, कालिका प्रसाद शुक्ल कृत राधाचरितम्, रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत उत्तरसीताचरितम्, डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत जानकीजीवनम्, बलभद्र शास्त्री प्रणीत इन्दिराजीवनम्, भीमकान्त पन्त प्रणीत जगदम्बिकावैभवम्, हरिनारायण दीक्षित कृत राधाचरितम् आदि प्रमुख महाकाव्य हैं।

नारी के प्रति समाज में परिवर्तन के साथ ही आधुनिक काव्यशास्त्रियों जैसे अभिराज जी ने अपने महाकाव्य लक्षण में भी यह तथ्य सम्पृक्त किया है कि महाकाव्य का मुख्य पात्र स्त्री या पुरुष (लोकविख्यात) कोई भी हो सकता है। स्वनिर्मित महाकाव्य के लक्षणानुसार महाकवि ने सीता को नायिकात्व प्रदान करते हुए 21 सर्गों के महाकाव्य का प्रणयन किया है। महाकवि ने रामकथा की अभिनव परम्परा का बीजारोपण किया है यद्यपि महाकवि के महाकाव्य का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है

किन्तु कविवर्य ने अपने प्रातिभ प्रकर्ष चाक्षुष प्रतिभा से महाकाव्य के कई सर्गों में नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्भावनाएँ 17वें, 18वें एवं 19वें सर्ग में सीता निर्वासन के प्रसंग में की हैं। राम द्वारा सीता निर्वासन का प्रसंग सहस्राब्दियों से असमाधेय रहा है। इस प्रस› पर अनेक प्रश्न चिह्न समुपस्थापित किए जाते रहे हैं। रामकथानुरागियों, रामकथा प्रवाचकों द्वारा नाना प्रकार के तर्क प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, नारीवादी चिन्तकों द्वारा अनेकानेक प्रकार के तर्क–वितर्क किए जाते रहे हैं, नारी अस्मिता पर नारीवादी चिन्तकों द्वारा आरोप–प्रत्यारोप लगाए जाते रहे हैं, सदियों से नारी जाति के मस्तिष्क में विचारों का सैलाब उमड़ता रहा है। युग–युगान्तरों से प्रश्नों की परिघा से आवेष्टित, सीता निर्वासन पर उठे नाना विप्रतिपत्तियों का समाधान किसी भी प्राच्य कवि ने स्वरसपरिग्रहवती प्रतिभा से करने का उपक्रम नहीं किया है क्योंकि प्राच्य कवियों की दृष्टि नारी अस्मिता के प्रति उपेक्षापूर्ण रही है किन्तु 21वीं शताब्दी में महाकवियों ने सीता निर्वासन के प्रसंग को अपनी अलौकिक कल्पना शक्ति से दिव्यता एवं नव्यता प्रदान की है। इन महाकवियों में डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, रामजी उपाध्याय व डॉ. अभिराज जी प्रमुख हैं।

महाकवि ने विर×च विरचित भूतल पर सदियों से सातत्येन प्रवहमान रामकथा में अनुत्तरित सीता निर्वासन के प्रस› की उपश्रुति (स्वीकारोक्ति) को नकारते हुए तथा प्रकृत प्रस› को नारी अस्मिता से संजुष्ट करते हुए स्वचिंतन, स्वाध्याय तथा अध्यवसाय से अपनी नवीन मौलिक कल्पनाशक्ति से नवीन इन्द्रधनुषी रंगों से सुसज्जित कर अभिनव उत्तमोत्तम प्रकल्प के रूप में समुपस्थापित किया है। महाकवि ने सीता निर्वासन पर उठे नाना दंशों का समाधान कर नारी जाति की इतिकर्त्तव्यता (उपकारिता) की भी सिद्धि की है। कविपु›व ने अपने महाकाव्य में सीता निर्वासन का शमन लोकतांत्रिक प्रणाली द्वारा करके अति उत्तम विकल्प प्रस्तुत किया है जो परमप्रीतिदायक, परमतोषदायक तथा हर्षातिरेक से आह्लादित करने वाला है।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वर्तमान समय में सीता चरित्र ही क्यों? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अपसंस्कृति, वैश्वीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति एवं बाजारवाद के परिणामस्वरूप हमारे सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों (प्रतिमानों) में अनेकविध विकारों का जन्म हुआ है। इसका सर्वाधिक प्रभाव विवाह संस्कार, परिवार तथा दाम्पत्य सम्बन्धों पर पड़ा है, जैसे भोगवादी संस्कृति का प्रसृत एवं प्रचलित होना, स्त्रियों का चारित्रिक एवं नैतिक अधःपतन, लिव इन रिलेशनशिप, एकाकी मातृत्व, प्रेम विवाह, डिस्को व पब संस्कृति के प्रचलन का प्रसृत होना, समलैंगिकता को विधिक मान्यता मिलना, यौन शुचिता का नकारा जाना, यौन शुचिता की महत्ता का विस्थापन (विवाहेतर एवं विवाह पूर्व सम्बन्ध), दाम्पत्य सम्बन्धों में निष्ठा व पारस्परिक विश्वास में कमी, पारिवारिक व सामाजिक जीवन में समरसता का अभाव, पति–पत्नि के सम्बन्धों में सम्मान की कमी, महिलाओं की पारिवारिक दायित्वों से विमुखता आदि तीव्र गति से आ रहे परिवर्तन की आँधी में हमारे संस्कार व सांस्कृतिक मूल्य विशीर्ण हो रहे हैं। आज आधुनिकीकरण एवं स्त्री शिक्षा के परिणामस्वरूप आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने, अपना भविष्य सँवारने तथा अपनी सोच से अपनी जीवन शैली को जीने की लालसा में महानगरों में सुशिक्षित युवतियाँ रावणों के हाथ की कठपुतली बन जाती हैं। धन प्राप्ति की इस स्पृहा में छद्म वेश में नारी के शोषण व उत्पीड़न की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में सीता का चरित्र ही आज की नारी के लिए पथ–प्रदर्शक बन सकता है। रावण द्वारा अनेक प्रलोभन दिए जाने पर भी सीता ने अपने सतीत्व को नष्ट नहीं होने दिया तथा रावण की महिषी बनना स्वीकार नहीं किया। अपसंस्कृति के प्रति समाकर्षित नारी जाति को सीता चरित्र के माध्यम से ही अनाकर्षित किया जा सकता है। यदि नारी स्वतंत्रता की अभिलाषा रखती है तो उसे सीता की तरह पतिव्रता बनना पड़ेगा। भारतीय सभ्यता व संस्कृति के संरक्षणार्थ सीता चरित को पौनःपुन्येन अधीत एवं अध्यापित करने की महती आवश्यकता इस संक्रमण काल में है।

ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण सीता के चरित्र पर आधृत 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का अध्ययन ''रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान'' इस शीर्षक से निम्नलिखित विचार बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में किया गया है–

1. **प्रथम अध्याय– विषय प्रवेश; वाल्मीकि रामायण की कथा**
2. **द्वितीय अध्याय– रामकथा का अभिनव स्वरूप 'जानकीजीवन' महाकाव्य**
    1. सर्गानुसार कथासार
    2. कथा का परिणत स्वरूप
3. **तृतीय अध्याय– रामकथा आधृत महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण**
4. **चतुर्थ अध्याय– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का पूर्णा› विवरण**
    1. जन्म स्थान एवं समय
    2. शिक्षा एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ
    3. सम्मान एवं पुरस्कार
    4. कवि की रचनाधर्मिता
5. **पंचम अध्याय– महाकाव्य का महाकाव्यत्व**
    1. महाकाव्य का लक्षण– प्राच्य काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त काव्य लक्षण तथा अर्वाचीन काव्य शास्त्रियों द्वारा प्रदत्त काव्य लक्षण
    2. वस्तु विभाजन– इतिवृत्त तथा इतिवृत्त के अन्य तत्त्वों का विवेचन
    3. नेता– प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण
    4. रस– महाकाव्य में प्रयुक्त रस, गुण, रीति, अलंकार व छन्द का विवेचन
    5. भाषा–शैली
    6. वर्णन कौशल

6. षष्ठ अध्याय– 1. रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदानः (सीता निर्वासन के विशेष संदर्भ में)
2. पूर्व कवियों का प्रभाव व उत्तरकाल को कवि की देन
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के नारी अस्मिता विषयक विचार
4. महाकाव्य में तेजस्विनी नारी के रूप में सीता

7. उपसंहार– शोध अध्ययन की उपलब्धि

8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को परीक्षार्थ प्रस्तुत करने के शुभ लगन में अनेक विद्वानों एवं अपने परिवेश के आत्मीयजनों से परम सहयोग एवं स्नेह की प्राप्ति हुई है अतः इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम पावन दायित्व मानती हूँ। सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध रूपी दीर्घकालीन अनुष्ठान की बेला में मुख्य भूमिका की निर्वाहिका स्नेहमयी, त्यागमयी, कोमलहृदया, विद्वता एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मेरी शोध निर्देशिका डॉ. वत्सला जी के प्रति मेरा हृदय अपार श्रद्धा, भक्ति, नम्रता एवं सम्मान से आप्लावित है। शोध के प्रारूप तथा विषय विस्तार के निर्धारण में मेरी शोध निर्देशिका डॉ. वत्सला जी ने मेरी जो सहायता की, उसके लिए उन्हें धन्यवाद देने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। उन्होंने न केवल शोध की रूपरेखा का लेखाŠन कराया है अपितु पुस्तकों को भी प्रदान कर अद्वितीय सहयोग दिया है। आद्योपान्त शोधकार्य का अक्षरशः अध्ययन, संशोधन एवं परिमार्जन करते हुए उन्होंने उदारता, सहृदयता तथा शिष्य वत्सलता का जो निदर्शन प्रस्तुत किया है तदर्थ मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदित करती हूँ। मैं इनके वैदुष्य मण्डित एवं गरिमामय सान्निध्य से अत्यन्त प्रभावित रही हूँ। इनके सान्निध्य एवं सम्पर्क से प्राप्त सकारात्मक ऊर्जा ने उद्वेग एवं संशय के क्षणों में मुझे ऊर्जस्वित किया है। हर कठिन परिस्थिति में सम्बल प्रदान करते हुए मेरे अन्दर नवीन ऊर्जा एवं प्रेरणा का संचार कर मेरा मार्गदर्शन किया है।

करूणा की प्रतिमूर्ति मातृसदृश डॉ. वत्सला जी ने मात्र शोध के क्षेत्र में ही मेरा पथ प्रदर्शन नहीं किया है बल्कि इन्होंने अपने उत्कृष्ट जीवनानुभवों से मुझे व्यवहारिक ज्ञान प्रदान कर तिमिराच्छन्न मेरे जीवन को आलोकित किया है। इनकी असीम वात्सल्यमयी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से ही यह शोध प्रबन्ध सम्पन्न हो सका है। मैं अपना शोध प्रबन्ध सर्वात्मना इन्हीं के श्रीचरणों में समर्पित करती हूँ। इसके साथ ही झालावाड़ महाविद्यालय के उपाचार्य श्री के.बी. भारतीय जी की भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है।

शोध प्रबन्ध की पूर्णता में डॉ. दीपक सिंह जी एवं श्री वैभव सिंह जी (प्रिंसिपल व निदेशक मॉडर्न स्कूल, कोटा) की सदैव हृदय से ऋणी रहूँगी जिन्होंने मुझे अपनी अँगनाई में प्रश्रय प्रदान कर, शोध अध्ययन के लिए आवश्यक प्रशान्त एवं स्निग्ध वातावरण उपलब्ध करवाकर मुझे उपकृत किया है। इसके साथ ही श्री सतीश शर्मा एवं श्री डेविड डिसूज़ा जी की भी मैं हृदय से आभारी हूँ, इनके स्नेहशील व प्रेरणास्पद सान्निध्य ने मुझे हर समय नई स्फूर्ति प्रदान की है।

परम वन्दनीय कविवर्य डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की मैं चिर ऋणी हूँ, जिन्होंने शोध प्रबन्ध की पूर्णता के लिए 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य तथा अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लिखित पुस्तकें प्रेषित कर मेरे शोध कार्य को अति सुगम बनाया है। इन्होंने शोध प्रबन्ध के लिए आवश्यक अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व विषयक सूचना के सम्बन्ध में उठने वाली विविध जिज्ञासाओं का अत्यन्त स्नेहपूर्वक शमन कर मुझे कृतार्थ किया है। इनके साथ ही सन्दर्भ ग्रन्थों के विद्वान लेखकों की भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिनके अमूल्य ग्रन्थ रत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में शोध प्रबन्ध की पूर्णता में सहायक सिद्ध हुए हैं।

शोध कार्य के प्रेरणास्रोत परम पूजनीय दादीजी श्रीमती शान्ति देवी, माता–पिता श्री त्रिलोक चन्द उपाध्याय– श्रीमती रेखा उपाध्याय, श्री गुलाब चन्द शर्मा –श्रीमती शशि शर्मा के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करने का साहस मुझमें नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि इनके स्नेह एवं आशीर्वाद के बिना मेरा शोध क्षेत्र में पदार्पण करना

असंभव था। शोधकार्य के लिए आवश्यक तकनीकि सुविधाएँ उपलब्ध करवाने के लिए मैं अपने जीजाजी श्री एल.बी. शर्मा व दीदी श्रीमती नमिता शर्मा एवं अनुज अभिषेक शर्मा के प्रति विशेष आभार ज्ञापित करती हूँ। डॉ. शालिनी, डॉ. प्रदीप, प्रियंका, नितिन, महिमा, अर्पित, राहुल, श्रद्धा, प्रश्रय एवं मानविक आदि आत्मीयजनों को विशेष सहयोग हेतु धन्यवाद देती हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य सभी परिवारजनों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय–समय पर मुझे विश्वास, सम्बल व आवश्यक सहयोग प्रदान कर मेरे कण्टकाकीर्ण मार्ग को सरल बनाया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आदि से लेकर अन्त तक की कठिन यात्रा में पूर्ण निष्ठा, लगन व तत्परता से साथ निभाने वाले अपने सहधर्मी श्री अंकित राय उपाध्याय के प्रति मैं श्रद्धा से अवनत हूँ। इनके सहयोग व सत्प्रेरणा से ही यह कठिन कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका।

शोध कार्य में पुस्तकों की अनिवार्यता अपरिहार्य होती है अतः आवश्यक पुस्तकों को उपलब्ध करवाने हेतु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय झालावाड़ व सदाशिव विठ्ठलनाथ संस्कृत महाविद्यालय कोटा के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने पुस्तकें प्रदान कर मेरे शोध कार्य की पूर्णान्विति में सहयोग प्रदान किया है। साथ ही मैं टŠण कार्य के लिये परम कम्प्यूटर की शबनम खान, जिनके अथक एवं स्नेहिल सहयोग से यह शोध कार्य अन्तिम रूप प्राप्त कर सका, उनके प्रति आभार प्रदर्शन के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। इस कार्य को पूर्ण करने में जिस सहयोग एवं स्नेह का उन्होंने परिचय दिया, निश्चय ही वह शब्दातीत है।

अन्त में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करती हुई मेरा नम्र निवेदन है कि संसाधनों के परिसीमित होने के कारण सतत प्रयास करने पर भी यदि त्रुटियाँ रह गईं हैं तो विद्वान परीक्षक, सुधी सज्जन उसे क्षमा की दृष्टि से देखने की कृपा करेंगे तथा अल्पज्ञा शोधार्थिनी को परामर्श व सुझाव देकर उपकृत करेंगे।

विनिता शर्मा

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृ.सं.
1. प्रथम अध्याय	विषय प्रवेश : वाल्मीकि रामायण की कथा	1–25
2. द्वितीय अध्याय	रामकथा का अभिनव स्वरूप : 'जानकीजीवन' महाकाव्य	26–56
	1. सर्गानुसार कथासार	
	2. कथा का परिणतस्वरूप	
3. तृतीय अध्याय	रामकथा आधृत महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण	57–79
4. चतुर्थ अध्याय	डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का पूर्णा› विवरण	80–100
	1. जन्म स्थान एवं समय	
	2. शिक्षा एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ	
	3. सम्मान एवं पुरस्कार	
	4. कवि की रचनाधर्मिता	
5. पंचम अध्याय	महाकाव्य का महाकाव्यत्व	101–178
	1. महाकाव्य का लक्षण	
	2. वस्तु विभाजन	
	3. पात्रों का चरित्र–चित्रण	
	4. रस	
	5. भाषा–शैली	
	6. वर्णन कौशल	
6. षष्ठ अध्याय	1. रामकथा को डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान : (सीता निर्वासन के विशेष सन्दर्भ में)	179–254
	2. पूर्व कवियों का प्रभाव व उत्तरकाल को कवि की देन	
	3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के नारी अस्मिता विषयक विचार	
	4. महाकाव्य में तेजस्विनी नारी के रूप में सीता	
7. उपसंहार		255–262
8. संदर्भ ग्रन्थ सूची		263–267

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश : वाल्मीकि रामायण की कथा

विषय प्रवेश : वाल्मीकि रामायण की कथा

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौ×चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[1]

तमसा तट पर काममोहित क्रौ×च पक्षी के वध से आहत, क्रौ×ची के करुण क्रन्दन से द्रवित हृदय वाले महर्षि वाल्मीकि के मुख से अनायास ही छन्दोबद्ध जिस पद्य की रचना हुई, परमपिता के आदेश से उसी को आधार मानकर आदिकवि वाल्मीकि ने संस्कृत साहित्यजगत में काव्यात्मक पद्यमय 'रामायण' की सर्जना की। 'चतुर्विंशति साहस्री संहिता', 'आर्षकाव्य' आदि नामों से अभिहित इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक हैं, जो सात काण्डों एवं पाँच सौ सर्गों में विभाजित हैं, जिसके प्रत्येक सर्ग में सियाराम के पवित्र चरित्र का काव्यात्मक निबन्धन किया गया है।[2] वैसे तो रामकथा से कोई भी भारतवासी अनभिज्ञ नहीं होगा। रामानंद सागर द्वारा टी.वी. पर प्रसारित धारावाहिक के माध्यम से भारत का हर बालक, युवा, वुद्ध, नर–नारी सभी इस कथा से सुपरिचित हैं अतः देश–देशान्तर में व्याप्त विस्तीर्ण कीर्ति वाली सियारामचन्द्र की कथा का यहाँ परिचय देने का कोई औचित्य नहीं है किन्तु मेरे शोध विषय के महाकाव्य का मूलकथानक वाल्मीकि रामायण है अतः विषय प्रवेश की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण की कथा को प्रस्तुत किया जा रहा है। वाल्मीकि कथा को प्रस्तुत करने का कारण यह भी है कि वाल्मीकि रामायण वर्तमान समय में जन–जन में इतनी लोकप्रिय नहीं है जितनी कि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस'। यद्यपि वाल्मीकि की कथा को आश्रय करके जैन एवं बौद्ध धर्मों में भी रामकथा लिखी गई इसके पश्चात् अनेक भाषाओं में, अनेक देशों में रामकथा लिखी गई है जिनका मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण ही है, इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय वाल्मीकि ने रामकथा की रचना की उस समय यह कथा लोक प्रचलित थी एवं आने वाली कई सहस्राब्दियों तक प्रचलित रही होगी। परन्तु देश–काल की परिस्थितियों के बदलने से, देश में मुस्लिम आक्रमण होने हिन्दू मन्दिरों के तोड़ने एवं शैव–शाक्त आदि अनेक धर्म एवं सम्प्रदायों के देश में व्याप्त होने से लोगों को कोई

---

1. रामायण–बालकाण्ड–2 / 15
2. वही–4 / 2

मार्ग नहीं सूझ रहा था ऐसे में तुलसी ने राम की भक्ति का गुणगान करके निराशा व दिशाहीनता से भ्रमित जनमानस को एक नई दिशा दी और उसी दिशा में लोग प्रवाहित होते चले गए। दोनों कृतियों के बीच शताधिक सहस्त्राब्दियों का सुदीर्घ अन्तराल होने के कारण तुलसी का मानस लोकप्रियता को प्राप्त करता चला गया यही कारण है कि तुलसी कृत रामचरित का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण होने के बाद भी प्रत्येक घर में 'रामचरितमानस' का परायण किया जाता है, वाल्मीकि कृत रामायण का नहीं। 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता के कारण ही केन्द्र सरकार ने 31 अगस्त 2015 को 'रामचरितमानस' का डिजिटल ऑडियो सी.डी. जारी किया है। जबकि वाल्मीकि आर्षकवि हैं और वाल्मीकि रामायण आर्ष महाकाव्य है। आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' की मूलकथा से प्रायः संस्कृत जगत के लोग परिचित होगें किन्तु सम्भवतः जनसामान्य अनभिज्ञ ही होगा। अपने सरलतम तथा काव्यात्मक निबन्धन के कारण तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ही लोगों के मध्य में अधिक लोकप्रिय है। वाल्मीकि कृत रामायण की कथा का संक्षिप्त कथासार इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे कि इस कथासार को पढ़कर प्रत्येक वर्ग रामायण की मूलकथा को अधिगम कर सकें, उससे सुपरिचित हो सकें, लाभान्वित हो सकें। सप्त काण्डों में विभक्त वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त कथासार निम्न प्रकार है–

1. **बालकाण्ड** – बालकाण्ड में महर्षि वाल्मीकि ने रामजन्म से लेकर सीता–राम विवाह तक की मुख्य कथा के साथ प्रसंगानुकूल अनेक अवान्तर कथाओं का वर्णन किया है। रघुवंश वर्णन परम्परा में महाकवि ने दशरथ की महिमा का गुणगान करने हुए दशरथ सेवित अयोध्यापुरी की सम्पन्नता व समृद्धि की समानता अमरावती से करते हुए इस पुरी को स्वयं मनु द्वारा निर्मित बताया है–

मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।[1]

महाराज दशरथ के शासनकाल में अयोध्यावासियों की उत्तम स्थितियों का वर्णन करते हुए महाकवि ने दशरथ के अश्वमेध यज्ञ की भव्यता का वर्णन किया है साथ ही पुत्र प्राप्ति हेतु चिन्तातुर दशरथ की मनोवेदना का वर्णन करते हुए,

---

1. रामायण–बालकाण्ड–15/6

ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में सम्पन्न पुत्रेष्टि यज्ञ का भी महर्षि ने सांगोपा› वर्णन प्रस्तुत किया है। पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा राजा दशरथ की अंगनाई में चाररत्नों की प्राप्ति होती है, वे चार रत्न महाकवि के मतानुसार स्वयं श्रीहरि के अंशभूत हैं।[1]

श्रीहरि के अंशभूत चार रत्नों में से महाकवि ने ज्येष्ठ पुत्र 'राम' को कुल की कीर्ति पताका एवं पिता के लिए आह्लादकारी बताया है–

तेषां क्रेतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः।[2]

महाकवि ने चारों भाइयों के प्रगाढ़ अनुराग का दृढ़ निबन्धन कथा के आरम्भ में किया है जो भावी कथा का सूचक है साथ ही जिसकी प्रगाढ़ता के दर्शन हमें सम्पूर्ण कथा में बारम्बार होते हैं।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा यज्ञरक्षार्थ राम का वरण करना, पुत्रवत्सल पिता दशरथ का भावविàल होकर मना करना एवं विश्वामित्र का कुपित होकर दशरथ को रघुकुल रीति का भान करवाना आदि प्रसंग हैं जो रघुवंश की वचनपरायणता को द्योतित करते हैं इसी वचनबद्धता एवं कर्त्तव्यपरायणता की उलाहना देते हुए विश्वामित्र दशरथ से कहते हैं–

राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः।।[3]

महाराज दशरथ महर्षि वसिष्ठ के वचनों से आह्लादित होकर उभयकुमारों को यज्ञरक्षार्थ विश्वामित्र के साथ भेजते हैं तथा इसी बीच दोनों कुमार विश्वामित्र प्रदत्त विविध प्रकार की विद्याओं में निपुण हो जाते हैं और विश्वामित्र प्रदत्त विद्याओं का आश्रय लेकर वे अनेक राक्षसों का संहार कर अपने कुल की कीर्ति का विस्तार करते हैं।

बालकाण्ड के अन्त में महाकवि ने विश्वामित्र सहित राम–लक्ष्मण के मिथिलागमन का वर्णन किया है। मिथिला पहुँचने पर महाराज जनक विश्वामित्र का

---

1. रामायण–बालकाण्ड–18/10–14
2. वही–18/24
3. वही–21/2

अतिथि जनोचित सत्कार करते हैं एवं उभयकुमारों के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं। विश्वामित्र दशरथनंदन राम–लक्ष्मण का परिचय देते हुए दोनों के गुण, शील, विक्रम आदि की प्रशंसा जनक के समक्ष करते हैं साथ ही दोनों कुमारों की पिनाक धनुष को देखने की उत्सुकता को मिथिला आगमन का कारण बताते हैं। इसी समय विदेहराज अपनी पुत्री के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा को उद्घाटित करते हैं, दशरथनन्दन राम अपने पौरुष से शिव धनुष का भंजन कर महाराज दशरथ के विषाद को दूर करते हैं एवं प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर महाराज जनक अपनी पुत्री का विवाह 'श्रीराम' के साथ तय करते हैं–

मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता।।[1]

महाराज दशरथ एवं जनक द्वारा अपने कुल का परिचय प्रस्तुत करने पर विश्वामित्र निर्दिष्ट चारों राजकुमारों के विवाह का वर्णन वाल्मीकि ने किया है।[2]

महाकवि ने वधुओं की विदाई, उनका अयोध्या में प्रवेश आदि का वर्णन किया है साथ ही यह भी बताया है कि समय के साथ ही राम व लक्ष्मण परमपिता की सेवा–पूजा में निरत रहते हुए पिता की आज्ञानुसार पुरवासियों के समस्त कार्यों को करने में संलग्न रहते थे। महाकवि ने यहीं पर अंशमात्र में राम की प्रजाप्रियता एवं लोकपरायणता का परिचय दिया है–

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च।।[3]

अपने इसी प्रजावत्सल स्वरूप के कारण ही श्रीराम लोक में ब्रह्मा के समान प्रतिष्ठित हुए–

---

1. रामायण–बालकाण्ड–67/23
2. वही–73/36–39
3. वही–77/21

तेषामतियशा लोके रामः सत्यपराक्रमः।
स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः।।[1]

सर्गान्त में महाकवि ने सीता–राम के परस्पर प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है।

2. अयोध्याकाण्ड –

अयोध्याकाण्ड के मूल में महाकवि ने मुख्य रूप से सीता–राम वनवास प्रसंग के साथ विविध नीति सम्बन्धी उपदेशों को अवसरानुकूल घटनाओं के साथ वर्णित किया है।

प्रस्तुत काण्ड में शत्रुघ्न सहित भरत का मातुल गृह गमन का वर्णन है। महाकवि ने इस काण्ड में श्रीराम के अनेकविध कौशलों का वर्णन करते हुए उनके परम प्रजापालकत्व रूप को चित्रित किया है। श्रीराम को अनेक अनुपम गुणों से युक्त देखकर तथा राम के प्रति प्रजा के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अनुरागवश दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। वे सभा का आयोजन कर सभी सभासदों के समक्ष रामराज्याभिषेक सम्बन्धित अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। राजसभा में स्थित समस्त जनसमुदाय महाराज दशरथ के निर्णय का अत्यन्त हर्षपूर्वक अनुमोदन करते हुए उनके निर्णय को सर्वथा उपयुक्त बतलाते हैं। राज्याभिषेक से पूर्व महाराज दशरथ श्रीराम को नीति व मानव स्वभाव से सम्बन्धित विविध बातों के मर्म को समझाते हैं। वे रघुवर से कहते हैं कि तुम समय रहते ही राज्यपद को ग्रहण कर लो क्योंकि–**'चला हि प्राणिनां मतिः।'**[2]

भरत के विषय में सन्देह प्रकट करते हुए वे राम से कहते हैं कि स्वभावतः तो भरत धर्मपरायण व अपने अग्रज में सर्वथा निष्ठावान है तथापि मनुष्यों का चित्त प्रायः स्थिर नहीं रहता, धर्मपरायण सत्पुरुषों का मन भी विभिन्न कारणों से रागद्वेषादि से संयुक्त हो जाता है–

---

1. रामायण–बालकाण्ड–77/24
2. रामायण–अयोध्याकाण्ड–4/20

किं नु चित्तं मनुष्याणां नित्यमिति मे मतम्।
सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघवः।।[1]

राम को युवराज पद पर चयनित कर लेने पर महाकवि ने देवताओं के अभीष्ट, जगत्कल्याण के हेतु रामजन्म की सार्थकता के प्रसंग को वर्णित किया है। रामराज्याभिषेक के हर्षमय वातावरण में मन्थरा की कुमति द्वारा महान् विघ्न उत्पन्न होता है। मन्थरा रामराज्याभिषेक की घटना से खिन्न होकर अपनी वाक्पटुता का आश्रय लेकर कैकेयी को स्वभाव के प्रतिकूल आचरण करने के लिए उकसाती है, कुब्जा, महारानी को विविध दृष्टान्तों के माध्यम से विपरीत आचरण हेतु प्रेरित करती है। कुब्जा के कठोर वचनों से प्रोत्साहित कैकेयी रुष्ट होकर महाराज दशरथ से पूर्व में घटित घटना का स्मरण करवाती हुई वज्रपात करने वाले वरद्वय की याचना करते हुए कहती है कि धीरस्वभाव वाले राम तपस्वी के वेश में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षों तक वन में रहें तथा भरत को आज निष्कण्टक युवराज पद प्राप्त हो जाए–

नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्।।[2]

कैकेयी के वज्रसदृश कठोर वचनों से आहत महाराज दशरथ विविध चेष्टाओं से स्व–भामिनी को मनाने का प्रयास करते हैं। वे राम बिना अपने जीवन का निर्वहन असंभव बताते हुए कहते हैं कि–

तिष्ठोल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।।[3]

लोकहित निमित्त महाराज दशरथ कैकेयी को अपने दुष्ट विचार का परित्याग करने के लिए अनेक प्रकार से अनुनय–विनय करते हैं, परन्तु रघुवंश के लिए

---

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–4 / 27
2. वही–11 / 26.27
3. वही–12 / 13

कालसर्पिणी कैकेयी अपने विचार का परित्याग नहीं करती। राजा कैकेयी को लोकहित, भरत व स्वयं की भी शपथ देते हुए कहते हैं कि–

यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य वा।
नृशंसे पापसंकल्पे क्षुद्रे दुष्कृतकारिणि।।[1]

कैकेयी अपने निश्चय पर अडिग रहती है, महाराज दशरथ रघुकुल परम्परानुसार वचनबद्धता तथा कर्त्तव्यपरायणता के वशीभूत होकर जड़ बुद्धि हो जाते हैं। राज्याभिषेक से पूर्व जब राम पितृदर्शनार्थ भवन में प्रवेश करते हैं तो वे राजा का विषाद से परिपूर्ण मुख देखकर संतप्त हो उठते हैं। कैकेयी मुख से वरद्वय की बात सुनकर राम पिता की सेवा व आज्ञा को ही महत्त्वपूर्ण धर्म बताते हुए कहते हैं कि–

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रुषा तस्य वा वचनक्रिया।।[2]

राज्य का न मिलना देवत्व के अंशभूत राम की कमनीय कान्ति को उसी प्रकार क्षीण नहीं कर पाता है जिस प्रकार चन्द्रमा का क्षीण होना उसकी सहज शोभा का अपकर्ष नहीं कर पाता।[3] राम पित्राज्ञा को शिरोधार्य करके वनप्रस्थान हेतु अपनी जननी से आज्ञा लेने जाते हैं परन्तु पुत्रमोह से व्यथित माता कौशल्या राम को वनगमन हेतु आज्ञा न देकर स्वयं राम के साथ वन में जाने की हठ करती है। अपने वनगमन में देव को ही निमित्त मानकर राम अपने साथ जाने की हठ करने वाली माता को समझाते हुए कहते हैं कि–

शुश्रुषां क्रियतां तावत् स हि धर्मः सनातनः।।[4]

माता कौशल्या से अनुमति प्राप्त करके राम स्वप्रिया सीता के पास जाकर सम्पूर्ण घटनाक्रम का उल्लेख करते हैं। पतिवियोग की कल्पना से कातर सीता

---

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–12 / 60
2. वही–19 / 22
3. वही–20 / 32
4. वही–24 / 13

पतिसेवा को ही अपना प्रथम कर्म मानती हुई अनेक तर्कों व कथाओं का आश्रय लेकर राम को समझाती हैं। वे प्रेमपूर्वक अपने स्वामी पर कुपित होकर उनके प्रति अनेक उलाहना युक्त वचनों का प्रयोग करती हैं उनका मानना है कि केवल पत्नी ही पति के भाग्य का अनुसरण करती है अतः आपके साथ ही मुझे वन में रहने की आज्ञा मिल गई–

भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि।।[1]

अपनी तार्किक बुद्धि से सीता राम के समक्ष अनेक युक्तियुक्त वचनों को उपस्थित करती हुई साथ चलने की हठ करती है, राम के मना करने पर वह स्वजीवन को समाप्त करने तक की बात कहती हैं–

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्।।[2]

वैदेही की हठधर्मिता तथा तर्क युक्त वचनों को सुनकर राघव अपनी प्राणवल्लभा के समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं एवं उन्हें भी अपने साथ वनगमन हेतु स्वीकृति प्रदान करते हैं। राम, सीता व लक्ष्मण सहित वनगमन हेतु अन्तिम आज्ञा लेने के लिए दशरथ भवन में प्रवेश करते हैं जहाँ महाराज दशरथ कैकेयी को राख में छिपी हुई आग के समान भयंकर बताते हुए स्वयं को वंचित मानकर आर्तभाव से राम को कहते हैं कि–

न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघवः।
छन्नया चलितस्त्वस्मि स्त्रिया भस्माग्निकल्पया।।
वंचना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि।
अनया वृत्तसादिन्या कैकय्याभिप्रचोदितः।।[3]

---

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–27/4
2. वही–29/21
3. वही–34/36, 37

पश्चात्ताप से परिपूर्ण ह्रदय वाले दशरथ स्वयं को कोसते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बाँस का फूल उसी को सुखा डालता है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञा मुझी को भस्म किए जा रही है, यथा–

तन्मा दहेद् वेणुमिवात्मपुष्पम्।।[1]

सम्पूर्ण अयोध्यानगरी राम वियोग से संतप्त हो उठती है, पुत्रवियोग से पीड़ित महाराज दशरथ तो प्राणों को धारण करने में असमर्थ होते हुए मृत्यु को ही प्राप्त हो जाते हैं। पिता की मृत्यु से अनभिज्ञ भरत जब अयोध्या को आते हैं तो वे सम्पूर्ण घटनाक्रम को जानकर अत्यन्त शोकमग्न व संतप्त हो जाते हैं। वे करुण क्रन्दन करते हुए अपनी माता को उलाहना भरे व्यंग्य बाणों से कोसते हैं एवं युवराज पद को ठुकरा देते हैं। अग्रज के प्रति निष्ठा व भक्तिभावना से ओतप्रोत भरत राम को वन से पुनः लौटा लाने के लिए माताओं सहित वन में प्रस्थान करते हैं। वे चित्रकूट पर्वत पर वल्कल वस्त्रधारी तथा जटाधारी अग्रज को देखकर शोकार्त हो उठते हैं तथा अनेक धर्मसंगत एवं न्यायपूर्ण बातों से राम को अयोध्या लौटाने का प्रयास करते हैं, परन्तु वचनपरायण राम उनके आग्रह को ठुकराकर पित्राज्ञा को ही सर्वोपरि धर्म मानते हैं–

कुलीनः सत्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरित व्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्नमद्विधो जनः।।[2]

रघुनन्दन पिता की आज्ञा को अनुल्लंघनीय बताते हुए कहते हैं कि–

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
आतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।[3]

श्रीराम के चरणों में ही एकमात्र अनुराग रखने वाले भरत, दृढ़प्रतिज्ञ अग्रज की वचनबद्धता देखकर, उनकी चरणपादुकाओं को ग्रहण करके पुनः अयोध्या लौट

---

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–38/7
2. वही–101/16
3. वही–112/17

जाते हैं। राम व सीता अपने स्वजनों से मिलन सम्बन्धी स्मृतियों के कारण पुनः पुनः आक्रान्त होकर चित्रकूट छोड़कर अत्रि आश्रम में प्रवेश करते हैं, वहाँ अनेक धार्मिक विषयों पर चर्चा करती हुई सीता अनुसूया प्रदत्त विविध ज्ञान से लाभान्वित होती हुई स्वयं को उपकृत मानती है।

3. अरण्यकाण्ड –

श्रीराम जनक दुलारी सहित दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं। दण्डकारण्य में विविध तपस्वियों के आश्रम थे, जो नित्य यज्ञानुष्ठान आदि किया करते थे परन्तु उस गहन कान्तार में स्वतंत्र रूप से विचरने वाले अनेक राक्षस, ऋषियों के इन कार्यों में विघ्न उत्पन्न करते हुए अनेक मुनियों व ऋषियों का संहार किया करते थे। राक्षसों के भय से संतप्त तत्वदर्शी ऋषि, श्रीराम के दिव्यस्वरूप को पहचान कर उनके समक्ष अपनी व्यथा प्रकट करते हुए उन्हें यज्ञरक्षार्थ सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि–

पूजनीयश्च, मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः।
इन्द्रस्यैव, चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघवः।।[1]

तपस्यिों की व्यथा गाथा को सुनकर राम गहन कान्तार में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण दण्डकारण्य में विचरते हुए तापसजनों के रक्षार्थ, राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु सीता, राम की प्रतिज्ञा सुनकर धार्मिक उपदेश देते हुए कहती है कि– बिना वैर के दूसरों के प्रति क्रूरबर्ताव करना महापातक है, धर्मपालन हेतु वन में प्रस्थित आपको उसका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए–

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च।
समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम्।।[2]

धर्मोपदेश करती हुई सीता 'धर्म' को ही संसार का सार बताती है एवं राघव से कहती है–

---

1. रामायण–अरण्यकाण्ड–1/19
2. वही–9/15

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवेत सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वम्, धर्मसारमिदं जगत्।।[1]

प्रतिज्ञापरायण राम, सीता की धर्मविषयक सम्पूर्ण बातों का अनुमोदन करते हुए, शरणागत ऋषियों की रक्षा को अपना परम कर्त्तव्य मानकर शस्त्र धारण को उचित ही बताते हैं। उनका मानना है कि प्रथम प्रतिज्ञा करके पुनः उससे हटना रघुकुल परम्परा के सर्वथा विपरीत है। साथ ही वे कहते हैं कि सत्य का पालन मुझे सदा ही प्रिय है–**'सत्यमिष्टं हि मे सदा।'**[2] राम अपने प्राणों व सीता से भी बढ़कर अपनी प्रतिज्ञा को बताते हुए कहते हैं कि–

अप्यहं जीवितं जह्यं त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञा संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।।[3]

राम अपनी प्रतिज्ञानुसार, ऋषि–मुनियों के रक्षार्थ विविध राक्षसों का संहार करते हुए अगस्त्य मुनि के आश्रम में प्रवेश करते हैं। श्रीराम अपनी पत्नी व अनुज सहित पंचवटी में निवास करते हैं। पंचवटी में राम व लक्ष्मण के रूप सौन्दर्य से आकृष्ट ह्रदय वाली शूर्पणखा दोनों भाइयों के प्रति प्रणय निवेदन करती है। क्रोधित लक्ष्मण शूर्पणखा के कान व नाक काटकर उसे कुरूप बना देते हैं। अपने अपमान से आक्रोशित होकर शूर्पणखा, रावण के समक्ष रामपत्नी के रूप लावण्य का बखान करती हुई, उसे सीतापहरण हेतु उकसाती है। रावण सीतापहरण रूपी दुष्कृत्य के लिए सहायता पाने हेतु मारीच के पास जाता है, परन्तु राघव के पौरुष से परिचित मारीच रावण को रघकुलभूषण राम के साथ शत्रुता न करने की सलाह देता है। मारीच के वचनों से प्रभावित रावण पुनः अपनी पुरी को लौट जाता है परन्तु रावण के लिए कालसर्पिणी कुमति शूर्पणखा रावण को अनेक व्यंग्य बाणों से सीतापहरण हेतु उकसाती है, वह रावण को धिक्कारते हुए कहती है–

1. रामायण–अरण्यकाण्ड–9/30
2. वही–10/18
3. वही–10/18,19

सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम्।
लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः।।
स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यौविनश्यति।।[1]

शूर्पणखा के कठोर वचनों से कुपित होकर रावण पुनः सीता अपहरण हेतु मारीच के पास जाकर उसे बलात् स्वर्णमृग का रूप धारण कर सीता को आकृष्ट करने का आदेश देता है। अपनी ओर बरबस ही आकृष्ट करने वाले स्वर्णमृग को देखकर सीता, राम से स्वर्णमृग का शिकार करने का निवेदन करती है। मृगया के लिए प्रस्थित राम के न आने पर तथा राम के समान पुकार ध्वनि सुनकर सीता लक्ष्मण को सहायतार्थ जाने के लिए कहती है। सीता रक्षण में नियुक्त लक्ष्मण के जाने से मना करने पर क्षुब्ध सीता स्त्रियोचितस्वभावानुसार अपने देवर को अनेक कठोर वचनों से पीड़ित करती है। वह विविध तर्कों को उपस्थित कर लक्ष्मण की अवमानना करती है, उनके चरित्र पर अनेक तरह से दोषारोपण करती है, वह लक्ष्मण को राम का शत्रु बताते हुए उन्हें धिक्कारती है। लक्ष्मण चरित्र पर आक्षेप करती हुई वह कहती है कि–

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।।
यस्त्वमवस्थामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मणं मत्कृते।।[2]

अपनी भाभी की कटु उक्तियों से विवश लक्ष्मण वहाँ से चले जाते हैं। लक्ष्मण के चले जाने पर अपने प्रयोजन को सिद्ध हुआ जानकर रावण ब्राह्मण का वेश धारण कर भोली–भाली वैदेही का छल–कपट से अपहरण कर लेता है। रावण द्वारा स्वयं को प्रवंचित जानकर सीता आत्मविश्वास न खोकर साहस का परिचय देती है। वह स्वयं को रावण के काल का कारण बताती हुए अनेक कठोर वचनों से धिक्कारती है,

---

1. रामायण–अरण्यकाण्ड–33 / 3,4
2. वही–45 / 5,6

वह अनेक दृष्टान्तों व कटु वचनों से रावण की भर्त्सना करती है। रावण को धमकाते हुए तेजस्वी सीता कहती है कि जिस तरह मरणासन्न रोगी विपरीत पदार्थों का सेवन करने लगता है, वही दशा इस समय तुम्हारी भी है–

मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते।
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत् पथ्यं तन्न रोचते।।[1]

काण्ड के अन्त में रावण द्वारा अपहृत सीता के करुण विलाप के साथ–साथ राम की उद्विग्नता का वर्णन है। सीता को पंचवटी में न पाकर राम विàल हो उठते हैं। करुण क्रन्दन करते हुए राम पंचवटी की लताओं, वृक्षों, नदियों आदि से अपनी प्राणवल्लभा के विषय में प्रश्न पूछते हैं एवं प्रत्युत्तर न मिलने पर अधीर हो जाते हैं। शोकसंतप्त हो राम अन्त में भ्राता सहित सीता अन्वेषणार्थ सुग्रीव से मित्रता करने के लिए प्रस्थान करते हैं।

4. किष्किन्धा काण्ड – किष्किन्धा काण्ड का आरम्भ लक्ष्मणसहित श्रीराम के पम्पासरोवर की शोभा के दर्शन से होता है। श्रीराम पम्पा सरोवर की शोभा को देखकर सम्मोहित हो जाते हैं। वे पम्पासरोवर में बहने वाली समीर को तथा नाना प्रकार के विहंगमों के कलरवों से मिश्रित वसन्तकाल को सीता वियोग रूपी शोक को बढ़ाने वाला मानते हैं।[2] प्रिया वियोगजनित क्लेश से पीड़ित राम पम्पा के सम्पूर्ण वातावरण को ही कामोद्दीपक बताते हुए संतप्त हो जाते हैं। अपने अग्रज को विरह जनित अग्नि में निरन्तर तपते हुए देखकर बुद्धिमान लक्ष्मण सान्त्वनापूर्ण वचनों द्वारा उन्हें अधिक स्नेह का परित्याग करके उद्यम करने हेतु उत्साहित करते हैं।[3] अनुज के वचनों से उत्साहित राम कार्य के साधनभूत सुग्रीव से मैत्री हेतु ऋष्यमूक पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं। अपने भाई से भयभीत सुग्रीव आयुध धारण किए हुए राम–लक्ष्मण को शत्रु पक्ष का ही जानकर भयातुर हो जाते हैं परन्तु हनुमान उन्हें राजोचित आचरण करने हेतु प्रेरित करते हैं। हनुमान जी की सहायता से सुग्रीव व

---

1. रामायण–अरण्यकाण्ड–53 / 17
2. रामायण–किष्किन्धाकाण्ड–1 / 22
3. वही–1 / 116,121

राम की आपस में मित्रता होती है, दोनों ही एक–दूसरे की सहायता के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं राम सुग्रीव को सहयोग का आश्वासन देते हुए कहते हैं कि जिस तरह वर्षाकाल में अच्छे खेत में बोया हुआ बीज अवश्य फल देता है उसी प्रकार तुम्हारा सारा मनोरथ सफल होगा–

वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते तव।।[1]

अपनी प्रतिज्ञानुसार राम बालीवध करते हैं। बिना शत्रुता के असावधान स्थिति में स्थित, अपने ऊपर चलाए हुए बाण से आक्रोशित बाली राम को अधर्मी कहते हुए उनके कृत्य की भर्त्सना करता है। राम द्वारा बाली को उसका अपराध बोध करवाने पर बाली को अत्यन्त पश्चाताप होता है, अन्ततः राम के हाथों मृत्यु पाकर वह सद्गति को प्राप्त करता है। बालीवध के पश्चात् राज्यपद पर प्रतिष्ठित सुग्रीव भोग–विलासों में आसक्त हो अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता है। वह सीतान्वेषण के कार्य में विलम्ब करता है। उद्विग्न राम, सुग्रीव के इस व्यवहार की कड़ी निन्दा करते हैं तथा कर्त्तव्यविमुख सुग्रीव को कृतघ्न एवं अधम बतलाते हैं।

राम से आदिष्ट लक्ष्मण, सुग्रीव को अपने कर्त्तव्य का बोध करवाने हेतु किष्किन्धा जाते हैं तथा वहाँ अनेक युक्ति–युक्त वचनों से अपने मैत्री एवं कर्त्तव्यपालन हेतु सुग्रीव को उत्साहित करते हैं। सुग्रीव सीतान्वेषणार्थ विविध दिशाओं में अपनी वानर सेनाओं को भेजते हैं। दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित वानर सेना सहित हनुमान, सम्पाति से लंका एवं उसके स्वामी के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होने पर समुद्र लंघन हेतु उत्साहित हो जाते हैं।

5. सुन्दरकाण्ड – सुन्दर काण्ड के आरम्भ में पवनपुत्र हनुमान द्वारा समुद्र लंघन का रोमांचक वर्णन है। रघुकुलभूषण राम के कार्य की सिद्धि के लिए समुद्र स्वयं इस पुण्यकार्य में हनुमान की सहायता करता है। इसी आशय से मैनाक पर्वत ने हनुमान के प्रति यह उक्ति कही है कि–

---

1. रामायण–किष्किन्धाकाण्ड–7 / 20

कृते च प्रतिकर्त्तव्यमेष धर्मः सनातनः।[1]

स्वामीभक्त हनुमान कार्यसिद्धि हेतु अनेक विघ्न–बाधाओं का सामना करके सौ यौजन समुद्र को पार करते हैं एवं शत्रु की पुरी लंका में पहुँचते हैं। सूक्ष्मरूप धारण कर सम्पूर्ण दक्षिण दिशा सहित अन्तःपुर में रघुप्रिया का अन्वेषण करते हैं तथा कार्य में विफल होने पर अत्यधिक निराश हो जाते हैं परन्तु अगले ही क्षण कर्त्तव्यबोध होने पर उत्साह को ही सफलता का मूलमंत्र बताते हैं–

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।।[2]

उत्साहित हनुमान पुनः अपने कार्य में जुट जाते हैं एवं अशोकवाटिका में रघुप्रिया को देखते हैं। राक्षसियों से घिरी दयनीय अवस्था वाली जानकी को देखकर करुण हृदय हनुमान कहते हैं कि श्रीराम की पत्नी ही जब इस प्रकार दुःखी है तो निश्चय ही काल का उल्लंघन करना सभी के लिए अत्यन्त कठिन है–

यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः।।[3]

एकमात्र पति में ही अनुरक्त शिथिल सीता को देखकर अत्यंत दुःखित होकर हनुमान इस सत्य को प्रतिपादित करते हैं कि नारी के लिए पति ही सबसे बड़ा आभूषण है, यही कारण है कि प्रियजनित वियोग से विनष्ट कान्ति वाली सीता शोभा के योग्य होने पर भी शोभा नहीं पा रही हैं–

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनर्हा न शोभते।।[4]

अशोकवाटिका में रावण सीता से बारम्बार प्रणय निवेदन करता है। वह सीता को विविध प्रलोभनों से अपनी ओर आकृष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न करता है परन्तु पतिव्रता सीता उसके प्रणय निवेदन को ठुकराकर उसका तिरस्कार करती है। सम्पूर्ण लंकापुरी से

---

1. रामायण–सुन्दरकाण्ड–1/113
2. वही–12/11
3. वही–16/3
4. वही–16/26

अनभिज्ञ, एकाकी होने पर भी सीता आत्मसंयम नहीं खोती, वह रावण के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करती। सीता एक ओजस्विनी क्षत्राणि के समान साहस व आत्मविश्वास का परिचय देती हुई रावण के व्यवहार की गर्हणा करती है। वह रावण को धिक्कारते हुए उसे पापाचारी, चपल इन्द्रिय, सदाचारशून्य आदि विशेषणों से सम्बोधित करती है एवं सदाचरण करने को कहती है। सीता के कठोर वचनों को सुनकर दशग्रीव का क्रोध उद्दीप्त हो उठता है वह सीता को अपनी पट्टमहिषी बनने के लिए धमकाता है। राक्षसराज व उसकी सहायक राक्षसियों से प्रताड़ित सीता अपने जीवन का अन्त करना चाहती है, परन्तु मानव जीवन की विवशतावश वे असफल हो जाती हैं एवं कहती हैं कि मानव जीवन और परतन्त्रता को धिक्कार है जहाँ अपनी इच्छानुसार प्राणों का परित्याग भी नहीं किया जा सकता–

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत् परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम्।।[1]

अशोकवाटिका में सीता की करुणावस्था देखकर विगलित हृदय वाले हनुमान अपना परिचय देकर एवं रामविषयक अभिज्ञान एवं समाचार आदि निवेदित कर सीता को प्रसन्न करते हैं। हनुमान अपनी प्रिया से विरहित राम की करुणावस्था का वर्णन सीता के समक्ष करते हुए कहते हैं कि 'जिस तरह ज्वालामुखी पर्वत, जलती हुई आग से सदा तपता रहता है श्रीराम भी आपके वियोग से उसी तरह संतप्त रहते हैं–

स तवादर्शनदार्ये राघवः परित्यप्यते।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्नि पर्वतः।।[2]

हनुमान सीता से प्रणयप्रतीकस्वरूप चूड़ामणि लेकर अशोकवाटिका को ध्वस्त कर देते हैं। विध्वंस से आक्रोशित होकर ब्रह्मास्त्र के द्वारा बांधकर पवनपुत्र को रावण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। महावीर हनुमान रावण को अनेक सदुक्तियों से सदाचारण करने के लिए समझाते हुए सीता को पुनः श्रीराम को लौटाने के लिए कहते हैं। उनका कथन

---

1. रामायण–सुन्दरकाण्ड–25/20
2. वही–35/45

है कि जिस तरह विष मिश्रित अन्न को बलपूर्वक पचाया नहीं जा सकता उसी तरह देवताओं एवं असुरों के लिए सीताजी को अपनी शक्ति से पचाना असंभव है–

नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि
विषसंस्पृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा।।[1]

रावण कपिश्रेष्ठ के वचनों से आक्रोशित हो उनका वध करने हेतु उद्यत होता है परन्तु धर्मात्मा विभीषण दूत वध का निषेध करते हुए कहते हैं कि–

वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा।
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः।।[2]

रावण के आदेशानुसार हनुमान की पूँछ में आग लगाई जाती है जिसके द्वारा हनुमान सम्पूर्ण लंकापुरी का दहन करते हुए पुनः समुद्र लांघकर अपने सुहृदों से मिलते हैं एवं जनकदुलारी विषयक सम्पूर्ण समाचार को श्रीराम के चरणों में निवेदित करते हैं।

6. युद्धकाण्ड – समुद्रपार शत्रुनगरी से लौटकर आए हुए पवनसुत के मुख से सीताविषयक वृत्तान्त सुनकर 'राम' अत्यन्त परितुष्ट हो जाते हैं किन्तु अगले ही क्षण समुद्र की दुस्तरता विषयक विचार से उनका मन खिन्न हो जाता है। श्रीराम को पराक्रमपूर्ण कार्य करने हेतु उत्साहित करते हुए सुग्रीव कहते हैं कि– मनुष्य को हमेशा ही शौर्य का अवलम्बन करना चाहिए क्योंकि शौर्य ही अभीष्ट फल की सिद्धि कराने वाला होता है।[3] मित्र सुग्रीव द्वारा प्रोत्साहित श्रीराम सेनासहित समुद्रल्लंघन हेतु प्रस्थान करते हैं। समुद्र तट पर विश्राम करते समय राघव अपने बढ़ते हुए शोक को लक्ष्य करते हुए कहते हैं कि शोक समय के साथ स्वयमेव ही नष्ट हो जाता है परन्तु मेरा शोक दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है–

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते।।[4]

---

1. रामायण–सुन्दरकाण्ड–51/24
2. वही–52/5
3. रामायण–युद्धकाण्ड–2/14
4. वही–5/4

हनुमान के विध्वंस से व्याकुल रावण मन्त्रियों से विचार–विमर्श करता है। धर्मशील विभीषण, सीता पुनः राम को लौटाने की सलाह रावण को देता है। परन्तु कालग्रसित रावण विभीषण को कठोर वाणी में कहता है कि शत्रु एवं कुपित विषधर के साथ रहना पड़े तो रह लें, परन्तु जो मित्र कहलाकर भी शत्रु की सेवा कर रहा हो, उसके साथ कदापि नहीं रहना चाहिए–

वसेत् सहपत्नेन क्रुद्धेनाशोविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना।।[1]

रावण विभीषण को अनेकानेक कटु उक्तियों से प्रताड़ित करता है, विभीषण अपने पिता समान अग्रज की धर्मरहित बातों से विचलित होकर कहते हैं कि 'जिन लोगों की आयु समाप्त हो जाती है वे जीवन के अन्तकाल में अपने सुहृदों की हितकर बात भी नहीं मानते–

परान्तकाले हि गतायुषो नरा।
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्।।[2]

अपने अग्रज से तिरस्कृत विभीषण अन्ततः श्रीराम की शरण में जाते हैं। शरणागतवत्सल राम मित्र भाव से समीप आए हुए विभीषण को शरण देते हैं, उनका मानना है कि–

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतोमेदगर्हितम्।।[3]

समुद्र की प्रेरणा से नल सेतुबंध का निर्माण करते हैं। सेनासहित श्रीराम के सुवेल पर्वत पर ठहरने का संदेश पाकर उद्विग्न रावण सीता को मोहित करने के लिए मायानिर्मित राम का कटा हुआ मस्तक दिखाकर कहता है कि– जड़ के नष्ट हो जाने पर तुम्हें रामविषयक चिन्तन छोड़ देना चाहिए–

---

1. रामायण–युद्धकाण्ड–16/2
2. वही–16/26
3. वही–18/3

छिन्नं ते सर्वथा मूलं दर्पश्च निहतो मया।।

व्यसेननात्मनः सीते मम भार्याः भविष्यसि।

विसृजैतां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि।।[1]

माया से मोहित सीता पति विषयक विलाप करती है एवं स्वयं को श्रीराम की मृत्यु का कारण मानती हुई कहती है–

अहं दाशरथेनोढा मोहात् स्वकुलपांसनी।

आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत्।।[2]

सरमा से आश्वस्त सीता पुनः जीवन धारण करती है। माल्यवान आदि अपने सुह्रदजनों के द्वारा समझाए जाने पर भी रावण सीता को लौटाने के लिए तैयार नहीं होता। स्वभाव से धृष्ट रावण शत्रु से मैत्री या संधि करना अपने स्वभाव के विपरीत मानते हुए कहता है कि स्वभाव किसी के लिए भी दुर्लङ्घ्य होता है–

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।

एष मे सहजो दोषः स्वभावोदुरतिक्रमः।।[3]

युद्ध के मध्य में राम व लक्ष्मण नागपाश में बंध जाते हैं। चेतना आने पर राम अपने भाई लक्ष्मण के लिए करुण क्रन्दन करते हुए कहते हैं कि पुनः सीता जैसी स्त्री का मिलना संभव है परन्तु लक्ष्मण जैसे भाई की पुनः प्राप्ति असंभव है–

शक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।

न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः।।[4]

युद्ध हेतु रावण अपने छोटे भाई से सहायता के लिए कहता है परन्तु 'पुरुषार्थ' त्रय में धर्म को प्रधान बताते हुए कुम्भकर्ण, रावण को राम के साथ बैर न करने की नीतिपूर्ण बात कहता है परन्तु कालग्रसित रावण उसे युद्ध के लिए प्रेरित

---

1. रामायण–युद्धकाण्ड–31/15,16
2. वही–32/29
3. वही–36/11
4. वही–49/6

करता है। कुम्भकर्ण का युद्ध में वध होता है। शत्रु द्वारा अपने भाई के वध का वृत्तान्त जानकर रावण पश्चाताप में डूब जाता है परन्तु अगले ही क्षण इन्द्रजित् को वध के लिए भेजता है। इन्द्रजित् मायामयी सीता के वधरूपी वृत्तान्त द्वारा राम को शोकाकुल कर देता है, राम मूर्च्छित हो जाते हैं। शोकसंतप्त राम को लक्ष्मण पराक्रमपूर्ण कार्य करने हेतु प्रेरित करते हैं। लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का वध होता है। पुत्रशोक से आक्रोशित रावण, सेनासहित राघव पर आक्रमण करता है। रावण द्वारा चलाई गई शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं, उन्हें देखकर भ्रातृवत्सल राम करुण क्रन्दन करते हुए कहते हैं कि इस संसार में सहोदर दुष्प्राप्य है–

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।[1]

श्रीराम ब्रह्मास्त्र द्वारा रावण का वध करते हैं। भातृस्नेहवश विभीषण शोकार्त हो उठते हैं तब श्रीराम उन्हें नीति सम्बन्धित उपदेश देते हुए कहते हैं कि वैर जीवनपर्यन्त ही रहता है, मरने के बाद वैर का अन्त हो जाता है–

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तम् न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।[2]

राम की प्रेरणा से विभीषण रावण का प्रेतकर्म करते हैं तदनन्तर उनका राज्यपद पर अभिषेक होता है। राम की आज्ञा मिलने पर सीता राम के दर्शनार्थ उनके समीप आती है किन्तु दूसरे ही क्षण लोकपरायण राम लोकापवाद के भय से जानकी को स्वीकार न करके उन्हें अन्यत्र चले जाने को कहते हैं–

तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यामस्ति न मे त्वया।।[3]

---

1. रामायण–युद्धकाण्ड–101/15
2. वही–109/25
3. वही–115/18

अपने प्राणवल्लभ के मुख से रोंगटे खड़े कर देने वाली रोषपूर्ण कठोर वाणी को सुनकर विदेहकुमारी लाज से गढ़ जाती है, उन वाग्बाणों से पीड़ित होकर वे अपने ही अंगों में विलीन सी होने लगती है, उनके नेत्रों से अविरल अश्रु बहने लगते हैं वे गद्‌गद्‌ वाणी से अपने प्रियतम को अनेक उपालम्भों से युक्त वचन बोलते हुए कठोर वाणी में राम से कहती है कि यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरा शरीर रावण द्वारा बलात् स्पर्श किया गया, उस समय मैं विवश थी, मेरे अंग पराधीन थे, उनका यदि दूसरे से स्पर्श हो गया तो मैं विवश अबला क्या कर सकती थी परन्तु आज आपका यह व्यवहार जानकर मैं सदा के लिए मारी गई, आपने मेरे लिए व्यर्थ ही युद्ध आदि का परिश्रम किया, अनेक कष्ट उठाए। स्वयं को अयोनिजा एवं दिव्यस्वरूपा बताती हुई वह राम के ओछे व्यवहार की भर्त्सना करती हुई कहती है कि– नृपश्रेष्ठ! आपने ओछे मनुष्य की भाँति केवल रोष का ही अनुसरण करके मेरे शील–स्वभाव का विचार छोड़कर केवल निम्न कोटि की स्त्रियों के स्वभाव को ही अपने समक्ष रखा है–

त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।।[1]

अपने स्वामी द्वारा उपेक्षित सीता राम के प्रति उलाहनापूर्ण वचनों को व्यक्त करने के बाद लक्ष्मण को चिता बनाने का आदेश देती है एवं अपने शुद्ध चरित्र की प्रमाणिकता हेतु अग्नि में प्रवेश करती है। अग्निदेव स्वयं शुद्ध चरित्रा सीता को राघव को समर्पित करते हुए कहते हैं कि–

एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते।
विशुद्ध भावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।।[2]

विशुद्ध चरित्र वाली वैदेही को स्वीकार करके राम, लोकमत को शान्त करना ही अग्निपरीक्षा का मुख्य कारण बताते हैं। वे स्वयं कहते हैं कि जानकी परम पावनी

---

1. रामायण–युद्धकाण्ड–116 / 14
2. वही–118 / 05

है जिस तरह मनस्वी पुरुष कीर्ति का परित्याग नहीं कर सकता उसी तरह मैं भी वैदेही को नहीं छोड़ सकता–

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा।[1]

श्रीराम, सीता व सुहृदजनों सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। अयोध्या के समीप पहुँचकर श्रीराम, हनुमान को भरत के समीप भेजते हैं। राम प्रत्यागमन से प्रसन्न भरत कहते हैं कि 'आज यह कल्याणकारी लौकिक गाथा सत्य जान पड़ती है कि मनुष्य यदि जीवित रहे तो उसे कभी न कभी हर्ष एवं आनन्द की प्राप्ति होती है–

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम्।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि।।[2]

भ्रातृचरणों में अनुरक्त भरत पुनः राम को सम्पूर्ण राज्य लौटा देते हैं। युद्धकाण्ड के अन्त में महाकवि ने आदर्श रामराज्य की संकल्पना करते हुए रामायण को जगत् कल्याण का हेतु बतलाया है।

7. उत्तरकाण्ड – उत्तरकाण्ड में महाकवि ने आदर्श रामराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की है। रामराज्य में सर्वत्र सुख व्याप्त है। राम–सीता अपने सभी बन्धु–बान्धवों के साथ प्रसन्नचित्त हो निवास करते हैं। इन्हीं दिनों अपनी प्रिया को गर्भधारण युक्त मंगलमय चिह्नों से संयुक्त देखकर राघव वैदेही का अभीष्ट मनोरथ पूछते हैं। वैदेही वनवासकाल के तपोवन में पुनर्रमण को ही अपना इच्छित मनोरथ बतलाती हुई कहती है–**तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव।।**[3]

प्रिया के अभीष्ट मनोरथ को जानकर राम राज्यविषयक प्रिय–अप्रिय घटनाओं को जानने की इच्छा से उद्यत हो, भद्र के मुख से सीताविषयक लोकापवाद को

1. रामायण–युद्धकाण्ड–118/20
2. वही–126/2
3. वही–42/33

सुनते हैं। प्रजानुरंजन को ही परम धर्म मानने वाले राघव सीता परित्याग का आदेश देते हुए लक्ष्मण से कहते हैं कि–

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान वा पुरुषर्षभाः।
अपवाद् भयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।।[1]

प्रजा अनुरंजन में ही एकमात्र अनुरक्त राम, सीता के पूर्वोक्त मनोरथ को बताते हुए लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि वाल्मीकि आश्रम के निकट वन में तुम सीता को छोड़कर शीघ्र लौट आओ, मेरी इस आज्ञा का पालन करो, मैं तुम्हें अपने चरणों और जीवन की शपथ दिलाकर कहता हूँ कि मेरे निर्णय के विरुद्ध कुछ न कहो, जो भी मेरे इस निर्णय में बाधक होगा, वह हमेशा के लिए मेरा शत्रु होगा–

तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन।।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम।
शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन।।
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघाताना।[2]

अपने ज्येष्ठ भ्राता के वचनों से बद्ध लक्ष्मण सीता को गंगापार तमसा तट पर पहुँचाते हैं। अपने अश्रुप्रवाह को रोकने में असमर्थ लक्ष्मण जानकी को राम द्वारा परित्यक्त किए जाने की बात बताते हुए कहते हैं कि अग्निपरीक्षा द्वारा यद्यपि आप निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं तथापि महाराज ने लोकापवाद के भय से आपको त्याग दिया है, आप इसमें और कोई अन्य कारण न समझे अतः राम द्वारा आज्ञापित मैं आपको गंगाजी के तट पर आश्रमों के समीप छोड़ दूँगा।[3] अपने निर्वासन सम्बन्धी प्रसंग को जानकर निर्दोष सीता विलाप करती हुई लक्ष्मण के समक्ष अनेक प्रश्न उपस्थित करती है। वह लक्ष्मण से कहती है कि यदि मुनिजन मुझसे मेरे परित्याग

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–45/14
2. वही–45/18,19,21
3. वही–47/14,15

का कारण पूछेगें तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी, अकेली स्वजनों से रहित हो आश्रम में किसे अपना दुःखड़ा सुनाऊँगी। वह स्वयं को गंगा जी के जल में विसर्जित करना चाहती है परन्तु गर्भधारण के कारण वह स्वयं को इस कार्य के योग्य नहीं मानती, वह पतिपरायणा है अतः आत्मविसर्जन द्वारा वह रघुवंश का बीज नष्ट नहीं करना चाहती। अपने परित्याग को स्वीकार करते हुए सीता लक्ष्मण के द्वारा अपनी सास, अन्तःपुर की स्त्रियों एवं रघुनन्दन के लिए संदेश भेजती है। सीता लक्ष्मण से कहती है कि स्त्री के लिए तो पति ही देवता, पति ही बन्धु एवं पति ही गुरु है अतः उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी विशेषरूप से उसका प्रिय करना चाहिए–

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।।[1]

अपने परित्याग से दुःखी गर्भिणी सीता विषम परिस्थितियों में विचलित नहीं होती। अपने पति को परमेश्वर मानने वाली सीता उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई कहती है कि आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है अतः लोगों में मेरे कारण जो अपवाद या निन्दा आपके विषय में फैल रही है उसे दूर करना मेरा भी परम कर्त्तव्य है, पुरवासियों का अनुरंजन आपका परम धर्म है अतः आप धर्मानुकूल आचरण करते हुए उसी तरह का व्यवहार करें जिससे यश की प्राप्ति हो।

लक्ष्मण रोती हुई सीता को वन में छोड़कर चले जाते हैं। वहाँ से सीता वाल्मीकि के साथ आश्रम में जाती है एवं वही निवास करती है। कुछ काल पश्चात् शत्रुघ्न लवणासुर के वध हेतु जाते समय वाल्मीकि आश्रम में रात्रिविश्राम करते हैं, उसी समय सीता जनित कुमार युगल का समाचार जानकर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। प्रजा हित में ही तत्पर राम अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं। वाल्मीकि दोनों शिशुओं के साथ यज्ञ में सम्मिलित होते हैं। अश्वमेध के यज्ञस्थल में घूमते हुए दोनों कुमार गुरु के निर्देशानुसार रामायण कथा का सुन्दर गायन करते हैं। दोनों

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–48/17, 18

राजकुमारों के मुख से रामायण कथा सुनकर राम को ज्ञात होता है कि उभयकुमार सीता की सन्तति हैं—**तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ।**[1]

राम अपने दूत द्वारा वाल्मीकि के पास सन्देश भिजवाते हैं कि यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो वे यहाँ आकर जनसमुदाय में पुनः अपनी शुद्धता प्रमाणित करें—

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम्।।[2]

वाल्मीकि सहित सीता जनसभा में प्रवेश करती है। अपने पति के मुख से पुनः अपने चरित्र की विशुद्धता को प्रमाणित करने की बात सुनकर वह विषाद में डूब जाती है। अपने को एकमात्र राम में ही आसक्त बताती हुई सीता अपने शुद्ध चरित्र की प्रमाणिकता हेतु अपनी जन्मधात्री माता धरती से स्वयं को पुनः अपने अंक में समेट लेने की प्रार्थना करती है—

यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।।[3]

अपनी पुत्री सीता के आa्वान पर पृथ्वी उसे पुनः अपने अंक में समेट लेती है। तीनों लोकों का कल्याण रूपी प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर परब्रह्मस्वरूप श्रीराम अपने भाई—बंधुओं एवं सुहृदजनों सहित पावनधाम को प्रस्थान करते हैं—

त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम संभवः।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत् एवाहमागतः।।[4]

◈◈◈

---

1. रामायण—उत्तरकाण्ड—95/2
2. वही—95/4
3. वही—97/16
4. वही—104/18

द्वितीय अध्याय

रामकथा का अभिनव स्वरूपः 'जानकीजीवन' महाकाव्य

रामकथा का अभिनव स्वरूप : 'जानकीजीवन' महाकाव्य

1. सर्गानुसार कथासार –

आदिकवि वाल्मीकि द्वारा सप्त काण्डों में विरचित, चौबीस हजार श्लोकों में निबन्धित प्राचीन रामकथा को डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपनी नवीन उद्भावनाओं व कल्पनाओं द्वारा 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में इक्कीस सर्गों व एक हजार सात सौ चौदह श्लोकों में उपनिबद्ध किया है। महाकवि ने जगज्जननी की सम्पूर्ण घटनाओं को इस ग्रन्थ रत्न का विषय बनाया है, जो निम्न प्रकार है–

प्रथम सर्ग –

प्रथम सर्ग का आरम्भ दुर्भिक्ष की भयावहता से संत्रस्त विदेहजनपद के वर्णन से होता है। विदेहनन्दन अपनी प्रजाओं की कष्टकारक स्थिति से चिन्तातुर हो उठते हैं। प्रजावत्सल राजा जनक अपनी प्रजा के कल्याण हेतु दुर्भिक्ष निवारण का उपाय पूछने गौतमनन्दन शतानन्द के पास जाते हैं। शतानन्द, जनक को सान्त्वनापूर्ण वचनों से आह्लादित करते हैं एवं उन्हें सुवृष्टि का मार्ग निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि सुवर्ण एवं मणिमाणिक्यादि रत्नों से हल का निर्माण करके स्वयं ही वृषभ रूप में उसे खींचो एवं यज्ञ द्वारा देवराज इन्द्र को प्रसन्न करके विपत्ति सागर को पार करो, यथा–

हलं विनिर्माय सुवर्णरत्नैस्त्वयैव धुर्येण वृषेण नेयम्।
कृते त्वयेत्थ क्षितिकर्षकर्मण्यपां सुवृष्टिर्भविताऽप्रमेया।।
शतक्रतुश्चापि मखेन याज्यस्त्वयाऽत्र सीरध्वज! वैपरीत्ये।
मयोपदिष्टैर्विधिभिर्धृतस्त्वं विपत्पथोधेर्भविताऽसि मुक्तः।।[1]

शतानन्द निर्दिष्ट 'इन्द्रमखोत्सव' में सुवर्ण रचित हल से भूमि कर्षण करते समय हल के अग्रभाग के जमीन में अटकने पर जैसे ही विदेहनन्दन उसे अपने प्रचण्ड बाहुयुगल की ताकत से खींचते हैं वैसे ही प्रकाशपुंज प्रकटित होता है जिसमें से लक्ष्मी स्वरूपा कन्या की उत्पत्ति होती है। आकाशप्रा›ण से गुंजित दिव्य वाणी के

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/28,29

निर्देशानुसार उस अयोनिजा कन्या का नाम 'सीता' इस प्रकार लोक में प्रचलित होता है, यथा–

हलेन राजंस्त्वथ भूमिकर्षे कृते यतोऽप्रापि सुकन्यकेयम्।
ततो गमिष्यत्यभिधामनर्घां प्रजेश! सीतेति च लोकपूताम्।।[1]

दिव्यस्वरूपा अयोनिजा सीता के अवतरण के पश्चात् महाकवि ने विदेह जनपद में अपार सुवृष्टि का वर्णन किया है।

द्वितीय सर्ग –

द्वितीय सर्ग विदेहजा की शैशवावस्था की क्रीड़ाओं से संवलित है। इस सर्ग में महाकवि ने सीता को भोली–भाली कन्या के रूप में वर्णित करते हुए उसके द्वारा की जाने वाली बाल सुलभ चपलताओं से युक्त विविध क्रीड़ाओं का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। जानकी का अपनी नन्हीं–नन्हीं सखियों के साथ खेलना, काँपते हाथों से चित्ररचना करना, जल–सन्तरण सम्बन्धी क्रीडाएँ करना, माँ से कहानी सुनाने का हठ करना, चन्द्र प्राप्ति के लिए याचना करना, घाँस–फूँस आदि से घँरौदा बनाकर गुड्डे–गुड़िया का खेल खेलना, सखियों के साथ मिट्टी की चक्की बनाकर झूठमूठ पीसने की क्रिया करना आदि बालक्रीड़ाओं से यह सर्ग परिपूर्ण है।

इसी सर्ग में महाकवि ने सीता को दया, करुणा, परोपकार आदि गुणों से परिपूर्ण भी बताया है। प्रभातवेला में सर्वप्रथम जागकर पुत्रवत् पालित विहग समुदाय को चारा देना, कपोतशावकों को बिखेरे गए चाँवलों द्वारा तृप्त करना आदि सीता के परोपकारी स्वभाव के परिचायक हैं। इन सभी के अतिरिक्त धीरे–धीरे यौवन की ओर अग्रसर जानकी, पाककला, चित्रकला, सन्तरण कला आदि में भी प्रवीण हो जाती है। असंख्य शिशुजनोचित खेल–खिलवाड़ों से कुटुम्बियों, पुरवासियों, बटोहियों तथा दर्शकों की मण्डली को आह्लादित करती हुई सीता यौवनावस्था के समीप पहुँच जाती है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/48

अनन्तबालोचितकेलिकल्पनैः कुटुम्बिपौराध्वगदर्शिमण्डलम्।
विनोदयन्तीत्थमथो विदेहजा निनाय बाल्यं स्फुटयौवनान्तिकम्।।[1]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि यह महाकवि की अभिनव रचनात्मकता का ही परिणाम है कि सम्पूर्ण सर्ग जानकी की बालसुलभ लीलाओं से आप्यायित है।

तृतीय सर्ग –

इस सर्ग में बाल सुलभता से युक्त चंचल स्वभाव वाली जानकी की प्रारम्भिक यौवनावस्था का वर्णन करते हुए महाकवि ने सीता को यौवन व शैशव के आमोद–प्रमोद की क्रीड़ास्थली से उपमित किया है,यथा–

'विनोदखेलास्थलिकेव कामिनी।'[2]

यौवनावस्था के प्रस्फुटन से सीता के चापल्य रूपी शुक स्वयमेव ही विनष्ट हो गए। सीता में लज्जाशीलता, गंभीरता आदि स्त्रियोचित गुणों का प्रस्फुटन होने लगा। हठ, चपलता आदि का स्थान गंभीरता, लज्जाशीलता आदि ने ले लिया अतएव सीता स्वभाव से शान्त, गंभीर एवं एकाकी प्रिय हो गई। महाकवि ने यहाँ सीता के सौन्दर्य वर्णन में भी प्रभूत लेखनी चलाई है। अनेक उपमानों द्वारा वैदेही के रूप लावण्य का वर्णन किया है। सीता की यौवनावस्था को देखकर समवयस्क सखियाँ उसे कामव्यापार विषयक विविध वार्ताओं से छेड़ती हैं। रात–दिन अन्तःपुर तथा सखियों की टोली में कामविषयक चर्चाओं के कारण प्रणय भावना से आविष्ट होकर सीता भी कामावस्था के उद्दीपन से सम्भ्रमित युवती के समान एकमात्र प्रियतम विषयक चिन्तन में रत रहने लगी, यथा–

दिवानिशं पंचशरानुशंसनात् प्ररुढरागैव विदेहनन्दिनी।
अथादिशय्यं दयितार्थजागरं समाचरन्ती स्मरसन्निधिं ययौ।।[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–2/49
2. वही–3/17
3. वही–3/32

इस सर्ग में महाकवि ने यौवनावस्था में पदार्पण करने वाली सखियों के आपसी वार्तालाप का एक दूसरे को छेड़ने का, उपहासादि क्रियाओं का वर्णन कर काम भावना के वशीभूत वैदेही की मनोस्थिति का चित्रण किया है।

चतुर्थ सर्ग –

सर्गारम्भ में महाकवि ने राम व सीता का लक्ष्मी नारायण स्वरूप प्रतिपादित करते हुए रावणत्व के विनाश को उनके अवतरण का मुख्य कारण बताया है। महाकवि ने इस सर्ग में अजनन्दन दशरथ सेवित अयोध्यापुरी की सुखद स्थितियों का भी विस्तृत वर्णन किया है।

सुख समृद्धि से परिपूर्ण अयोध्यापुरी में विश्वामित्र का आगमन होता है। विश्वामित्र का अभिनन्दनादि करने के पश्चात् श्रद्धा से परिपूर्ण सीरध्वज गुरु को ही अपनी समृद्धि का मूल प्रतिपादित करते हैं।[1] विश्वामित्र राजा दशरथ सेवित राज्य की सुदृढ़ स्थितियों का वर्णन करते हुए अपने तपश्चर्या में आने वाली विघ्न–बाधा से राजा दशरथ को अवगत करवाते हैं एवं यज्ञरक्षार्थ राम व लक्ष्मण की याचना करते हैं। विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्र रत्न राम को ले जाने की बात सुनकर पुत्र स्नेह से सिक्त चित्तवृत्ति वाले महाराज दशरथ व्यथित हो उठते हैं।[2]

महाराज दशरथ की अवस्था को देखकर करुणा–वरुणालय महामुनि विश्वामित्र का हृदय भी विगलित हो जाता है। उसी समय सही अवसर जानकर गुरु वसिष्ठ दशरथ को विश्वामित्र का महात्म्य बताते हुए अपने पुत्रों को महामुनि के साथ यज्ञरक्षार्थ भेजने की बात कहते हैं।

वसिष्ठ की बातों से तिरोहित मोह वाले कौशलेन्द्र दशरथ दोनों पुत्रों को विश्वामित्र को सौंप देते हैं। विश्वामित्र के सान्निध्य में अनेक विद्याओं व दिव्यास्त्रों के प्रयोग में पारंगत हो राम–लक्ष्मण यज्ञ विध्वंसक सुबाहु आदि राक्षसों का वध करते हैं। इसी बीच में मिथिला से महाराज जनक का दूत सीता स्वयंवर विषयक निमन्त्रण

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4 / 13
2. वही–4 / 25

पत्रिका लेकर विश्वामित्र मुनि के पास आता है। विश्वामित्र उभयकुमारों को जनक द्वारा किए जाने वाले स्वयंवर से परिचित करवाते हुए उनके समक्ष सीता के अनिन्द्य रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। गुरुमुख से सीता के अप्रतिम रूप–लावण्य को सुनकर राघव का हृदय एकमात्र वैदेही के प्रति आकृष्ट हो जाता है, वे मंत्रमुग्ध हो अनवरत सीता का चिन्तन करते हुए कामदेवता की शरण में पहुँच जाते हैं।[1]

पंचम सर्ग –

विदेहराज के निमन्त्रित किए जाने पर विश्वामित्र राम–लक्ष्मण सहित स्वयंवर सभा में भाग लेने हेतु मिथिलापुरी को प्रस्थान करते हैं। विश्वामित्र के आगमन का समाचार जानकर हर्षातिरेक से उत्कण्ठित जनक उनके अभिनन्दनार्थ जाते हैं एवं नूतन जलधर के समान श्यामल वर्ण राम तथा शरत्कालीन मेघ के समान धवल वर्ण लक्ष्मण की मुख माधुरी से मोहित होकर जिज्ञासावश मुनि से उभयकुमारों के विषय में पूछते हैं। विदेहराज की जिज्ञासा के शमन के लिए विश्वामित्र मुनि दोनों कुमारों के वंश, शौर्य, पौरुष आदि के विषय में बताते हुए दशरथनन्दन राम व लखन के रूप में उनका परिचय देते हैं, यथा–

कुतुकेन वशीकृताविमौ मिथिलां कौशलभूपनन्दनौ।
वसुधेन्द्र! मदेकसङ्गिनौ सुभगौ ह्लादयितुं समागतौ।।[2]

महाराज जनक विश्वामित्र सहित उभयकुमारों के ठहरने का उचित प्रबन्ध करवाकर राजप्रासाद में लौट जाते हैं। विश्वामित्र मुनि भी अपने अग्निहोत्र के लिए पुष्पचयन हेतु दोनों राजकुमारों को आदेश देते हैं। गुरु की आज्ञानुसार दोनों राजकुमार पुष्प चयनार्थ जनक की विलासवाटिका में प्रवेश करते हैं। कामभावना तथा प्रीति को बढ़ाने के लिए अंकुरभूत विलासवन के मनोमुग्धकारी दृश्यों को देखकर राघव के मन में बीजरूप में स्थित कामाग्नि भड़क उठती है। कामोद्दीपक वाटिका में राघव विश्वामित्र वर्णित स्मृत रूप वाली सीता को अपने मन–मन्दिर में बसा लेते हैं।

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/46
2. वही–5/38

विलासवनिका का कामोद्दीपक वातावरण सियाराम के संगम में सहायक सिद्ध होता है। इसी वनिका में रघुराज का स्वप्रिया से प्रथम संगम होता है।

षष्ठ सर्ग –

पुष्पचयन के लिए राम व लक्ष्मण पहले से ही पुष्पवाटिका में विद्यमान होते हैं। उसी समय वहाँ गिरिजा मन्दिर में जाने के लिए सखियों से घिरी हुई विदेहनन्दिनी का आगमन होता है। राम व लक्ष्मण लता निकुंज में छिपकर सीता व उसकी सखियों को देखते हैं। सीता के प्रथम दर्शन से राम जड़वत हो जाते हैं एवं अपने इस तरह के विपरीत आचरण से आश्चर्यचकित होकर लक्ष्मण के समक्ष उक्त मनोव्यथा व्यक्त करते हैं।

दशरथकुमारों के मध्य गुप्त रूप से होने वाले आपसी संवाद को सुनकर सीता की सखी, राघव के रूप–सौन्दर्य से आकृष्ट होकर सीता के सामने सम्पूर्ण वृत्तान्त को कहती है। सखी के मुख से राघव के रूप, गुण, वंश आदि के विषय में सुनकर चंचलचित्त जानकी भी राघव के दर्शन के लिए सखियों के साथ प्रस्थान करती है। राम व सीता का मिलन होता है। राघव, सीता के प्रति अनेक प्रकार से प्रणय निवेदन करते हैं, सीता लज्जावश कुछ भी कहने में असमर्थ होती है। सखीजनों से उपहसित सीता, राघव से स्वयं को छुड़वाने की प्रार्थना करती है। राघव द्वारा छोड़ने पर सीता गिरिजा मन्दिर में प्रस्थान करती है। सीता के ओझल हो जाने पर पूर्वराग से पुलकित गात वाले राघव भी वहाँ से चले जाते हैं।

सप्तम सर्ग –

राघव विलास वाटिका में होने वाले प्रथम सम्मिलन को स्मृत कर रोमांचित हो उठते हैं। रात्रिवेला में ही गुरुवर्य से अगले दिन घटित होने वाले सीता के महनीय स्वयंवर को सुनकर राघव की सम्पूर्ण रात्रि स्वप्न दर्शन में ही व्यतीत हो जाती है।

प्रातः कालीन वेला में विश्वामित्र दोनों कुमारों के साथ स्वयंवर सभा में पहुँचते हैं। देश–देशान्तर से आए हुए नरपतियों, राजकुमारों, कुटुम्बिजनों तथा पुरवासियों के

समक्ष विदेहजा को वीर्यशुल्का बताते हुए सीरध्वज स्वयंवर सभा को सम्बोधित करते हुए संयमित व सारगर्भित वाणी में घोषणा करते हैं कि– जो कोई वीर अक्षत शम्भुचाप 'पिनाक' को वेगपूर्वक ऊपर उठाकर प्रत्यंचा को धनुर्दण्ड पर आरोपित कर देगा, लोक के समक्ष आज वही सीता का पति होगा, यथा–

य एव वीरोऽक्षतशम्भुचापं द्रुतं समुत्थाय पिनाकमुच्चैः।
गुण×च दण्डेन युनक्ति सोऽसौ सीतापतिर्लोकसमक्षमद्य।।[1]

पराक्रमी राजाओं के विफल प्रयासों को देखकर विदेहराज दुःखित हो जाते हैं। जनक को विश्वस्त करते हुए विश्वामित्र अवसरानुकूल वाणी का प्रयोग करते हैं, वे कहते हैं कि 'सूर्य की प्रभा से दूर करने योग्य अन्धकार राशि जुगुनुओं की टोली से नहीं हटाई जाती, यथा–

व्यपोह्यते नो तमसां हि भारः खद्योतपुंजैरविभाऽपनयैः।।[2]

गुरु से आज्ञा पाकर राघव, अपने गुरु, पिनाक धनुष व शिव की अर्चना करके पिनाक भंजन करते हैं। राघव द्वारा पिनाक भंजन किए जाने पर सभी ओर हर्ष व्याप्त हो जाता है। नगरवधूटी महिलाएँ मंगलगायन करती हुई वर दर्शनार्थ आती हैं। पटरानी सुनयना जमाता का अभिनन्दन करती हैं। स्वयंवर सभा में अपनी सखियों के साथ आई हुई सीता श्रीराम के कण्ठ में माला पहनाकर वर चयन करती है। विश्वामित्र की प्रेरणा से सर्गान्त में राजा जनक विवाह सम्बन्धी लोकाचारों को सम्पन्न करवाने हेतु दशरथ के पास सन्देश भिजवाते हैं।

अष्टम सर्ग–

जनक दूत के मुख से पिनाक भंजन का समाचार सुनकर महाराज दशरथ सहित सम्पूर्ण अयोध्यानगरी हर्षातिरेक में मग्न हो जाती है। दशरथ अपनी विविध सेनाओं सहित स्वजनों से सुशोभित हो उसी क्षण विदेहनगर की ओर प्रस्थान करते

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/33
2. वही–7/54

हैं। जनकपुरी पहुँचने पर मिथिलाधिपति सहित सम्पूर्ण नगरी यहाँ तक कि प्रकृति भी महाराज दशरथ की पहुनाई करती है।

महाराज दशरथ के मिथिला पहुँचने पर विवाह विधि का प्रारम्भ होता है, मनोहर गीत ध्वनियों से गुंजित वातावरण में सात फेरों की रस्म द्वारा राम–सीता सहित अन्य दशरथ कुमार भी मिथिला नरेश की कन्याओं का वरण करते हैं। विवाह के पश्चात् विदाई वेला में स्वजनों के बिछौह से कातर सीता को जनक सुखी गृहस्थ जीवन हेतु सदुपदेश देते हुए अयोध्यापुरी के लिए विदा कर देते हैं।

नवम सर्ग –

नववधूटियों सहित बारात के आगमन से सम्पूर्ण अयोध्या नगरी में उत्सव सरीखा वातावरण हो जाता है। सम्पूर्ण नगरी उत्तम सजावट के कारण अद्वितीय शोभा को धारण करती है। अपनी वधुओं का मुख देखने के लिए तीनों रानियाँ उत्सुक हैं, कौशल्या नववधुओं की अगवानी करती हुई मंगल प्रवेश कराती है।

गृह प्रवेश के बाद सीता आदर्श बहू, आदर्श पत्नी, आदर्श भाभी व आदर्श भगिनी के रूप में अपने सभी कर्त्तव्यों का निर्वहन करती हैं। होली आदि उत्सवों के अवसर पर देवर–भाभी, देवरानी–जेठानी के आपसी हास–परिहास से सम्पूर्ण रनिवास आनन्दमग्न हो उठता है एवं वर्षों के व्यतीत होने का भान तक किसी को नहीं होता।

दशम सर्ग –

सभी कुटुम्बिजनों के साथ महाराज दशरथ के बारह वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत हो जाते हैं। अनायास दर्पण दर्शन से राजा को अपनी वृद्धावस्था का भान होने के साथ ही अपने कर्त्तव्य का स्मरण होता है। कर्त्तव्य का बोध होने पर राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं परन्तु विधि का विधान कुछ और ही होता है। राम व सीता का अवतरण लोककल्याण हेतु हुआ है अतः दशरथ की अभिलाषा पूर्ति में बाधक स्वरूप माँ शारदा वेगपूर्वक मन्थरा के विचारों में प्रवेश करती है। मन्थरा के विषाक्त उद्गारों से मंझली रानी कैकयी मूढ़ एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़

हो जाती है एवं राजा दशरथ पर कुठाराघात करती हुई वरद्वय की याचना करती हुई कहती है कि 'स्वामी' राज्याभिषेक के इसी अवसर पर मेरे पुत्र को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करें तथा वल्कल वस्त्र धारण कर राम चौदह वर्षों तक अयोध्या से दूर किसी वन प्रदेश में तपस्वी के रूप में निवास करें–

अनेनैव राज्याभिषेकोत्सवेन सुतः स्थाप्यताम्ये वरोऽयं स एकः।
वसानस्तपोबल्कलं बद्धकेशःउदासीन वृत्तिश्च रामो वनान्ते।
दशाब्दं तुरीयाधिकं यावदास्तामयोध्यातिदूरं वरोऽयं द्वितीयः।।[1]

वचन परायणता से विवश दशरथ राम को चौदह वर्ष का वनवास देते हैं। रामवनवास से सम्पूर्ण राजधानी शोकमग्न हो उठती है। सौम्य मनोवृत्ति राम, अभीष्ट साम्राज्य भार को तिलांजलि देकर सहचरीभूता सीता व अनुज लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान करते हैं।

एकादश सर्ग –

वन में राम चित्रकूट क्षेत्र में कामद पर्वत शिखर पर पर्णकुटी बनाकर सीता व लक्ष्मण सहित निवास करते हैं। पति सान्निध्य को सर्वस्व मानने वाली सीता वन को भी राजमहलों से अधिक सुखदायक मानती है एवं ऋषि–मुनियों के स्वागत सत्कार से स्वजीवन को धन्य करती हुई सुखपूर्वक समय व्यतीत करती हैं।

चित्रकूट में ही पितृशोक से व्यथित भरत का आगमन होता है, वे राम से पुनः अयोध्या चलने का आग्रह करते हैं परन्तु पित्राज्ञा को सर्वोपरि मानने वाले राघव, भरत को अपनी चरणपादुकाएँ समर्पित कर पुनः अयोध्या भेज देते हैं।

चित्रकूट में उमड़ते स्वजनों के सैलाब को लक्ष्य पूर्ति में बाधक मानकर राम दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं। दण्डकारण्य में ही शूर्पणखा का आगमन होता है। शूर्पणखा राम व लक्ष्मण के प्रति प्रणयनिवेदन करती है। कुपित लक्ष्मण शूर्पणखा के अंग विक्षत कर देते हैं। विक्षत अंगों वाली शूर्पणखा रावण के समक्ष सीता के सौन्दर्य

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/66,67

का गुणगान कर उसे सीता के अपहरण हेतु उकसाती है। रावण के मन में सीता के प्रति स्मर रूपी अंकुर का प्रस्फुटन होता है। शूर्पणखा द्वारा उत्साहित अभिमानी रावण मारीच के साथ मिलकर जानकीहरण रूपी षडयंत्र की व्यूहरचना रचता है।

राम व रावण के स्वर्णमृग प्राप्ति हेतु चले जाने पर छल प्रवंचना परायण कपटी रावण यतिवेश धारण कर जानकी के समक्ष आता है। वैदेही को एकाकी पाकर लंपट रावण अनेक प्रकार से जानकी के प्रति प्रणयनिवेदन करता है परन्तु राम में ही एकमात्र अनुरक्त सीता, रावण की भर्त्सना करती हुई उसे अनेक कठोर वचनों द्वारा फटकारती है। अपनी शक्ति के बल से रावण, सीता का अपहरण करता है। रावण द्वारा अपहृत सीता करुण क्रन्दन करती हुई रघुनाथ व लक्ष्मण को पुकारती है।

द्वादश सर्ग –

रावण अपहृत सीता को अपनी पुरी में ले जाकर अशोक वाटिका में पहुँचा देता है। प्रिय विरह से विरहित वैदेही अपने भाग्य को कोसती है। कामभावना के वशीभूत रावण पुनः पुनः अशोक वाटिका में आकर विविध प्रलोभनों द्वारा सीता से प्रणय याचना करता है परन्तु हर बार पतिपरायणा सीता द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत कर दिया जाता है। अपनी अवमानना से आहत रावण, सीता को विषवल्लरी, दुर्मुखी आदि सम्बोधनों से सम्बोधित करता हुआ उसे मारने के लिए उद्यत हो जाता है। सीता स्वयं को रावण द्वारा बलात् किए गए स्पर्श से दूषित मानकर होम कर देना चाहती हैं, यथा–

नेदं वपुः श्रयति में शुचितां पुराणीं स्पर्शेण दूषितमहोऽधम रावणस्य।
अद्यैव नाथ! विदहामिचिताग्नितल्पे स्याद्येन जन्मनि नवे पुनरेव पूतम्।।[1]

त्रयोदश सर्ग –

प्रियवियोग से संतप्त जानकी अशोकवन में ही स्थित रहकर आह्लाद का संवर्धन करने वाली राघव विषयक कथा को सुनकर आश्चर्यचकित हो उठती हैं। उसी समय

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–12/79

वैदेही के कौतूहल के निवारणार्थ हनुमान स्वयं को राघव का दूत बताकर उनके समक्ष उपस्थित होते हैं एवं अभिज्ञानस्वरूप श्रीराम नाम से अंकित मुद्रिका सीता को प्रदान करते हैं। सीता के समक्ष राम की वियोगावस्था को वर्णित करने के पश्चात् हनुमान् राघव की सान्त्वना के लिए वैदेही से भी प्रतीकस्वरूप कुछ देने को कहते हैं। प्रिय बिछौह रूपी विपत्ति सागर में डूबती हुई वैदेही अपने रक्षक रूप हनुमान को स्मृति चिह्न स्वरूप अपनी चूड़ामणि सौंपती है।

सीता से विदा लेकर हनुमान अपने पौरुष से चहुँ ओर उत्पात मचाते हैं एवं अशोकवन की सुन्दरता को नष्ट कर उसे सशोक एवं विधुर बना देते हैं। इस घटना से आक्रोशित रावण द्वारा आज्ञापित अक्ष हनुमान् को दण्डित करने आता है परन्तु हनुमान् के हाथों मारा जाता है। सहोदर वध का वृत्तान्त सुनकर आया हुआ मेघनाद हनुमान् को नागपाश से बाँधकर लंकापति के समक्ष प्रस्तुत करता है। हनुमान् अपने वचन कौशल से भरी सभा में रावण की भर्त्सना करता है। कपीन्द्र के दुर्वचनों से कदर्थित दशानन कुपित होकर महावीर की पूँछ में आग लगाने का आदेश देता है, यथा– **'लोलजिह्वं प्रदग्धलाङ्लमिमं।'**[1]

लंकापति के आदेश से हर्षित हनुमान् उसी क्षण अपनी पूँछ से सम्पूर्ण लंकानगरी को दग्ध कर एवं माता वैदेही के चरणों में सादर प्रणाम कर पुनः स्वामी श्रीराम के पास लौट आते हैं।

चतुर्दश सर्ग –

वैदेही विषयक समाचार से पुलकित गात वाले पवनपुत्र राघव के चरणों में सम्पूर्ण समाचार आद्योपान्त वर्णित कर उन्हें वैदेही प्रदत्त प्रणय प्रतीकस्वरूप चूड़ामणि अर्पित करते हैं एवं राघव से सीता के प्राणों की रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम तत्क्षण ही शत्रुनगरी पर विजय प्राप्ति हेतु कूच करते हैं। आसन्न विनाश से विपरीत मति वाला रावण भी अपने वरिष्ठजनों की अवहेलना कर सीता को पुनः राम को लौटाने के लिए राजी न होते हुए युद्ध हेतु तैयार होता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–13/68

छल प्रव×चना प्रवण रावण अनेक प्रकार की युक्तियों से सीता को डराकर उसे अपनी पट्टमहिषी बनने के लिए विवश करता है परन्तु एकमात्र राम में ही अनुरक्त सीता की अव्यभिचारिणी निष्ठा देखकर अपने प्रयासों में विफल हो जाता है एवं पुनः अपने महल लौट जाता है।

राम व रावण की सेना में घमासान युद्ध होता है। मेघनाद रात्रिवेला में स्वयं अलक्षित रहकर राम एवं लक्ष्मण को अपने बाणों से बींध डालता है एवं नागपाश में जकड़ देता है। रावण एक बार फिर वैदेही को पुष्पक विमान द्वारा रणभूमि में लाकर राम व लक्ष्मण के मृत शरीर दिखाता है। स्वयं को अपने पति व देवर की मृत्यु का कारण मानती हुई वैदेही अपने भाग्य को कोसती है।

राम द्वारा कुम्भकर्ण आदि का वध होने पर आक्रोशित मेघनाद मायानिर्मित जानकी का शीश खड्ग से विच्छिन्न कर देता है। राम अपनी प्रियतमा का वध वृतान्त सुनकर करुण विलाप करते हुए वैदेही की रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण स्वजीवन को व्यर्थ बताते हैं।

चिरकाल से आकांक्षित अपने वैरी, लोकसन्तापक रावण को समक्ष देखकर राघव का क्रोध फूट पड़ता है, रावण से आतंकित धरा को आतंकविहीन करने की प्रतिज्ञा करते हुए राघव कहते हैं कि आज मेरे द्वारा रावण के मारे जाने पर धरा या तो रावणविहीन हो जाएगी या मेरे दिवंगत होने से राघवविहीन हो जाएगी, यथा–

हरामि भुवनत्रयप्रचितशोकशङ्कुकं रणे
निहत्य दनुजाधमं बहुतिथावधि प्रेक्षितम्।
भविष्यति वसुन्धरा नियततमद्य निरावणा
दशास्यनिधनेऽथवा मया हते तु नीराघवा।।[1]

जगत सन्तापक रावण रघुसुत के बाणों से मारा जाता है। अंत में असत्य पर सत्य की, बुराई पर अच्छाई की एवं अधर्म पर धर्म की जीत द्वारा धरा पर ऋत एवं सत्य प्रतिष्ठित होते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–14/74

पंचदश सर्ग–

इस सर्ग में राघव आदेशित मरुत्सुत रावणवध विषयक कल्याणकारी समाचार को अशोकवन में स्थित विदेहनन्दिनी तक पहुँचाते हैं। अपने प्रियतम को देखने के लिए उत्सुक सिया जैसे ही रामचन्द्र के समक्ष उपस्थित होती है वैसे ही राघव सीता के प्रति रोषपूर्ण कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं। शत्रुगृह में निवास करने वाली सीता की पवित्रता के प्रति प्रजाजनों के मध्य उठने वाले भावी सन्देह को कारण मानकर राघव, सीता की उपेक्षा करते हैं यथा–**'परन्तु विश्वासयितुं सुदुष्करं भवेन्तु लोकं चरिताभिशंकिनम्।'**[1]

सीता को अस्वीकार करते हुए राघव उसे स्वेच्छा से अन्यत्र चले जाने के लिए कहते हैं। अपने पति के इस तरह के कठोर वचन सुनकर सीता लोकनिन्दा से डरने वाले राम की कटु शब्दों द्वारा भर्त्सना करती है। राघव के निष्ठुर व्यवहार की आलोचना करती हुई सीता, राम को रावण से भी भयावह बताती है, यथा–

कूले रघूणामुदितः पतिर्मम त्वमार्यसंस्काररतो गुणाग्रणीः।
परन्तु लोकस्य पुरः कदर्ययन् विपन्नभार्यां ननु भासि दारुणः।।[2]

अपनी अवमानना से आक्रोशित सीता स्वयं के प्रति होने वाले गर्हित व्यवहार की भरी सभा में निन्दा करती है, पति के निष्ठुर व्यवहार की कठोर भर्त्सना करती हुई जानकी अपने पवित्र चरित्र की प्रमाणिकता हेतु अग्निपरीक्षा देती है। शुद्ध चरित्र वाली सीता को स्वयं अग्निदेव राम को सौंपते हैं। राम स्वयं भी प्रजानुर×जन को ही अग्निपरीक्षा का मुख्य कारण बताते हुए सहर्ष अपनी भार्या सीता को स्वीकार करते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/33
2. वही–15/58

षोडश सर्ग–

अग्निदेव द्वारा पवित्रीकृत पत्नी सीता व सभी सुहृदगणों के साथ रामचन्द्र अयोध्या लौटते हैं। अपने आगमन का समाचार राम, हनुमान् द्वारा भरत के पास भिजवाते हैं। हनुमान के मुख से अपने ज्येष्ठ भ्राता के आगमन का समाचार जानकर रोमांचित लक्ष्मण चित्त की चेतनता भूल बैठते हैं।[1]

राम प्रत्यागमन के समाचार से सम्पूर्ण नगरी की सुन्दरता नायिका के समान निखर उठती है। राम का राज्य पद पर अभिषेक होता है तथा विदेहनन्दिनी पट्टमहिषी के पद को सुशोभित करती है।

सप्तदश सर्ग –

राज्य पद पर अभिषिक्त राघव के शासनकाल में सर्वत्र सुख व सम्पन्नता व्याप्त हो जाती है। इसी वैभव व सम्पन्नता के बीच वैदेही भी रघुकुल की परम्परा के उन्नायक, पवित्र एवं तेजस्वी, अक्षत गर्भ को धारण करती है। अन्तः पुर सहित सम्पूर्ण नगरी हासपरिहास एवं उल्लास की सुषमा से सुवासित हो आनंदमग्न हो उठती है परन्तु इसी समय राघव, दुर्मुख से सीता अपवाद सम्बन्धी हृदय विदारक समाचार को सुनकर विचलित हो जाते हैं। पुनः आशंकित प्रिया वियोग से उद्वेलित मनोवृत्ति वाले राम स्वयं को राजमहल में बन्द कर लेते हैं।

राम की उद्विग्नता से व्यथित भ्रातृभक्त लक्ष्मण अपने बड़े भाई की समस्या के मूल रूप में स्थित सीता विषयक जनापवाद का पता लगाकर क्रोधाविष्ट हो उठते हैं। प्रजावत्सल राघव द्वारा देवी स्वरूपा वैदेही के पुनः निर्वासन की कल्पना कर लक्ष्मण विपन्न हो जाते हैं। समस्या के उचित समाधान हेतु वे कुलगुरु वसिष्ठ से निवेदन करते हैं। कुमार लक्ष्मण के भयानक प्रतिरोष को देखकर व्यथा से पीड़ित त्रिकालदर्शी गुरु वसिष्ठ राघव को अपनी अनुमति के बिना किसी भी निर्णय पर न पहुँचने के लिए आदिष्ट करते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–16/61

अष्टादश सर्ग –

सीता विषयक अपवाद के निर्णय के लिए गुरु वसिष्ठ प्रभातवेला में सभा का आयोजन करते हैं जिसमें पत्नी सहित कुत्सित मति धोबी को भी आमन्त्रित करते हैं। सभासदों के समक्ष वसिष्ठ सीता–राम के लक्ष्मीनारायण स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रजक द्वारा फैलाए गए अपवाद को प्रस्तुत करते हैं। यहाँ सीता को वसिष्ठ रामप्रिया के साथ–साथ अयोध्या की सामान्य प्रजा बताते हैं एवं उन्हें भी अन्य प्रजाजनों के समान सामान्य अधिकारों का हकदार घोषित करते हैं।[1]

लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के समर्थक वसिष्ठ राम–राज्य में प्रजा को निर्भय होकर स्वतंत्र रूप से सीता विषयक लोकापवाद पर अपना मत प्रकट करने के लिए कहते हैं।[2] तुच्छ मति रजक द्वारा उठाए गए विवाद को सम्पूर्ण सभासद नकारते हैं, रजक को भी अपने वचनों पर पछतावा होता है। सीता को कलंकित करने पर वह गहरा दुःख प्रकट करता है। वह स्वयं को कोसते हुए सभासदों से कहता है कि मेरी नियंत्रण–विहीन जिà को आप लोग स्तंभित कर दे अथवा काट डालें, मेरी यह जिà लगाम विहीन है, मैं ही मन्दबुद्धि हूँ जिसने देवी वैदेही को कलंकित किया है, यथा–

जिàमिमां स्वैरगतिं विलोलां स्तभ्नन्तु छिन्दन्तुयथायथंभो।
न शास्मि यां वच्मि च पापगर्भ व्यलीकवादं किल मन्दबुद्धिः।[3]

जनमत से सीता विषयक अपवाद का निर्णय होता है, रजक अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए क्षमायाचना करता है। नवनीत सरीखा रामहृदय पिघल जाता है। राम धोबी को क्षमादान प्रदान करते हुए प्रजा कल्याण को ही अपना परम कर्त्तव्य बताते हैं–

प्रजामनोवृत्तिसमर्थनम्मे श्रद्धेयकृत्यं प्रथमं वरिष्ठं।
प्रजाहितम् प्रीततमं महिष्ठं प्रजैव सर्वं किल रामराज्ये।।[4]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18 / 67
2. वही–18 / 44
3. वही–18 / 94
4. वही–18 / 111

एकोनविंश सर्ग –

रजक द्वारा सीता की पवित्रता के विषय में उठाए गए अपवाद का लोकमत से निर्णय हो जाने पर गर्भिणी रामप्रिया राजमहल में ही पुत्रयुगल को जन्म देती है। सम्पूर्ण नगरी में उत्सव का वातावरण होता है। दोनों पुत्र अपनी शैशवकालीन क्रीड़ाओं से सबको मोहित करते हुए पाँच वर्ष की अवस्था को पार कर जाते हैं। उसी समय महामुनि वाल्मीकि अयोध्या में आते हैं। राम महामुनि से दोनों शिशुओं का नामकरण करवाते हुए महर्षि वाल्मीकि से ही अपने दोनों पुत्रों को दीक्षित करने का भी अनुरोध करते हैं। वाल्मीकि के साथ अपने पुत्ररत्नों को गुरुकुल जाते देख सीता व्यथित हो उठती है। पुत्रों से वियुक्त होकर सीता अपने जीवन की असमर्थता प्रकट करती है।[1]

राघव अनेक तरह के तर्कों से जानकी को समझाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु पुत्रस्नेह के वशीभूत जानकी दोनों पुत्रों के साथ स्वयं भी आश्रम जाने की इच्छा प्रकट करती है। लवकुश के साथ जानकी के भी राजप्रासाद छोड़कर आश्रम चले जाने पर राम बारम्बार पुत्रों सहित अपनी प्रिया जानकी का स्मरण कर विचलित हो जाते हैं।

विंश सर्ग –

इस सर्ग में आदर्श लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का स्वरूप सामने आता है। राम उत्तम लोकतंत्राश्रित राज्य की स्थापना करते हैं। उनके शासनकाल में सर्वत्र सुख, शान्ति व समृद्धि विद्यमान होती है। प्रत्येक वर्ग प्रसन्नतापूर्वक अपने–अपने कार्यों के सम्पादन में रत रहता है। आदर्श राज्य की स्थापना के साथ ही राम अपने वंश की कीर्ति के विस्तार हेतु अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं एवं अपनी भार्या सहित यज्ञ की दीक्षा लेते हैं। यज्ञ में विविध देशों से अनेक राजा, ऋषि व मुनि आते हैं। यज्ञोचित विविध कार्यों का निष्पादन करते हुए सियाराम यज्ञ की निर्विघ्न पूर्णाहुति करते हैं। इसी अवसर पर तत्ववेत्ता महर्षि वसिष्ठ क्रौंच वध के शोक से पीड़ित वाल्मीकि कृत रामकथा का परिचय देते हैं एवं कुश–लव द्वारा उस कथा का सभा के मध्य में गायन का निर्देश भी देते हैं–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–19/41

यज्ञान्ते ननु साम्प्रतं कुशलवौ रामायणीं तां कथां
गन्धर्वाविव रूपिणौ स्वरलयस्थानप्रमापारगौ।
तंत्रीवाद्यसमन्वितौ नवरसोद्‌गाराभिनेये पटू
कूजत्कण्ठमधुरस्वरौ तव सुतौ मध्येसभं गास्यतः।।[1]

एकविंश सर्ग –

इस सर्ग में गुरु वसिष्ठ का आदेश पाकर युगल कुमार प्रभातकालीन वेला में महासभा के मध्य में रघुनाथ की यशोगाथा का गायन करते हैं। दोनों सीतापुत्र राम के जीवन के सम्पूर्ण वृत्तान्तों का आद्योपान्त गायन करते हैं। सभी सभाजन रघुपति के गुणगीत को तथा देवी जानकी के शीलवृत्त को सम्यक् रूप से पीकर आँसुओं में आकण्ठ निमग्न होकर स्वजीवन को धन्य मानते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–20/54

2. कथा का परिणतस्वरूप –

रामकथा की जो धारा लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व प्रवाहित हुई वह आज भी अविच्छन्न रूप से प्रवहमान है। आदिकवि विरचित 'रामायण' की रामकथा को आधार बनाकर प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन साहित्यकारों द्वारा किया गया है। रामायण के उत्तरकाण्ड के विषय में विद्वानों के विविध मत हैं। कई रचनाकार ऐसे हैं जिन्होंने उत्तरकाण्ड को वाल्मीकि की रचना मानते हुए उन्हीं का अनुगमन किया है एवं सम्पूर्ण कथा को अपनी सर्जना का विषय बनाया है। कुछ ऐसे विद्वान कवि हैं जिन्होंने उत्तरकाण्ड को करुण चित्तवृत्ति वाले वाल्मीकि की रचना स्वीकार न करते हुए उसे प्रक्षिप्त अंश माना है तथा युद्धकाण्ड तक के कथानक को ही अपनी रचना का विषय बनाया है परन्तु आधुनिक साहित्य जगत में कुछ कविवर्य ऐसे भी हैं जिन्होंने उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त अंश मानते हुए उसे अपना वर्ण्य विषय तो बनाया है परन्तु मूलकथा में अपनी उर्वरकल्पनाशक्ति एवं नवीन उद्भावनाओं द्वारा अनेक परिवर्तन कर उसे सर्वथा नव्यनूतन स्वरूप प्रदान किया है।

विद्वान सर्जकों की इसी नवीन श्रृंखला में रेवाप्रसाद द्विवेदी, रामजी उपाध्याय, अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रभृति आधुनिक कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने उत्तरकाण्ड की कथा को अपना वर्ण्य–विषय तो बनाया है परन्तु कविश्रेष्ठ हृदय को द्रवीभूत कर देने वाली सीता निर्वासन की घटना से अत्यन्त आहत हैं अतः इन महाकवियों ने अपनी रचनात्मक ऊर्जायुक्त बुद्धि के द्वारा इस दुःखद घटना का यथोचित हल खोजने का यथासंभव प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। इन सभी महाकवियों के ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् मेरा यह मत है कि जानकीजीवनकार द्वारा इस समस्या का जो समाधान प्रस्तुत किया गया है, वह अत्यन्त प्रीतिकर व प्रीतिदायक है। महाकवि ने महाकाव्य के कथानक में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है वह यह है कि उन्होंने सीता निर्वासन के प्रसंग को अपनी प्रातिभ प्रतिभा से सर्वथा नवीन एवं मौलिक रूप से समुपस्थापित किया है।

रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य 'उत्तरसीताचरितम्' में सीता का निर्वासन तो दिखलाया है परन्तु यह निर्वासन श्रीराम की लोकमर्यादा की प्रतिष्ठा हेतु, वैदेही की स्वेच्छा से होता है। इस महाकाव्य में सीता द्वारा वन प्रस्थान का निर्णय करना ही कथानक में चमत्कृति युक्त नवीनता की झंकृति का सन्निवेश करता है। यहाँ अपने पति की मर्यादा को ही प्रथमगण्य मानकर सीता स्वयं वन प्रस्थान का निर्णय करती है, यथा—

यामि मातर इतः स्वस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा।
कीर्तिकायंमवितुं सुमानुषा मृत्युतोऽपि न हि जातु बिभ्यति।।[1]

रामजी उपाध्याय ने भी डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी के ही समान राम पर लगने वाले सीता परित्यागसम्बन्धी आक्षेप का वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से निराकरण दर्शाया है। रामजी उपाध्याय प्रणीत 'सीताभ्युदयम्' नाटक के कथानक के अनुसार ब्रह्मा द्वारा सीता की सन्तति का प्रसूतिकाल अभुक्तमूल में निश्चित कर दिया जाता है जिसके अनुसार उत्पन्न सन्तति का मुख बारह वर्ष पर्यन्त पिता सहित किसी भी कुटुम्बिजन द्वारा देखना शुभ नहीं है,यथा—

"यथाधिकारं मया पुत्र प्रसूतिकालोऽभुक्तमूले विहितः। अभुक्तमूले—जातस्य शिशोर्मुखं द्वादशवर्षाणि पित्रादि कुटुम्बजनैर्न द्रष्टव्यं महाविपत्ति—जननादिति।"[2] इसी प्रयोजनवश नाटक में सीता को स्वयं राम वाल्मीकि आश्रम में छोड़कर आते हैं।

यद्यपि दोनों ग्रन्थों में महाकवियों ने उत्तरकाण्ड में घटित सीता परित्याग रूपी घटना का यथोचित समाधान प्रस्तुत किया है तथापि दोनों ही रचनाओं में गर्भिणी सीता का राम से वियोग तो होता ही है जबकि जानकीजीवनकार डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने जो समाधान प्रस्तुत किया है उसमें उन्होंने सीता निर्वासन नहीं कराया है, वहाँ राम का अपनी अन्तःसत्त्वा पत्नी से वियोग वर्णित नहीं है अतः मेरा यह मत है कि

---

1. उत्तरसीताचरितम्—डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी—3 / 31
2. सीताभ्युदयम्—पं. श्री रामजी उपाध्याय—1 / 9

कविप्रवर डॉ. मिश्र ने सीता निर्वासन की घटना का जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह परम प्रीति, परमानंद एवं परमतोषदायक है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् हम पाते हैं कि इक्कीस सर्गों के महाकाव्य में महाकवि ने सहस्राब्दियों से अनुत्तरित सीता निर्वासन के प्रसंग का यथोचित समाधान प्रस्तुत किया है। महाकवि ने महाकाव्य के कई सर्गों में कथानक में परिवर्तन किया है जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण सर्ग है सप्तदश, अष्टादश एवं एकोनविंश सर्ग, जो कि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त कविवर्य ने महाकाव्य के द्वितीय, अष्टम एवं नवम आदि अनेक सर्गों में भी कथा सम्बन्धी अनेक परिवर्तन किए हैं। महाकवि ने रामायण के उत्तरकाण्ड से सम्बन्ध रखने वाले सप्तदश, अष्टादश एवं एकोनविंश सर्गों में जो परिवर्तन किया है वह निम्नवत् है–

रामायण में सीताविषयक जनापवाद उठने पर लोकनिन्दा के भय से राम सीता का परित्याग कर देते हैं परन्तु 'जानकीजीवनम्' में महाकवि ने इस कथा को अपनी नित्यनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से पूर्णतः परिवर्तित कर अपने महाकाव्य में सीता निर्वासन का उत्तमोत्तम समाधान कराया है। यहाँ सीता के विषय में लोकापवाद तो उठता है परन्तु लक्ष्मण के प्रयत्न एवं गुरु वसिष्ठ के चातुर्य से वह अंकुरित अवस्था में ही शान्त हो जाता है।

'जानकीजीवनम्' के सप्तदश सर्ग में सीताविषयक अपवाद को सुनकर राम व्यथित हो उठते हैं एवं उक्त विषय पर चिन्तन करने हेतु स्वयं को राजमहल में बन्द कर लेते हैं।[1] 'जानकीजीवनम्' के राम 'रामायण' के राम की भाँति तत्क्षण कोई भी निर्णय नहीं लेते। लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता के परिवर्तित व्यवहार से चिन्तित हो उठते हैं। सम्पूर्ण घटना का पता लगाकर लक्ष्मण पुनः आशंकित सीतापरित्यागरूपी अनर्थकारी घटना घटने से पूर्व ही इसकी सूचना गुरु वसिष्ठ को देते हैं तथा गुरु

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17 / 33

वसिष्ठ से समय रहते ही समस्या का उचित हल प्रस्तुत करने की विनती करते हैं।[1] वसिष्ठ लक्ष्मण को आदेशित करते हैं कि 'वत्स! जाओ और किवाड़ों की दरार से की गई उद्घोषणाओं द्वारा अभी इसी क्षण, राम को मेरा यह सन्देश सुना दो कि गुरुवर्य वसिष्ठ ने यह सन्देश भेजा है कि–हे राघव! मेरी उपेक्षा करके तुम्हें कोई भी (मनमाना) निर्णय नहीं लेना है, यथा–

गच्छ वत्स! कवाटरन्ध्रोद्घोषितैः श्रावय द्रुतमेव रामं मद्वचः।

मामुपेक्ष्य न निर्णयो ग्राह्यस्त्वया कोऽपि राघव! सन्दिशत्येवं गुरूः।।[2]

अष्टादश सर्ग में गुरु वसिष्ठ प्रातःकाल रजक व पत्नी सहित सम्पूर्ण पौरजनों की आमसभा बुलाते हैं एवं सभी के समक्ष सीता के विषय में उपस्थित हुए लोकापवाद रूपी नृशंस विषय पर अपने उद्गार प्रकट करते हैं, वे भरी सभा में सीता सम्बन्धी लोकापवाद पर प्रश्न उठाते हैं। लोकतंत्रात्मक रामराज्य में वसिष्ठ प्रत्येक सभासद को स्वतंत्र रूप से अपने विचार अभिव्यक्त करने को कहते हैं, सभासदों के किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व वसिष्ठ सभी के समक्ष वैदेही विषयक विविध प्रश्न उपस्थापित करते हैं। वे सम्पूर्ण सभासदों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि क्या देवी सीता को निन्दित चरित्र मानने वाला एकमात्र रजक ही है या अन्य लोग भी हैं? सीता के पवित्र चरित्र के पक्ष में विविध तर्क उपस्थित करते हुए गुरु वसिष्ठ कहते हैं कि क्या इस धरा पर कोई और अयोनिजा कन्या भी है जिसके विषय में आपने सुना हो? सीता के अतिरिक्त क्या कोई स्त्री भी इस धरातल पर है जिसने धधकती अग्नि पर आरूढ़ होकर अपने चरित्र की विशुद्धता प्राप्त की है, जो देवताओं द्वारा भी संस्तवन करने योग्य हैं, जिसके पातिव्रत्य के तेज से रावण उसका स्पर्श तक नहीं कर सका, क्या उस जानकी को लोक निन्दित चरित्र वाली समझता है?

सम्पूर्ण सभा के समक्ष वसिष्ठ यह मत भी प्रस्तुत करते हैं कि सीता पट्टमहिषी के साथ–साथ कौसल साम्राज्य की प्रजा भी हैं अतः उन्हें भी रामराज्य में

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17/51
2. वही–17/55

अन्य प्रजाजनों के समान सामान्य अधिकार प्राप्त हैं, सीता के भाग्य का निर्णय भी जनमत के आधार पर होना चाहिए। वसिष्ठ के अनुसार वैदेही के भाग्य का निर्णय न तो एक धोबी के द्वारा की गई निन्दा के आधार पर होगा और न ही पति के परूष अधिकार मात्र से होगा, राजमहिषी के भाग्य का निर्णय तो इसी सभा में बैठी प्रजाओं के मत से होगा, यथा–

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।
मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[1]

सीता के विशुद्ध चरित्र पर टीका टिप्पणी करने वाले धोबी को कोसते हुए वसिष्ठ उसके प्रति भी अनेक उलाहनापूर्ण वचनों का प्रयोग करते हैं। गुरु वसिष्ठ धोबी से कटु वाणी में कहते हैं कि तुमने जीवनभर वस्त्रों का मैल ही धोया है, बुद्धि का नहीं इसलिए त्रिभुवन वंदनीय जगज्जननी के चरित्र पर आक्षेप कर रहे हो, यथा–**'प्रक्षालितं वस्त्रमलं त्वया।'**[2]

स्त्री गरिमा के संरक्षक वसिष्ठ गुरु पुनः सम्पूर्ण सभासदों के समक्ष प्रचण्ड स्वर में कहते हैं कि जो कोई सीता को गर्हित चरित्र वाला मानता है वह स्वयं एक बार चिता पर चढ़कर अपने चरित्र की शुद्धता को प्रमाणित करें।

वसिष्ठ के तर्कसंगत वचनों को सुनकर सम्पूर्ण सभा ग्लानि व विषाद में डूब जाती हैं अपवाद फैलाने वाले रजक को भी अपने किए पर पश्चाताप होता है। वह स्वयं को दीनवाणी में कोसते हुए मूढ़बुद्धि, क्षुद्र कीट एवं क्रोध से विनष्ट मति वाला मानता है। पश्चातापयुक्त रजक सभी सभासदों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि मेरी इस चटुल जीभ को आप लोग स्तम्भित कर दें अथवा काट डालें जिस पर मैं लगाम नहीं लगा सका, वह स्वयं को मन्दबुद्धि बताते हुए देवी सीता के चरित्र को लांछित करने के लिए पश्चाताप व्यक्त करता है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/69
2. वही–18/63

जिह्वामिमां स्वैरगतिं विलोलां स्तभ्नन्तु छिन्दन्तु यथायथं भोः।

न शास्मि यां वच्मि च पापगर्भं व्यलीकवादं किल मन्दबुद्धिः।।[1]

वह धोबी स्वयं को अनपढ़, संस्कारहीन आदि बताते हुए भूतल पर उत्पन्न क्षुद्रकीट मानता है एवं सीताविषयक अपने कथन पर पश्चाताप करता हुआ क्रोध को ही इस सम्पूर्ण कृत्य का मूल बताता है, यथा– 'क्रोध के कारण विनष्ट विवेक वाला मैं रात में अपनी पत्नी को जो कुछ भी पापवचन कह गया उसका मूल न मेरे हृदय में था और न इस समय है, असह्य क्रोध समूह के वशीभूत होकर ही मुझ बुद्धिहीन ने उल्टा–पुल्टा बक डाला–

अवादिषं क्रोधविनष्टबुद्धिर्मुखेन यद्देव! निशि स्वभार्याम्।

न तस्य मूलं हृदये ममासीत् न वर्तते नाथ! शपामि धर्मैः।।

यथा वहन् मन्दगतिस्मीरः सृजत्यकस्मादपि भीष्मझंझाम्।

जितो महारोषचयैस्तथैव ह्युच्चावचं देव! जगाद मूढः।।[2]

विविध पश्चातापयुक्त वचनों से परिपूर्ण वह रजक अपने तुच्छ जीवन से मृत्यु को श्रेयस्कर मानते हुए राघव से बारम्बार क्षमायाचना करता है। उसकी दीनता, करुणा एवं संज्ञाहीनता को देखकर समस्त प्रजाजनों सहित राघव का हृदय भी दया से द्रवित हो उठता है। राघव प्रजाजनों की अनुमति का अनुमोदन ही अपना प्रथम कर्त्तव्य बताते हुए प्रजा को अपना सर्वस्व मानते हैं एवं गुरु वसिष्ठ के संकेत पर रजक को क्षमादान देते हैं।

इस तरह 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के सत्रहवें व अठाहरवें सर्ग में लक्ष्मण एवं गुरु वसिष्ठ के प्रयासों से सीता परित्याग रूपी घटना का सुन्दर समाधान महाकवि ने प्रस्तुत किया है जो कि कवि की अप्रतिम कल्पना शक्ति का परिचायक है, जिसका रामायण में अभाव है। रामायण में तो लक्ष्मण स्वयं ही अपने भाई की आज्ञापालन हेतु सीता को निर्जन वन में छोड़कर आते हैं यद्यपि वे इस कार्य को करने में अत्यन्त

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18 / 94
2. वही–18 / 99,100

दुःखी होते हैं तथापि अपने अग्रज द्वारा वचनबद्ध लक्ष्मण स्वयं को असहाय एवं विवश पाते हैं जबकि 'जानकीजीवनम्' के लक्ष्मण न तो वचनबद्ध हैं, न ही विवश हैं और न ही असहाय हैं। अभिराज के लक्ष्मण तो स्त्री गरिमा के रक्षक हैं। वे गुरु वसिष्ठ के साथ मिलकर सीता के रूप में प्रत्येक स्त्री की गरिमा की रक्षा करते हैं। महाकाव्य में गुरु वसिष्ठ की भी अहम् भूमिका है। रामायण के वसिष्ठ तो सीता परित्याग रूपी सम्पूर्ण वृत्तान्त से अनभिज्ञ ही दिखलाई पड़ते हैं परन्तु अभिराज के वसिष्ठ तो न केवल घटना से परिचित हैं अपितु वे गुरु पद की गरिमा के अनुरूप ही समस्या का उचित समाधान करने वाले निर्णायक भी हैं। रजक का पश्चाताप युक्त व्यवहार भी महाकवि मिश्र की नूतन कल्पना ही है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि गुरु वसिष्ठ व लक्ष्मण के समवेत प्रयास द्वारा रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन रूपी अनर्थकारी घटना का अत्युत्तम उपाय महाकवि की स्वकल्पना ने निःसृत किया है।

एकोनविंश सर्ग में भी कविवर्य ने रामायण की कथा से अनूठा परिवर्तन किया है क्योंकि रामायण में तो सीता का परित्याग होता है अतः वह वाल्मीकि आश्रम में ही दो जुड़वाँ पुत्रों को जन्म देती है जैसाकि वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है कि मुनिकुमार वाल्मीकि को आकर सीता के प्रसव की सूचना देते हैं –

भगवन् रामपत्नी सा प्रसूता दारकद्वयम्।
ततो रक्षां महातेजः कुरू भूतविनाशिनीम्।।[1]

'जानकीजीवनम्' में लक्ष्मण की तत्परता तथा वसिष्ठ के चातुर्य से सीता का निर्वासन ही नहीं होता अतः यहाँ राजमहल में रहते हुए ही सीता युगलपुत्रों को जन्म देती है, यथा–

अथ यथासमयं धरणीसुता रूचिरशारदसौम्या निशीथके।
प्रथितवंशधरौ यमजौ सुतौ रघुपति प्रतिमौ समजीजनत्।।[2]

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड 66/3
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–19/1

रामायण में वाल्मीकि स्वयमेव दोनों शिशुओं का नामकरण, शिक्षा–दीक्षा आदि कार्य सम्पन्न करते हैं[1] जबकि 'जानकीजीवनम्' में किसी प्रयोजनवश अयोध्या आए हुए महर्षि वाल्मीकि से राम अपने पुत्रों का नामकरण आदि करने का आग्रह करते हैं, यथा–

रघुपतिर्निजगाद सुताविमावकृतसंज्ञितकौ तदितः परम्।
भवदभीप्सितनामपदौ यदि प्रभवतां भविताऽस्मि कृतो प्रभो।।[2]

राघव अपने दोनों पुत्रों को शिक्षित करने हेतु वाल्मीकि से प्रार्थना करते हैं एवं स्वाश्रम ले जाने का अनुरोध करते हैं। इस प्रसंग में भी नवीनता के दर्शन होते हैं। पुत्रों को वाल्मीकि के साथ जाते देखकर सीता पुत्रस्नेह से विकल हो उठती हैं, वे अपने पुत्रों के साथ ही वाल्मीकि आश्रम जाने की हठ करने लगती हैं। राघव मैथिली को मातृसुलभ दुर्बलता का त्याग करने के लिए समझाते हैं परन्तु वात्सल्यवशीभूत सीता राम के समक्ष स्नेहमिश्रित अनेक तर्कों को उपस्थित कर आश्रम जाने की हठ करती हैं। अन्ततः राघव से अनुमति प्राप्त कर वे कुछ काल तक के लिए अपने पुत्रों सहित वाल्मीकि आश्रम के लिए प्रस्थान करती हैं। पुत्रों सहित सीता के चले जाने पर राम शोक व्यथित हो उठते हैं।[3] यह सम्पूर्ण कथानक रामायण की मूलकथा से सर्वथा भिन्न एवं कवि कल्पना की मौलिकता का परिचायक है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का द्वितीय सर्ग भी कवि की स्वयं की नूतन परिकल्पना है क्योंकि अधिकांश रचनाकारों ने वैदेही के उत्तरकाल से सम्बन्धित घटनाओं को ही अपनी सर्जना का विषय बनाया है। वैदेही की बाल्यकालीन चपलताओं से परिपूर्ण वर्णन प्रायः उपेक्षित ही हैं। सीता की वयानुसार बालसुलभ क्रीड़ाओं का प्रथम विस्तृत वर्णन अभिराज महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में देखने को मिलता है। महाकवि ने वैदेही की शिशुकेलियों के स्वाभाविक वर्णन में सम्पूर्ण सर्ग की रचना की है जो साहित्य जगत में अनूठा प्रयोग है।

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–66/7,8
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–19/33
3. वही–19/68

इस सर्ग में महाकवि द्वारा किए गए वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हैं। कई वर्णन तो ऐसे हैं जिन्हें हमारे आस–पास विद्यमान बालसमूह की क्रीड़ाओं में सरलता से देखा जा सकता है। महाकवि कृत वैदेही की बाल्यकालीन चपलताओं से सम्बन्धित कुछ उदाहरण यहाँ संदर्शनीय हैं–

सामान्यतया अबोध शिशु चाँद देखने पर उसे प्राप्त करने की लालसा करने लगता है उसी तरह जानकी भी अपनी माँ से चाँद प्राप्ति की हठ किया करती थी। शैशवावस्था में प्रायः बच्चे मिट्टी के विविध खिलौने एवं आकृतियाँ बनाकर उनसे अनेक तरह के खेल खेलते हैं, वैदेही भी मिट्टी की चक्की बनाकर झूठमूठ मिट्टी पीसने की क्रीडा करती हुई सभी को कौतूहल में डाल दिया करती थी, इस सन्दर्भ में महाकवि कृत उदाहरण दर्शनीय है–

क्वचिद् विनिर्माय मृदाघरट्टकं समं वयस्याभिरभीष्टरंजिनी।
मृषैव मृत्पेषणक्रमलीलया कुतूहलं सा विदधेऽवरोधिणाम्।।[1]

बाल्यावस्था में स्वजनों से कहानी सुनने के लिए हठ करने वाले शिशु के समान जानकी भी अपनी माँ से बारम्बार कहानी सुनाने की हठ किया करती थी। शैशवकाल में गुड्डे–गुड़ियाँ से खेलना प्रत्येक शिशु के लिए रूचिकर होता है, सीता भी अपनी सखियों के साथ गुड्डे–गुड़ियों से खेलते समय उनके समागम उपायों द्वारा सभी का मनोरंजन किया करती थी।

महाकवि ने वैदेही की विविध बालसुलभ क्रीड़ाओं के प्रसंग में ही जल सन्तरण क्रीड़ा का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार सन्तरण कला में कुशल सीता अपनी सखियों से जल सन्तरण की बाजी लगाकर अनेक प्रकार की कौतूहलपूर्ण क्रियाओं को करते हुए अपनी बुद्धि वंचना द्वारा सभी सखियों का मखौल उड़ाया करती थी। सन्तरण कला के साथ–साथ महाकवि ने सीता को पाककला में भी कुशल बताया है। यही कारण है कि सीता अपने पिता की अभिरूचि से प्रसन्न हो तृप्तिदायक व्यंजनों को बनाकर भोजनभट्ट रसोईयों को भी तिरस्कृत कर देती थी।

---

1. जानकीजीवनम्– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–2/14

इस तरह शिशुजनोचित खेल–खिलवाड़ों व बाल–सुलभ चपलताओं से युक्त वैदेही चरित्र का महाकवि ने सर्वप्रथम विस्तृत वर्णन किया है अतः यह कथा में कविकृत मौलिक परिवर्तन का सूचक है।

इसके अतिरिक्त भी हम देखते हैं कि महाकवि ने महाकाव्य के कई सर्गों में भी अप्रतिम परिवर्तन किया है जो निम्नवत् है–

'जानकीजीवनम्' के प्रथम सर्ग में भी कथा सम्बन्धी परिवर्तन परिलक्षित होता है। महाकाव्य में डॉ. अभिराज जी ने मिथिला में दुर्भिक्ष की भयावहता के साथ मैथिली की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया है जबकि रामायण में मिथिला में दुर्भिक्ष की भयावहता का कोई प्रसंग नहीं मिलता और न ही सीता की उत्पत्ति का विशद वर्णन वाल्मीकि ने किया है। रामायण में सीता के जन्म का संकेत एक पद्य में प्राप्त होता है जिसमें विदेहराज जनक धनुष परिचय के संदर्भ में अपनी पुत्री का उल्लेख राम, लक्ष्मण व विश्वामित्र के सामने करते हैं, यथा–

अथ में कृषतः क्षेत्रं लांगुलादुत्थिता ततः।।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धमात्मजा।।[1]

तृतीय सर्ग में भी महाकवि ने कथा में सूक्ष्म परिवर्तन किया है। अभिराज डॉ. मिश्र ने इस सर्ग में यौवनावस्था में पदार्पण करने वाली सीता की स्मरसंतप्त मनोव्यथा का आकर्षक चित्रण किया है, जो रामायण में अनुपलब्ध है।

चतुर्थ सर्ग में भी महाकवि ने अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति से कथा में सूक्ष्म परिवर्तन किए हैं। सर्वप्रथम महाकवि ने राम–लक्ष्मण के यज्ञ रक्षा हेतु विश्वामित्र मुनि के साथ प्रस्थान करने संबंधी प्रसंग में कथा परिवर्तन किया है। रामायण की कथानुसार जब विश्वामित्र अयोध्या आते हैं तो वे अपने यज्ञ की रक्षा के लिए मात्र राम को ही दशरथ से माँगते हैं[2], पुत्रमोह से व्यथित दशरथ के मना करने पर मुनि

---

1. रामायण–बालकाण्ड–66 / 13, 14
2. वही–19 / 15

अत्यधिक कुपित होकर राजा के प्रति कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं।[1] जबकि 'जानकीजीवनम्' में यह प्रसंग अन्य रूप में वर्णित है। यहाँ विश्वामित्र अपने यज्ञ रक्षार्थ राम सहित लक्ष्मण को भी अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट करते हैं।[2] स्नेहवश राजा के मना करने पर विश्वामित्र मुनि कुपित न होकर उनके वात्सल्य भाव को समझते हुए स्वयं भी करुणा से विगलित हो जाते हैं।[3] वसिष्ठ के समझाने पर दशरथ पुत्रमोह त्याग कर रामलक्ष्मण को विश्वामित्र को सौंप देते हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में महाकवि कृत परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

चतुर्थ सर्ग में ही राम–सीता के विवाह से पूर्व के कथानक में भी अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। रामायण में हम देखते हैं कि पिनाक धनुष के दर्शन मात्र के लिए विश्वामित्र राम–लक्ष्मण को मिथिला लेकर जाते हैं।[4] रामायण में स्वयंवर का कोई प्रसंग नहीं है जबकि अभिराज जी ने अपने महाकाव्य में दर्शाया है कि मिथिला से जनक का दूत विश्वामित्र को सीता स्वयंवर हेतु आमन्त्रित करने आता है[5], निमन्त्रण पत्रिका को देखकर विश्वामित्र राम व लक्ष्मण के समक्ष सीता के रूप, शील, सौन्दर्यादि का वर्णन करते हैं[6], जिसे सुनकर राम के हृदय में सीता के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। कविवर्य राजेन्द्र मिश्र जी ने विवाह से पूर्व ही राम को सीता के प्रति अनुरक्त दिखाते हुए राम की कामसंतप्त अवस्था का वर्णन किया है जो रामायण में उपलब्ध नहीं होता है।

पंचम सर्ग महाकवि कृत लोक–चित्रणों से परिपूर्ण हैं जो स्वयमेव रामायण से भिन्नता रखने वाले हैं। वाल्मीकि के रामायण में लोक परक चित्रणों का अभाव है।

षष्ठ सर्ग की कथावस्तु द्वारा भी महाकवि ने वाल्मीकि रामायण की कथा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। अभिराज जी ने स्वयंवर से पूर्व ही राजा जनक की विलास–वनिका में राम सीता मिलन व उनके आपसी अनुराग का वर्णन किया है जिसका रामायण में अभाव है।

---

1. रामायण–बालकाण्ड–21/2
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/21
3. वही–4/27
4. रामायण–बालकाण्ड–31/6, 7
5. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/38
6. वही–4/42

सप्तम सर्ग में महाकवि ने स्वयंवर सभा की भव्यता तथा पिनाक भंजन के पश्चात विविध लोकाचारों का सुन्दर वर्णन किया है जो कविकृत कथापरिवर्तन के सूचक हैं।

अष्टम सर्ग में भी महाकवि ने विवाह वर्णन के प्रसंग में लोक प्रचलित विविध रीति–रिवाजों का समावेश कर कथा में अद्‌भुत परिवर्तन किया है। यद्यपि रामायण में भी विवाह अवसर पर विविध रीति–रिवाजों का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है किन्तु रामायण में वर्णित विवाह पद्धति वैदिक है जबकि 'जानकीजीवनम्' में वर्णित विवाह पद्धति लोक–प्रचलित है। कविवर्य ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित वैवाहिक रीति–रिवाजों का अवलोकन किया है। महाकवि की इसी निरीक्षण शक्ति का परिणाम इस सर्ग में दृष्टिगत होता है। महाकवि ने वैवाहिक विधि में अनेक प्रान्तों में प्रचलित रीति–रिवाजों का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है। अतः यह सर्ग कथा परिवर्तन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

नवम सर्ग भी महाकवि कृत कथा परिवर्तन का सुन्दर निदर्शन है। इस सर्ग में महाकवि ने अयोध्या पहुँची नववधुओं के स्वागत का भव्य वर्णन किया है। यद्यपि रामायण में भी मंगलगीत आदि के गायन के साथ नववधुओं का गृहप्रवेश वर्णित है किन्तु अभिराज जी ने इस प्रसंग में नववधू के दर्शनार्थ लोगों में जो जिज्ञासा होती है उस जिज्ञासा का समावेश कर महाकाव्य में स्वल्प परिवर्तन को दर्शाया है। इसी सर्ग में महाकवि ने पति–पत्नी, देवरानी–जेठानी, देवर–भाभी आदि के व्यंग्यमिश्रित हास–परिहास परिपूर्ण व्यवहारों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है जो रामायण से सर्वथा भिन्न है।

दशम सर्ग में भी रामराज्याभिषेक के वर्णन के प्रसंग में महाकवि ने कथा परिवर्तन किया है। रामायण में वर्णन मिलता है कि दशरथ उम्र के साथ स्वयं ही सांसारिक बन्धनों से विरक्त हो जाते हैं[1] एवं राम को राज्यभार सौंपकर यथासमय

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–2/40

स्वर्ग सुख प्राप्त करना चाहते हैं।[1] जबकि 'जानकीजीवनम्' के दशरथ स्वयमेव सांसारिक भोगों से विरक्त नहीं होते[2], दर्पण देखकर उन्हें अपने कर्त्तव्य का अवबोध होता है। दर्पण को ही अपना सद्गुरु मानकर वे रामराज्याभिषेक का निर्णय करते हैं।[3] यह वर्णन महाकवि कृत कथापरिवर्तन को दर्शाता है।

महाकाव्य के ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें व सोलहवें सर्ग में कथा सम्बन्धित परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होते हैं।

सत्रहवें सर्ग में महाकवि ने अन्तःसत्त्वा सीता के मनोविनोद प्रसंग में पुनः हास्य प्रधान वर्णनों की अभिव्यंजना की है जिसका रामायण में अभाव है।

महाकाव्य के बीसवें व इक्कीसवें सर्ग में महाकवि ने रामायण से एकदम पृथक परिवर्तन किया है। रामायण में सीता का निर्वासन होता है, अश्वमेध यज्ञ में राम की अर्धांगिनी के रूप में सीता की स्वर्णमयी मूर्ति विराजमान होती है यहाँ राम अपने पुत्रों से भी अनभिज्ञ हैं। यज्ञ के अवसर पर ही रामकथा के श्रवण से राम, लव–कुश को सीता पुत्रों के रूप में पहचानते हैं।[4] सीता को पुनः अपने चरित्र की शुद्धता को प्रमाणित करने हेतु राम सन्देश भिजवाते हैं।[5] सीता भरी सभा में पुनः अपने चरित्र की शुद्धता प्रमाणित करते हुए दुःखी होती हैं एवं अपनी माँ भगवती से स्वयं को अपने अंक में समेट लेने का अनुरोध करती हैं, यथा–

तथा शपन्त्या वैदेह्यां प्रादुरासीत् तदद्भुतम्।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्।।[6]

'जानकीजीवनम्' में महाकवि ने सीता का निर्वासन ही नहीं दिखाया है अतः अश्वमेध यज्ञ में सीता ही राम की सहधर्मचारिणी के रूप में सभी धार्मिक कृत्यों का निर्वहन करती है। यज्ञ की समाप्ति पर वसिष्ठ के निर्देश पर लव–कुश रामचरित का गायन करते हैं।

---

1. रामायण–अयोध्याकाण्ड–2/45
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/7
3. वही–10/9
4. रामायण–उत्तरकाण्ड–95/2
5. वही–95/4
6. वही–97/17

'रामायण' में सीता अपनी अवमानना व तिरस्कार से पीड़ित होकर धरती में समा जाती है जबकि 'जानकीजीवनम्' की सीता स्वपुत्रों के मुख से अपने प्रियतम विषयक स्तुति परक रामायणगान को सुनकर आह्लादित हो उसमें रम जाती है। यही महाकविकृत कथासम्बन्धी मुख्य परिवर्तन है जो 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को रामायणाश्रित ग्रन्थों से पृथक् एवं श्रेष्ठ सिद्ध करता है।

◈◈◈

तृतीय अध्याय

रामकथा आधृत महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण

रामकथा आधृत महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण

ढाई सहस्र वर्ष पुरातनी रामायणी रामकथा को लेकर प्राचीनकाल से लेकर साहित्य रसिकों ने अपनी चिन्तनशक्ति एवं कल्पनाशीलता के आधार पर रामकथा के मूल इतिवृत्त में अनेक परिवर्तन करते हुए उसे नित नूतन स्वरूप प्रदान किया है। प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीनकाल तक साहित्यानुरागियों द्वारा रामकथा को आधृत कर ग्रन्थ प्रणीत करने की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई वह अविच्छन्न रूप से अधुनातन अक्षुण्ण बनी हुई है। इसी प्रयत्न में हमें रामकथा पर आधारित अनेक ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है, उनमें से कुछ प्रमुख उपलब्ध महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण शोध विषय की दृष्टि से प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास किया जा रहा है, जो निम्नवत् हैं–

1. **रघुवंश –ई. पू. प्रथम शताब्दी**

   वाल्मीकि कृत रामायण पर आधारित 'रघुवंश' महाकाव्य के प्रणेता महाकवि कालिदास हैं यद्यपि कालिदास के स्थितिकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं तथापि उपलब्ध विविध साक्ष्यों के आधार पर कविकुलगुरु का अनुमानित समय ई.पू. प्रथम शताब्दी मानना समीचीन है। रघुवंश महाकवि कृत 19 सर्गों का महाकाव्य है जिसमें महाराज द्विलीप से लेकर अन्तिम अग्निवर्ण तक कुल 21 रघुवंशी राजाओं का वर्णन विविध सर्गों के अन्तर्गत महाकवि द्वारा किया गया है। कालिदास ने महाकाव्य के दसवें सर्ग से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक रामचरित्र के वैशिष्ट्य का बड़ी सुन्दरता से चित्रण किया है।

2. **रामचरित – चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या पांचवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध**

   मातृगुप्त के सभाकवि काश्मीरी कवि भर्तृमेंठ का स्थितिकाल चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या पांचवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध अनुमानित है। इन्होंने सौ सर्गों में निबद्ध 'रामचरित' महाकाव्य की रचना की है जिसकी प्रति आज भी बनारस में उपलब्ध होती है।[1]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–131

3. रावणवध – चौथी अथवा पांचवीं शताब्दी

महाकवि भट्टि का अनुमानित समय चौथी अथवा पांचवीं शताब्दी माना जा सकता है। इसी काल में महाकवि भट्टि ने 'रावणवध' महाकाव्य की सर्जना की। यह महाकाव्य भट्टि के व्याकरणिक प्रयोगों के कारण विद्वत्समाज में अतिशय प्रिय रहा है अतः विद्वानों द्वारा इस महाकाव्य को 'रावणवध' के स्थान पर 'भट्टिकाव्य' की संज्ञा से अभिहित करना अधिक अभिप्रेत रहा है। इस काव्य में महाकवि ने रामजन्म से लेकर रामराज्याभिषेक तक के कथानक को उत्कृष्ट व्याकरणिक प्रयोगों व नवीन उद्भावनाओं सहित 22 सर्गों में निबद्ध किया है। रामायण के उत्तरकाण्ड की घटनाओं को महाकवि ने अपने महाकाव्य का वर्ण्य विषय नहीं बनाया है। अतः यहाँ रामायण के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की घटनाओं को ही महाकवि ने नव्यनूतन प्रयोगों के साथ सर्गबद्ध किया है।

4. जानकीहरण – पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी

कुमारदास के स्थितिकाल के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है तथापि उपलब्ध विविध साक्ष्यों के आधार पर इनका समय पाँचवीं या छठी शताब्दी माना जा सकता है। कुमारदास विरचित 'जानकीहरणम्' महाकाव्य को सम्पूर्ण 20 सर्गों सहित प्रकाश में लाने का श्रेय प्रयाग के पं. ब्रजमोहन व्यास जी को जाता है इससे पहले यह कृति–अपूर्ण रूप में प्राप्त थी।[1] जानकीहरणम् महाकाव्य का उपजीव्य वाल्मीकि कृत रामायण है। महाकवि ने रामायण के आरम्भिक छः काण्डों को आधार बनाकर 20 सर्गों में महाकाव्य की सर्जना की है जिसमें महाकवि ने रामजन्म से लेकर राम–रावण संग्राम तथा राम की विजय का वर्णन विविध सर्गों के अन्तर्गत किया है।

5. सेतुबन्ध – छठी शताब्दी

'सेतुबन्ध' प्रवरसेन विरचित प्राकृत महाकाव्य है। इस महाकाव्य में पन्द्रह आश्वास हैं जिसमें रामायण के युद्धकाण्ड की कथा वर्णित है जिसके अन्तर्गत सेतुबन्ध से आरम्भ कर रावणवध तक का कथानक वर्णित है।[2]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–135–137
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय–पृ.सं.–197

6. **राघवपांडवीय – नौवीं–दसवीं शताब्दी**

'राघवपांडवीय' महाकाव्य के रचनाकार धनंजय का अनुमानित समय 9वीं या 10वीं शताब्दी माना जाता है। धनंजय ने 'राघवपांडवीय' नामक द्विसंधान महाकाव्य की रचना की है। जिसमें अठारह सर्गों के अन्तर्गत रामायण व महाभारत की कथा एकसाथ श्लेष पद्धति में वर्णित है। इस महाकाव्य का सम्पादन शिवदत्त ने काव्यमाला में किया है।[1]

7. **रामचरित – नौवीं शताब्दी का मध्य**

नौवीं शताब्दी के महाकवि अभिनंद को 'रामचरित' महाकाव्य का रचनाकार माना जाता है। 36 सर्गों के इस महाकाव्य में महाकवि ने रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से आरम्भ कर युद्धकाण्ड तक की कथा वर्णित की है। इस महाकाव्य के विषय में प्रचलित है कि यह आरम्भ में अपूर्ण था। बाद में इसकी पूर्ति के लिए चार–चार सर्गों के दो परिशिष्ट अन्त में जोड़े गए, जिनमें से प्रथम परिशिष्ट स्वयं अभिनंद की रचना है जबकि द्वितीय परिशिष्ट भीम कवि कृत है। इसकी एक पाण्डुलिपि ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास के IV, 5371 में उपलब्ध होती है जिसका विभाजन 40 सर्गों तक है तथा इसी पर दूसरी पाण्डुलिपि मद्रास के एम.आर. कवि की है जिसमें 50 सर्ग व 67 पद्य हैं।[2]

8. **रावणार्जुनीयम् महाकाव्य – दसवीं शताब्दी**

'रावणार्जुनीयम्' महाकाव्य की रचना भट्भीम ने की है। इनका अनुमानित समय दसवीं शताब्दी के लगभग माना गया है। यह द्विसंधान महाकाव्य है जिसमें रावण व कार्तवीर्य अर्जुन दोनों की कथा 27 सर्गों में प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही इसमें पाणिनी के अष्टाध्यायी के नियमों का ज्ञान भी करवाया गया है।

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–169
2. वही–पृ.सं.–162

9. **रामायणमंजरी – ग्यारहवीं शताब्दी**

व्यासदास की उपाधि से विभूषित, राजा अनंत के समकालीन महाकवि क्षेमेन्द्र का समय ग्यारहवीं शती निर्विवाद सिद्ध होता है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने सात काण्डों में रामायण की कथा संक्षिप्त रूप में लिखी है। इस सार में 6400 श्लोक हैं। महाकवि ने बालकाण्ड व अयोध्याकाण्ड को मिलाकर एक काण्ड बना दिया है तथा किष्किन्धाकाण्ड को किष्किन्धा पर्व तथा किष्किन्धाकाण्ड इन दो भागों में विभक्त कर दिया है। यह महाकाव्य बंबई से मुद्रित है।[1]

10. **दशावतारचरित – ग्यारहवीं शताब्दी**

'दशावतारचरित' महाकाव्य के रचनाकार भी ग्यारहवीं शताब्दी के क्षेमेन्द्र ही हैं। महाकाव्य का विभाजन 10 खण्डों में किया गया है जिसमें 1759 श्लोकों में विष्णु के दशावतारों का वर्णन है। रामायण के नायक श्रीराम के अवतार का निरूपण महाकवि ने 294 पद्यों में किया है। यह महाकवि क्षेमेन्द्र की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसका रचनाकाल 1066 ई. है।[2]

11. **रामचरित – ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध**

सन्ध्याकरनन्दी विरचित 'रामचरित' श्लेष काव्य है। इस महाकाव्य में पाँच सर्ग तथा बीस आर्याएँ हैं। इस काव्य में राम तथा पालीवंश नरेश रामपाल की प्रशंसा एक साथ श्लिष्ट पदों के माध्यम से की गई है।[3]

12. **राघवपांडवीया – बारहवीं शताब्दी**

कविराज का स्थितिकाल बारहवीं शताब्दी का अनुमानित है। कुछ विद्वान इनका वास्तविक नाम माधवभट्ट बताते हैं व कविराज को इनकी उपाधि मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि इनका वास्तविक नाम कविराज सूरि है। कविराज ने 'राघवपांडवीया' नामक 13 सर्गों के महाकाव्य की रचना की है जिसमें कुल 668

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–171
2. वही–पृ.सं.–171 एवं संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी–पृ.सं.–254
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय–पृ.सं.–308

श्लोक हैं। यह महाकाव्य द्विसंधान महाकाव्य की श्रेणी में परिगणित होता है। इस महाकाव्य में महाकवि ने रामायण व महाभारत की कथा को श्लेष पद्धति से एकसाथ वर्णित किया है।[1]

13. पादुकासहस्र – तेरहवीं शताब्दी

अनन्तसूरि के पुत्र वेंकटनाथ ने 'पादुकासहस्र' काव्य की रचना की है। इस काव्य में एक हजार पद्य राम की चरण पादुकाओं की प्रशंसा में लिखे गए हैं। माना जाता है कि महाकवि ने इन पद्यों की रचना एक रात्रि में पूर्ण की थी।[2]

14. रामाभ्युदय – पन्द्रहवीं शताब्दी

विजयनगर के राजा सुलुव नरसिंह, प्रतापी व कवियों के आश्रयदाता राजा थे। 'रामाभ्युदय' महाकाव्य के विषय में प्रचलित है कि इनके उत्कृष्ट गुणों को देखकर इनके दरबारी कवियों ने इनसे राम का काव्यमय गुणगान करने का अनुरोध किया। अपनी सभा के कवियों के अनुरोध पर इन्होंने रामाभ्युदय नामक 24 सर्गों के महाकाव्य की रचना की जो रामायण पर आधारित था। इसका उल्लेख केटलॉग ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन त्रावणकोर III. 12 में मिलता है।[3]

15. उदारराघव – चौदहवीं शताब्दी

कवि साकल्यमल्ल को कविमल्ल अथवा मल्लाचार्य के नाम से भी जाना जाता है। कविमल्ल ने 18 सर्गों में निबद्ध 'उदारराघव' महाकाव्य की रचना की है, जिसके 7 सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। यह रामायण की कथा से सम्बन्धित महाकाव्य है जो 'रघुवंश' महाकाव्य के समान लिखा गया है। इस महाकाव्य में श्रृंगारिक वर्णनों की प्रधानता है।[4]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम.कृष्णमाचारियर–पृ.सं.189 व संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय–पृ.सं.–309
2. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम.कृष्णमाचारियर–पृसं.–208
3. वही–पृ.सं.–218
4. वही–पृ.सं.–210 एवं संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय–पृ.सं.–50

16. रघुवीरचरित – 14वीं शताब्दी का प्रारम्भ

मल्लिनाथ तेलगु परिवार के काश्यप गौत्र के 14वीं शताब्दी के कवि हैं। मल्लिनाथ ने 'रघुवीरचरित' महाकाव्य की रचना की जिसमें 17 सर्ग है। इस महाकाव्य का सम्पादन डॉ. मंजु उपाध्याय ने किया है जो सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ राम के दण्डकवन में प्रवेश करने से होता है। इस महाकाव्य में रामराज्याभिषेक तक की घटना वर्णित है। इसके लेखक के विषय में भ्रम है। इसके लेखक मल्लिनाथ हो सकते हैं परन्तु स्पष्टरूपेण नहीं कहा जा सकता। यह महाकाव्य त्रावणकोर से मुद्रित है।[1]

17. रघुनाथचरित – पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

विद्यारण्य के शिष्य वामनभट्ट बाण का समय 15वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। महाकवि ने 30 सर्गों में निबद्ध 'रघुनाथचरित' महाकाव्य की रचना की, जो रामकथा पर आधारित है।

18. ललितराघव – पन्द्रहवीं शताब्दी

कटक के अनंगभीम की राज्यसभा में वासुदेवरथ नामक कवि के पितामह श्रीनिवास द्वारा रचित ललितराघव 20 सर्गों का महाकाव्य है।[2]

19. रामकृष्ण विलोम काव्य – सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

देवज्ञ सूर्य अथवा सूर्यकवि विरचित 'रामकृष्ण विलोम काव्य' विलोम पद्धति की काव्यरचना है जिसके प्रथमार्द्ध में राम की तथा द्वितीयार्द्ध में कृष्ण की स्तुति है। यह द्वयर्थक काव्य रचना है जिसमें मात्र 38 पद्य हैं। यह काव्य कलकत्ता (काव्यसंग्रह) में और बोम्बे (काव्यमाला, XI) में मुद्रित है। इसकी पाण्डुलिपि डिस्क्रिप्टीव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास X X , 7960–61 में तथा केटलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द पैलेस लाइब्रेरी तन्जौर VI. 2833 में उपलब्ध है।[3]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–121
2. वही–पृ.सं.–270
3. वही–पृ.सं.–194

20. **राघव–यादव–पाण्डवीया–सत्रहवीं शताब्दी**

अनन्तनारायण के पुत्र चिदम्बर 'राघव–यादव–पाण्डवीया' के रचयिता हैं। इस काव्य में श्लिष्ट प्रधान शैली में रामायण, महाभारत व भागवत की कथा का एकत्र वर्णन किया गया है। यह काव्य तीन सर्गों में निबद्ध है, जो अप्रकाशित है। इस काव्य को सर्वोत्कृष्ट श्लिष्ट काव्य कहा जा सकता है जो डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्टस लाइब्रेरी, मद्रास X X संख्या 7829 में प्राप्य है।[1]

21. राघवयादवीया – सत्रहवीं शताब्दी

'राघवयादवीया' महाकाव्य के रचयिता कृष्णासूरि के पुत्र सोमेश्वर को माना जाता है। यह महाकाव्य 15 सर्गों में निबद्ध है जिसमें श्लेष प्रधान शैली में राम व कृष्ण की कथा का एकत्र निबन्धन है।[2]

22. यादवराघवीया – सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

17वीं शताब्दी के कवि वेंकटाध्वरी ने 'यादवराघवीया' नामक लघुकाव्य की रचना की है जिसमें 300 श्लोक हैं। इस काव्य में विलोम पद्धति से राम व कृष्ण दोनों के चरित्र का एकत्र निबन्धन किया गया है। यह श्लेष काव्य न होकर विलोम काव्य है, जिसमें किसी भी श्लोक को साधारण क्रम से पढ़ने पर राम के चरित्र व विपरीत क्रम से पढ़ने पर कृष्ण के चरित्र का वर्णन मिलता है। इसे अनुलोम–विलोम काव्य भी कहते हैं। यथा–

अनुलोम – वंदेऽहं देवं तं श्रीतं रन्तारं कालं भासायः।
रामो रामधीराप्यागो लीलामारायोध्ये वासे।।

विलोम – सेवाध्येयो रामालीला गोप्याराधी भारायोराः।
यस्सा भालकारं तारं तारं तं श्रीतं वन्देऽहं देवं।।

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–191
2. वही–पृ.सं.–191

यह ग्रन्थ डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास XX संख्या 7956 में उपलब्ध है।[1]

23. रामायणसारसंग्रह – सत्रहवीं शताब्दी

'रामायणसारसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना तंजोर के नायक वंशीय राजा रघुनाथ ने की है। यह रामचरित्रात्मक काव्य है जो रामायण की कथा पर आधारित है। यह ग्रन्थ विजयनगर इतिहास के स्रोत, मद्रास, 287 एवं गोविन्द दीक्षित की साहित्य सुधा में उपलब्ध है।[2]

24. जानकीपरियण – सत्रहवीं शताब्दी

17वीं शताब्दी के चक्रकवि ने 'जानकीपरियण' नामक 18 सर्गों के महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में रामायण के बालकाण्ड का कथानक वर्णित है। यह महाकाव्य रामजन्म से लेकर उनके मिथिला में होने वाले जानकी के साथ परिणय तक की कथा को वर्णित करता है।[3]

25. रामायणकाव्यम् – सत्रहवीं शताब्दी

तंजोर के नायकवंशीय राजा रघुनाथ की सभा में 'मधुरवाणी' उपाधि से विभूषित, अज्ञात नाम कवयित्री द्वारा विरचित 'रामायणकाव्यम्' 14 सर्गों का महाकाव्य है जो रामायण की कथा पर आधारित है। इस महाकाव्य की रचना मधुरवाणी ने अपने आश्रयदाता की प्रेरणा पर की थी। यह ग्रन्थ वर्तमान समय में पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं होता है। इस महाकाव्य की संक्षिप्त जानकारी 'केटलॉग ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन ऑरियन्टल लाइब्रेरी, मैसूर एण्ड सप्लीमेन्ट 10, में उपलब्ध होती है।[4]

26. मंजुभाषिणी – (रामकथा) सत्रहवीं शताब्दी

17वीं शताब्दी के राजचूड़ामणि दीक्षित ने 'मंजुभाषिणी' नामक रामकथा की रचना एक दिन में की थी। इस काव्य का प्रत्येक अक्षर श्लिष्ट है जिसमें रामायण की

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–190 व आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा–श्री केशव मुसलगॉवकर–पृ.सं.–116
2. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–230
3. वही–पृ.सं.–238
4. वही–पृ.सं.–230

कथा वर्णित है। यह रचना इण्डियन हिस्टोरिकरल क्वाटर्ली (IV) नं. 4 में टी. आर. चूड़ामणि द्वारा सम्पादित है।[1]

27. रामयमकार्णवः – सत्रहवीं शताब्दी

कांचीवरम् के श्रीनिवास के पुत्र वेंकटेश ने यमकपद्धति में 'रामयमकार्णवः' महाकाव्य की रचना की है। जो रामायण की कथा से सम्बन्धित है। इस महाकाव्य का रचनाकाल 1656 ई. माना गया है। यह ग्रन्थ 'केटलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पैलेस लाइब्रेरी, तंजोर के VI. 2631 में उपलब्ध होता है।[2]

28. रामचन्द्रोदय – सत्रहवीं शताब्दी

'रामचन्द्रोदय' महाकाव्य के लेखक भी 'रामयमकार्णवः' महाकाव्य के रचयिता वेंकटेश को माना जाता है। यह महाकाव्य भी रामकथा पर आधारित है जो 30 सर्गों में उपनिबद्ध है। इस कृति का रचनाकाल 1635 ई. माना गया है।[3]

29. रामविलासकाव्यम् – सत्रहवीं शताब्दी

17वीं शताब्दी के रामचन्द्रतर्क वागीश ने रामायण पर आधारित 'रामविलासकाव्यम्' की रचना की है।

30. रघुवीरविजयम् – सत्रहवीं शताब्दी

17वीं शताब्दी के श्रीनिवास के पुत्र वरददेसिक ने 'रघुवीरविजयम्' रामकथा पर आधारित काव्य की रचना की।

31. रामायणसारसंग्रह – सत्रहवीं शताब्दी

'रघुवीरविजयम्' के प्रणेता वरददेसिक की दूसरी रचना रामायणसारसंग्रह है, जो रामचरित्रात्मक काव्य है।[4]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–236
2. वही–पृ.सं.–238
3. वही–पृ.सं.–238
4. वही–पृ.सं.–300

32. सीतादिव्यचरित–सत्रहवीं शताब्दी

17वीं शताब्दी में श्रीनिवास ने 'सीतादिव्यचरित' काव्य का प्रणयन किया था।[1]

33. रामायणतात्पर्य निर्णयः – सत्रहवीं शताब्दी

रामायण की कथा पर आधारित 'रामायणतात्पर्य निर्णयः' ग्रन्थ का प्रणयन 17वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अलंकारशास्त्री अप्पयदीक्षित ने किया है। यह रचना लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया के II. 4884 में उपलब्ध है।[2]

34. रामायणतात्पर्यसंग्रह – सत्रहवीं शताब्दी

'रामायणतात्पर्यसंग्रह' के रचयिता भी अप्पय दीक्षित हैं। यह ग्रन्थ भी रामकथा पर आधारित है जिसका उल्लेख हमें लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया के II. 5411 में मिलता है।[3]

35. रामायण सारसंग्रह – सत्रहवीं शताब्दी

'रामायणसारसंग्रह' के रचयिता अप्पय दीक्षित हैं। यह संग्रह भी रामकथा पर आधारित है जिसका उल्लेख लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया के II. 7266 में मिलता है।[4]

36. रामायणसारस्तवः – सत्रहवीं शताब्दी

'रामायणसारस्तवः' के रचनाकार भी अप्पयदीक्षित हैं। रामकथा पर आधारित इस ग्रन्थ का उल्लेख हमें आफ्रेक्ट के कैटालोगस कैटालोगोरम के भाग CC.II.22 में मिलता है।[5]

37. सप्तसन्धान महाकाव्य – सत्रहवीं शताब्दी (1703 ई.)

17वीं शती में जैन कवि मेघविजय उपाध्याय ने 9 सर्गों में सप्तसन्धान महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में महाकवि ने एकसाथ ऋषभदेव, शान्तिनाथ,

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं 300
2. वही–पृ.सं.–227
3. वही–पृ.सं.–227
4. वही–पृ.सं.–227
5. वही–पृ.सं–227

नेमीनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, राम तथा कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित्र का निबन्धन किया है। यह श्लिष्ट महाकाव्य है।[1]

38. रामलिंगामृत – सत्रहवीं शताब्दी

काशी निवासी अद्वैत कवि ने 'रामलिंगामृतम्' महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं जो रामकथा पर आधारित हैं।

39. राघवचरित – अठारहवीं शताब्दी (1712–1727 A.D.)

राजा सरभोजी के शासनकाल में स्थित कवि अनन्तनारायण ने 'राघवचरित' नामक 12 सर्गों के महाकाव्य की रचना की है। कवि को 'पंचरत्न' के नाम से भी जाना जाता है। इस कृति को सरभोजी की रचना के रूप में जाना जाता है परन्तु यह रचना अनन्ताचार्य ने अपने आश्रयदाता के नाम से रची थी अतः महाकाव्य के मूल रचनाकार अनन्तनारायण ही हैं। यह महाकाव्य रामायण की कथा पर आधारित हैं।[2]

40. राघवीया – अठारहवीं शताब्दी

18वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि रामपाणिवाद ने 'राघवीया' नाम से बीस सर्गों के महाकाव्य की रचना की है। यह महाकाव्य पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है जिसमें कुल 1572 श्लोक हैं जो रामायण की कथा से सम्बन्धित हैं, जिसका उल्लेख हमें डिस्क्रिप्टीव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास XX. 7838 तथा ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास IV.5973 में मिलता है।[3]

41. राघवनैषधीया – अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

18वीं शताब्दी के प्रारम्भ के कवि हरदत्त सूरि ने 'राघवनैषधीया' श्लिष्ट महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य के वर्तमान में दो ही सर्ग प्राप्त होते हैं।[4]

---

1. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा–श्री केशव मुसलगाँवकर–पृ.सं.–117
2. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–242
3. वही–पृ.सं.–257
4. वही–पृ.सं.–194 तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय–पृ.सं.–308

42. रामविजय – अठारहवीं शताब्दी (1800 ई.)

1800 ई. के लगभग रघुनाथ उपाध्याय ने 'रामविजय' महाकाव्य की रचना की है जो 1932 ई. में वाराणसी से प्रकाशित है।

43. रामचरितम् – अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी (1800 A.D.)

क्रांगनोर के युवराज रामवर्मा ने 12 सर्गों में 'रामचरितं' महाकाव्य की रचना की है जो रामकथा पर आधारित ग्रन्थ है। जिसका उल्लेख हमें डिस्क्रिप्टीव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास के XX .7845 में मिलता है। यह ग्रन्थ पूना से मुद्रित है।[1]

44. लघुरघुकाव्यम् – उन्नीसवीं शताब्दी

श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर रचित 'लघुरघुकाव्यम्' 19 सर्गों की रचना है जो कालिदास कृत 'रघुवंश' महाकाव्य के छाया रूप में प्रस्तुत किया गया है। रघुवंश के प्रत्येक सर्ग के श्लोकों के कथानक को मात्र 20 श्लोकों में निबद्ध किया है। इस तरह इस काव्य में कुल 380 श्लोक हैं जिसमें रघुवंश के विशाल कलेवर का संक्षिप्तीकरण किया गया है। इस कृति में सूर्यवंशियों का जीवन–चरित्र वर्णित है। राजा दिलीप को मूल पुरुष के रूप में चित्रित किया है। दिलीप के बाद रघु, अज, दशरथ, राम, लवकुश पर्यन्त सभी का जीवन चरित्र प्राप्त होता है। शेष इक्ष्वाकुवंशियों का संक्षेप में परिचय मिलता है।

45. कंकणबद्ध रामायणम् – उन्नीसवीं शताब्दी

महाकवि कृष्णमूर्ति विरचित 'कंकणबद्ध रामायणम्' अद्भुत बुद्धि कौशल का परिचायक है। महाकवि ने 32 अक्षरों के एक श्लोक में सम्पूर्ण रामकथा को अंकित किया है जिन्हें दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ पढ़ने पर 64 पद्यों की रामकथा वर्णित होती है। यथा–

नेतादेवालीनामाशाधानाधीनेकालोकी।
मास्यानं भारव्यायोगीशं पायादेतं रामेराजा।।[2]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णामाचारियर–पृ.सं.–257
2. वही–पृ.सं.–195

46. रघुनाथगुणोदय – उन्नीसवीं शताब्दी

हरियाणा के महाकवि नव्यचंडीदास द्वारा रचित 'रघुनाथ गुणोदय' 13 सर्गों का महाकाव्य है। यह महाकाव्य रामकथा से सम्बन्धित है जिसमें महाकवि ने राम के गुणों की प्रशंसा विस्तृत रूप में वर्णित की है। अन्तिम सर्ग में महाकवि ने अपने आश्रयदाता महाराज रणवीर सिंह के विद्याप्रेम तथा जम्मू नगर का वर्णन किया है।[1]

47. रामाभ्युदयम् – उन्नीसवीं शताब्दी

'रामाभ्युदयम्' महाकाव्य की रचना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक कालीकिंकर ठाकुर के पुत्र श्री अन्नदाचरण ठाकुर ने की है। 19 सर्गों के इस महाकाव्य में रामजन्म से लेकर राम–सीता परिणय तक की कथा को वर्णित किया है।[2] इसका प्रकाशन रामेन्दु मुद्रणालय नोआखाली से 1896 ई. में हुआ है।

48. सीतारामाभ्युदय – बीसवीं शताब्दी

'सीतारामाभ्युदय' महाकाव्य की रचना गोपालशास्त्री ने की है। जो रामायण की कथा पर आधारित महाकाव्य है।[3]

49. श्रीरामविजयम् – बीसवीं शताब्दी

'श्रीरामविजयम्' महाकाव्य की रचना गोदावरी जिले के भद्रादि रामशास्त्री ने की है।[4]

50. सीतारावणसम्वादझरी –बीसवीं शताब्दी

'सीतारावणसंवादझरी' रामकथा पर आधृत संस्कृत प्रहेलिका पद्धति का प्रबन्ध काव्य है। रामायण में वर्णित अशोकवाटिका में सीता–रावण–संवाद प्रसंग को श्रीचामराज शास्त्री एवं उनके शिष्य श्री सीतारामशास्त्री ने प्रहेलिकात्मक रूप में वर्णित कर कथावस्तु में नवीनता का संचार कर दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ दो भागों

---

1. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी–पृ.सं.–484
2. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–308 तथा आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा–श्री केशव मुसलगॉवकर–पृ.सं.–57
3. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–308
4. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा–श्री केशव मुसलगॉवकर–पृ.सं.–57

में विभक्त है। पूर्व भाग में क्रमशः 59 पद्य तथा उत्तर भाग में अन्तिम 50 पद्यों का समायोजन किया गया है इस तरह सीता–रावण संवाद को कुल 109 पद्यों में वर्णित किया है। कृति की यह विशेषता है कि प्रत्येक पद्य का चतुर्थ पाद विशिष्ट वर्ण योजना से संयुक्त है। अशोकवाटिका में काममोहित रावण आत्मप्रशंसा द्वारा सीता को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है परन्तु प्रहेलिकाविज्ञ सीता प्रत्युक्ति के विश्लेषण से वर्णस्थापन, वर्णलोप आदि के द्वारा रावणोक्त आत्मप्रशंसा रूपी शब्दों को रावणनिन्दा अथवा राम प्रशंसा में परिवर्तित कर देती है। यह कृति 1905 में श्रीसीता–रामशास्त्री द्वारा पूर्ण कर प्रकाशित की गई। आचार्य रमेश चतुर्वेदी ने संस्कृत व्याख्या व हिन्दी भाष्य सहित सम्पादित इस ग्रन्थ को 2012 में परिमल पब्लिकेशन्स की सहायता से प्रकाशित करवाया है।[1]

51. सीतास्वयंवर महाकाव्य– बीसवीं शताब्दी

कवि नागराज विरचित 'सीतास्वयंवर' महाकाव्य 16 सर्गों की रचना है जिसका रचनाकाल 1940 ई.पू. माना जाता है। यह महाकाव्य वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। इस महाकाव्य के मुख्य रूप से छः वर्ण्य विषय है– विश्वामित्रागमन, सगरोदन्त, गंगावतरण, अहल्योद्धरण, कार्मुकभंजन और जानकीपरिणय। इस तरह महाकवि ने जानकीपरिणय तक की घटनाओं को सर्गबद्ध किया है।[2]

52. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् – बीसवीं शताब्दी

'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्' की रचना प्रो. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा की गई है। इस महाकाव्य में महाकवि ने थाइलैंड में प्रचलित भगवान श्रीराम की कथा को वर्णित किया है। इस महाकाव्य की प्रस्तावना संस्कृत की परम विदुषी, थाईदेश की राजकुमारी महाचक्री सिरिन्थौर्न द्वारा रचित है। इस महाकाव्य का अनुवाद थाई, फ्रेंच व अंग्रेजी के अतिरिक्त चार भारतीय भाषाओं में हुआ है। इसका प्रथम,

---

1. सीतारावण–सम्वाद–झरी–श्रीचामराजशास्त्री–श्रीसीताराम शास्त्री–संपादक आचार्य रमेश चतुर्वेदी
2. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा–श्री केशव मुसलगॉवकर–पृ.सं.–273

द्वितीय व तृतीय संस्करण क्रमशः 1990, 1991 व 1995 में मूलामाल सचदेव व अमरनाथ सचदेव संस्था बैंकाक से प्रकाशित है। यह वर्तमान शताब्दी के रामकथा आधारित महाकाव्यों में सबसे बड़ा महाकाव्य है जिसमें 25 सर्ग हैं। थाई देश में 'रामकियन' नाम से प्रचलित रामकथा इसमें वर्णित है जो भारतीय रामकथा से ही मिलती है परन्तु यह रामकथा सुखान्त है। महाकाव्य की कथा के अनुसार रामराज्याभिषेक एवं सीतानिर्वासन की घटना के बाद सर्वत्र शान्ति व्याप्त है। परन्तु देवगण भगवान शंकर को बताते हैं कि जिसके कारण शान्ति व्याप्त है वही भगवान राम स्वयं में अशान्त हैं। भगवान् शंकर के आदेश से श्रीराम को अयोध्या से और सीता जी को पाताल से कैलास में बुलवाकर राम और सीता का मिलन करवाया जाता है। वे प्रसन्नतापूर्वक पुनः अयोध्या लौट जाते हैं। यहीं पर कथा का सुखान्त होता है।

53. उर्मिलीयम् – बीसवीं शताब्दी

20वीं शताब्दी के पं. नारायण शुक्ल प्रणीत 'उर्मिलीयम्' महाकाव्य एक अभिनव राम–काव्य है। यह महाकाव्य सन् 1973 ई. में प्रकाशित है जिसमें 17 सर्ग हैं। इस महाकाव्य में उर्मिला के चरित्र को प्रधानता दी गई है। सम्पूर्ण महाकाव्य में उर्मिला से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन महाकवि ने विस्तारपूर्वक किया है। महाकाव्य के आरम्भ में जनकपुरी का वर्णन है तदनन्तर विविध घटनाओं के वर्णन के साथ लक्ष्मण के पुत्रों की विभिन्न राज्यकार्यों के संचालन के लिए नियुक्ति तक की कथा वर्णित है।[1]

54. उत्तरसीताचरितम् – बीसवीं शताब्दी

20वीं शताब्दी में डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत 'उत्तरसीताचरितम्' महत्वपूर्ण रचना है। इस कृति का विवरण संस्कृत प्रतिभा 1.1 अंक में 'जानकीमोचनम्' नाम से भी मिलता है। इस महाकाव्य की 118 पृष्ठों में कवि द्वारा हस्तलिखित पाण्डुलिपि कालिदास संस्थान के सभागार में प्राप्त होती है। महाकवि द्वारा

1. स्वातंत्र्योत्तर युग में संस्कृत रामकाव्य–श्रीमती डॉ. प्रतिमाशास्त्री–पृ.सं.–234

10.02.1968 को इस महाकाव्य की रचनापूर्ण की गई तथा इसका प्रथम संस्करण सागरिका पत्रिका के 7.1 अंक में प्रकाशित हुआ है। यह महाकाव्य दस सर्गों में उपनिबद्ध है जिसमें महाकवि ने सीता के उत्तरकाल के जीवन को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। रामायण में वर्णित सीता परित्याग की दुःखद घटना को महाकवि ने यहाँ नवीनता के साथ वर्णित किया है। इस महाकाव्य में सीता का निर्वासन तो होता है परन्तु यह निर्वासन श्रीराम की लोकमर्यादा की प्रतिष्ठा हेतु वैदेही की स्वेच्छा से होता है। महाकाव्य में वर्णित घटनाओं के अनुसार ही महाकवि ने प्रत्येक सर्ग का नामकरण भी किया है।[1]

55. सौमित्रिसुन्दरीचरितम् – बीसवीं शताब्दी

'सौमित्रिसुन्दरीचरितम्' महाकाव्य के रचयिता श्री भवानीदत्त शर्मा हैं। यह महाकाव्य 1958 में प्रकाशित है। रामायण की कथा पर आधारित यह ग्रन्थ नौ सर्गों में निबद्ध है। इस महाकाव्य में महाकवि का मुख्य वर्ण्य विषय उर्मिला का चरित्र है। महाकवि ने इस महाकाव्य में उन्हीं घटनाओं को प्राथमिकता दी है जिनसे लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की चौदह वर्षों की पीड़ा पाठकों के समक्ष प्रकट हो सके। इस महाकाव्य में महाकवि ने उपेक्षिता उर्मिला को मुखर किया है।[2]

56. श्रीरामचरितम् – बीसवीं शताब्दी

'श्रीरामचरितम्' महाकाव्य की रचना पं. रामविशाल त्रिपाठी शास्त्री ने की है। इस महाकाव्य का प्रथम संस्करण 1970 में प्रकाशित हुआ। इस महाकाव्य का उपजीव्य भी लोकविश्रुत रामकथा ही है। रामायण के समान महाकवि ने भी महाकाव्य का विभाजन सात काण्डों में किया है परन्तु काण्डों की कथावस्तु को सर्ग के स्थान पर विरामों में विभक्त किया है। महाकवि ने यहाँ अनेक मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। रामायण के युद्धकाण्ड में वर्णित राम–राज्याभिषेक की घटना को महाकवि ने अपने ग्रन्थ के उत्तरकाण्ड में वर्णित किया है तथा सीता

---

1. उत्तरसीताचरितम्–रेवाप्रसाद द्विवेदी–षष्ठ परिष्कृत संस्करण–कालिदास संस्थान, वाराणसी
2. स्वातंत्र्योत्तर युग में संस्कृत रामकाव्य–श्रीमती डॉ. प्रतिमा शास्त्री–पृ.सं.–1

निर्वासन की घटना को महाकवि ने अपने महाकाव्य में स्थान नहीं दिया है। रामराज्याभिषेक के साथ ही ग्रन्थ की इतिश्री हो जाती है।[1]

57. रामचरितम् – बीसवीं शताब्दी

22 सर्गों में निबद्ध, रामकथा पर आधारित 'रामचरितम्' महाकाव्य की रचना श्री पद्मनारायण शास्त्री द्वारा की गई है। यह महाकाव्य पूर्व व उत्तर दो भागों में विभाजित है। इसके पूर्वभाग का प्रकाशन 1965 ई. में तथा उत्तर भाग का प्रकाशन 1971 ई. में हुआ। पूर्वभाग में महाकवि ने रामजन्म से लेकर रामविवाह के पश्चात् दशरथ द्वारा रामराज्याभिषेक के निर्णय तक के घटनाक्रम को दस सर्गों में निबद्ध किया है तथा उत्तर भाग में कैकेयी द्वारा वरयाचना से लेकर वनवास अवधि पूर्ण करके लौटे हुए राम के राज्याभिषेक तक का कथानक 12 सर्गों में नवीन कल्पनाओं सहित निरूपित किया है। इस महाकाव्य में मुख्यतया राम के आदर्श चरित्र का वर्णन है।[2]

58. भरतचरितामृतम्– बीसवीं शताब्दी

'भरतचरितामृतम्' महाकाव्य के रचयिता डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल हैं। इस महाकाव्य का प्रथम संस्करण 1 जुलाई 1974 को शारदा सदन मुजफ्फ़र नगर से प्रकाशित हुआ है। इस महाकाव्य का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है तथापि इस कृति में महाकवि ने रामायण के उन्हीं प्रसंगों को ग्रहण किया है जिनसे भरत के चरित्र की विशेषताएँ मुख्य रूप में प्रकट होती हैं।

59. सुगमरामायण – बीसवीं शताब्दी

14 सर्गों में उपनिबद्ध 'सुगमरामायण' महाकाव्य की रचना डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल ने की है। 'सुगमरामायण' का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है परन्तु यहाँ महाकवि ने अपने महाकाव्य में अनेक परिवर्तन किए हैं। महाकवि ने चौदह सर्गों के महाकाव्य में रामायण के अतिविस्तृत कथानक को यथासंभव संक्षिप्तता प्रदान करने का प्रयास किया है अतः रामायण में वर्णित अनेक प्रासंगिक कथाओं को

---

1. स्वातंत्र्योत्तर युग में संस्कृत रामकाव्य–डॉ. प्रतिमा शास्त्री–पृ.सं.–120
2. वही–पृ.सं.–205

यहाँ स्थान नहीं मिला है। कथा के अनुसार ही प्रत्येक सर्ग का नामकरण है। कथा का आरम्भ रामजन्म व रामगुण वर्णन से होता है तथा अन्त में रामायण के समान ही सीतानिर्वासन की घटना वर्णित है। इस महाकाव्य का प्रथम संस्करण 1978 ई. में देववाणी परिषद् दिल्ली 6, वाणी विहार नई दिल्ली से प्रकाशित है।[1]

60. कंकणबद्ध रामायण – बीसवीं शताब्दी

20वीं शताब्दी में चार्ल भाष्यकार शास्त्री ने दूसरी कंकणबद्ध रामायण की रचना की है। कंकणाकृति के एक श्लोक से भिन्न–भिन्न उपायों द्वारा 128 अर्थ अभिव्यक्त होते हैं यथा–

रामानाथाभारासाराचारावारागोपाधारा
धाराधाराभीमाकारापारावारा सीतारामा।।[2]

61. श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् – बीसवीं शताब्दी

पं. नित्यानंद शास्त्री, विरचित 'श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्' चित्रकाव्य महाकाव्य में 14 सर्ग हैं इसके आरम्भ में आठ पद्यों का मंगलाचरण, 802 से ऊपर पद्यों का मूल काव्य तथा अन्त में परिशिष्ट है। इस महाकाव्य में महाकवि ने श्रीराम के जन्म से लेकर उनके राज्याभिषेक पर्यन्त वृत्तान्तों को कथा का आधार बनाया है। सीता निवार्सन की कथा को महाकवि ने वर्णित नहीं किया है। महाकाव्य की चित्रकाव्य–धर्मिता यह है कि मंगलाचरण के प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक चरण के प्रथमाक्षरों को यथाक्रम एकत्र किया जाए तो वाल्मीकि मुनि के मुख से प्रथमतया निःसृत श्लोक 'मा निषाद....बनता है। काव्य के प्रत्येक पद्य के प्रत्येक चरण के आद्याक्षरों को क्रमशः मिलाया जाए तो वाल्मीकि रामायण के प्रथम काण्ड का प्रथम सर्ग बनता है। परिशिष्ट के भी स्तव–सप्तकों के पद्यों की प्रथम पंक्ति के आद्याक्षरों के संयोजन से मन्त्र, ऋचा या स्तुति बनती है। ग्रन्थ के श्लोकों में यमक–श्लेषादि अलंकारों का चमत्कार प्रचुर रूप में मिलता है।

---

1. स्वातंत्र्योत्तर युग में संस्कृत रामकाव्य–डॉ. प्रतिमा शास्त्री–पृ.सं.–260
2. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–195

62. श्रीरामविजय महाकाव्य – बीसवीं शताब्दी

यह महाकाव्य रूपनाथ उपाध्याय द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रकाशित है एवं श्री नारायण शास्त्री खिस्ते द्वारा सम्पादित है। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। राजा दशरथ के मुनि शाप से प्रारम्भ कर रावण वध के अनन्तर राम राज्य सिंहासनारोहण तक की कथा को महाकवि ने अपना वर्ण्य विषय बनाया है। इसका सम्पादन गणपति लाल झा ने किया है एवं प्रकाशन सरस्वतीभवन, वाराणसी से 1932 में हुआ है।

63. राघवेन्द्रचरितम् – बीसवीं शताब्दी

यह महाकाव्य राजकिशोरमणि त्रिपाठी द्वारा सन् 1992 में रचित है। राजकिशोर त्रिपाठी ने गोरखपुर विश्वविद्यालय में 30 वर्षों तक शिक्षण कार्य किया है। यह महाकाव्य 16 सर्गों में विरचित है। जो उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत है। इस महाकाव्य का उपजीव्य रामायण है।

64. **रघुकुलकथावल्ली – इक्कीसवीं शताब्दी**

'रघुकुलकथावल्ली' महाकाव्य की रचना महाकवि कृपाराम त्रिपाठी द्वारा रामायण की कथा के आधार पर की गई है। यह महाकाव्य 21 सर्गों में निबद्ध है जिसमें महाकवि ने सीता निर्वासन तक की सम्पूर्ण कथा को नवीन कल्पनाओं के साथ निबद्ध किया है। इसका प्रकाशन, प्रतिभा प्रकाशन द्वारा 2004 ई. में दिल्ली से हुआ है।

65. जानकीजीवनम् – इक्कीसवीं शताब्दी

डॉ. दशरथ द्विवेदी विरचित 'जानकीजीवनम्' 18 सर्गों का महाकाव्य है जिसका उपजीव्य रामायण है। इस महाकाव्य का प्रकाशन राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली द्वारा 2006 में किया गया है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में 120 श्लोक हैं। इस महाकाव्य में सीता जन्म से लेकर सीता के धरती में प्रवेश करने तथा रामादि के स्वर्गारोहण तक का कथानक वर्णित है।

66. सीतारामीयम् – इक्कीसवीं शताब्दी

'सीतारामीयम्' काव्य के रचनाकार शंकरदेव अवतरे हैं। यह ग्रन्थ 2005 में प्रकाशित है। यह ग्रन्थ न तो खण्डकाव्य की श्रेणी में, न ही महाकाव्य की श्रेणी में परिगणित होता है तथापि यह रामकथा पर आधारित काव्य है। इसका विभाजन पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दो भागों में किया गया है।

67. रामचरित –

जयपुर के ऋषिकुल से सम्बन्ध रखने वाले परमानन्द शर्मा (कवीन्द्र) ने रामायण की सम्पूर्ण कथा को अलग–अलग भागों में विभाजित कर 'रामचरित' नामक काव्य की रचना की है। महाकवि ने ग्रन्थ को मंथरादुर्विलसिता, दशरथविलापः, मारीचवधः, मेघनादवधः और रावणवधः इस तरह पाँच नामों में विभक्त किया है एवं नामानुरूप ही इसमें रामकथा वर्णित है जिसका उल्लेख जर्नल ऑफ संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता में मिलता है।[1] इसका भी रचनाकाल उपलब्ध नहीं हो सका है।

हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर में एम. कृष्णमाचारियर प्रदत्त अन्य रामकथा आधृत महाकाव्यों की सूची : निम्नोक्त ग्रंथों का केवल उपर्युक्त ग्रंथ में उल्लेख मात्र मिलता है– (1)कल्याणरामायण–शेषकवि, (2) भद्रादिरामायण–वीरराघव, (3) रामकथासूदोदय–श्रीशैल, श्रीनिवास, (4) रामामृत–वेंकटरंगा, (5) रघुवीरवर्यचरित–तिरुमलकोनयार्य, (6) दशाननवध–योगीन्द्रनाथ (कलकत्ता से मुद्रित), (7) रघुवीरचरित–सुकुमार (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन त्रावणकोर, 86), (8) सीता–रामविहार–लक्ष्मणसोमयाजी (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी इण्डिया ऑफिस, 1481), (9) रामगुणाकार–रामदेव (नोटिसेस ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स (1872) 315), (10) रामखेतकाव्य–पद्मनाभ (1839 में रचित, केटलॉग ऑफ द एसियाटिक सोसाइटी, बंगाल, 163), (11) रामविलास–रामचरण एवं हरिनाथ, (12) रामचन्द्रकाव्य–शम्भु कालिदास (केटलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पैलेस लाइब्रेरी तन्जौर, VI. 2837), (13) उदारराघव

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–308

एवं प्रसन्नरामायण–देवरदीक्षित (डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास XX. 7694 व XH.7780), (14) रामचन्द्रोदय–कविवल्लभ, (15) रामचरित–विश्वकसेन, (16) आश्चर्यरामायण एवं बालराघवीया–शतगोपाचार्य (लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया, II. 3108 व 590), (17) सीताराघवीय व रामलीयराघव–ब्रह्मदत्त (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन मैसूर एण्ड कूर्ग बाई लेविस रॉयस, बैंगलोर, 240), (18) अभिरामकाव्य–रामनाथ (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम भाग–I, 26), (19) रामकौतूहल–रामेश्वर (1680 में रचित), (20) रामकौतूहलम्–कमलाकर (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी इण्डिया ऑफिस 107, 1487), (21) रामकथामृत–गिरिधरदास (ए केटलॉग ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, इन प्राइवेट लाइब्रेरीज ऑफ द नॉर्थ–वेस्ट प्रोविसेन्स, बनारस एण्ड इलाहाबाद, 456, 488, (22) रामगुणाकार–रामदेव न्यायालंकार (आफ्रेक्ट् केटलोगस केटलोगोरम भाग I. 510), (23) रामचरित–काशीनाथ एवं मोहनस्वामी (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द इण्डिया ऑफिस, 978, 1184), (24) रामलीलोदय–रमाकान्त (आफ्रेक्ट् केटलोगस केटलोगोरम भाग I. 518), (25) रामाभिषेक–केशव (अ क्लासिफाइड इण्डेक्स टु द संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द पैलेस एट तन्जौर बाइ ए.सी. बरनेल लन्डन, 161), (26) रामकाव्य–रामानंदतीर्थ (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम भाग I. 507), (27) रामाभ्युदयतिलक एवं शीतिकंठ–शीतिकंठ (लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया बाइ गस्तव ऑर्पेट, 1555 व 6683), (28) सीतारामविजय एवं रघुवीर विलास–लक्ष्मण (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास, IV. 5460), (29) रघुपतिविजय–गोपीनाथ (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम भाग. III.104), (30) रामचन्द्रोदय–पुरुषोत्तम मिश्र एवं रामदास (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास IV. 4805 एवं II. 2513), (31) रामचन्द्रमहोदय–सच्चिदानंद (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम भाग I. 587), (32) रामकाव्य–बालकृष्ण (आफ्रेक्ट केटलोगस, केटलोगोरम भाग III. 108), (33) रामरत्नाकर–मधुव्रत, (34) रामरसामृत–श्रीधर (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम भाग, I. 512) (35) रामचन्द्रोदय–कविवल्लभ (केटलॉग ऑफ संस्कृत

मैन्युस्क्रिप्ट्स इन त्रावणकोर, 156), (36) रघुनंदनविलास–वेंकटाचार्य एवं पत्राचार्य (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन अडयार लाइब्रेरी II. 12 व ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास, 2931), (37) विक्रमराघव–नूतन कालिदास (केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन अडयार लाइब्रेरी, II. 15), (38) सीतापतिविजय व पौलस्त्यराघवीया–रामचन्द्र (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास, II. 2410), (39) श्रीरामविजय–अरुणाकलनाथ के शिष्य द्वारा रचित (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास IV. 5140), (40) उत्तरराघवीय– नव्यचंडीदास (डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास, XX. 7694) (41) बालरामरसायन–कृष्णाशास्त्री (केटलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन अडयार लाइब्रेरी, II.8), (42) रामायणसारसंग्रह–ईश्वरदीक्षित (केटलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन अडयार लाइब्रेरी II. 14), (43) जानक्यानन्दबोध–श्रीपति गोविन्द (नोटिसेस ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स II. 193 व केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द इण्डिया ऑफिस, 1489), (44) सीतारामविहार–लक्ष्मण (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास, III. 3215), (45) सीतापरिणय–सूर्यनारायणाध्वरिन (डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास, XX. 7904 एवं ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास,II. 1206), (46) सीताकल्याण–गोविन्दनाथ (लिस्ट्स ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया 2487, 6692), (47) सीतास्वयंवर–कामराज (बम्बई से मुद्रित), (48) वैदेहीपरिणय–काशीनाथ (आफ्रेक्ट केटलोगस केटलोगोरम पार्ट, I. 660), (49) रामेश्वरविवाह–रघुनाथ (ट्राइनीअल केटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास, II. 1805)[1], (50) सीतास्वयंवरम्–बटुकनाथ शर्मा।[2]

---

1. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एम. कृष्णमाचारियर–पृ.सं.–304–306
2. वही–पृ.सं.–308

श्री केशव मुसलगाँवकर प्रणीत 'आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा' में उपलब्ध अन्य संस्कृत रामकाव्य–प्रस्तुत ग्रन्थ में भी निम्न काव्यों का केवल उल्लेख मात्र है–

1. संगीतराघवम्–गंगाधर
2. हनुमत्काव्यम्, हनुमद्विजयम्, रावणपुत्रवधम्–शिवराम
3. यादवराघवीयम्–नरहरि।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत 'विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्' में उपलब्ध राम काव्य–

1. सीतारामांजनेयम्–डी. अर्क सोमयाजी (1984)
2. जानकीचरितामृतम्–रामस्नेहीदास (फैज़ाबाद, 1957)
3. सीताचरितम्–के.एस. कृष्णमूर्ति शास्त्री (मदुरई, 1953)
4. सीताचरितम्–रेवाप्रसाद द्विवेदी–1973

श्री राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत 'आधुनिक संस्कृत साहित्य संदर्भ सूची' में उपलब्ध रामकथा आधृत ग्रन्थ –

1. जानकीपरिणय–मुकुन्द (सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी 1986)
2. रामाभिरामीयम्–केप्टन रामभगत शर्मा (प्रकाशक–स्वयंग्राम खुडाना, जिला हरियाणा, प्रथम संस्करण 2007)
3. रामामरचरितामृतम्–त्रिपुरारि शरण पाण्डेय, (समीक्षा प्रकाशन बस्ती, 1995)

◈◈◈

चतुर्थ अध्याय

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का पूर्णा› विवरण

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का पूर्णा› विवरण

संस्कृत साहित्याकाश में भास्कर सदृश भासित, साहित्य रसिक रूपी नक्षत्रसमाज को अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से अनवरत स्फुरद्कर, विविध विधाओं रूपी ज्ञान रश्मियों से उद्भासित करने वाले, निसर्गतः रचनाधर्मी, त्रिविध विधाओं व त्रिविध भाषाओं में सिद्धहस्त, अतएव 'त्रिवेणी' उपाधि से विभूषित तथा परम वत्सला जननी 'अभिराजी' से प्रगाढ़ स्नेहवश 'अभिराज' नाम्ना साहित्य जगत् में लब्ध प्रतिष्ठित, महाकवि 'अभिराज' डॉ. राजेन्द्र मिश्र संस्कृत साहित्य जगत् में अपने अभिनव प्रयोगों के साथ नव्यनूतन सर्जनाएँ उपनिबद्ध करते हुए माँ भारती के पावन भण्डार को सुसमृद्ध कर रहें हैं। साहित्य अनुरागियों द्वारा 'अभिनव कालिदास' की उपाधि से अलंकृत महाकवि संस्कृत साहित्य में ऐसे हस्ताक्षर हैं, जो अपनी लेखनी से अजस्र प्रवाहित सरलतम रचनाओं के माध्यम से राष्ट्र कल्याण हेतु संस्कृत का प्रचार–प्रसार करते हुए अन्य सर्जकों को भी अभिनव सर्जन हेतु प्रेरित कर रहें हैं। सर्वसंवाद प्रिय, मृदुभाषी व सस्वर श्रुतिमधुर गायन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने वाले अभिनव सर्जक, महाकवि, 'अभिराज' डॉ. राजेन्द्र मिश्र का परिचय निम्नबिन्दुओं की सहायता से प्रकाशित करने का मेरे द्वारा यथासंभव प्रयास किया गया है–

1. जन्म स्थान एवं समय –

डॉ. मिश्र का जन्म उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद स्थित सई नदी के तट पर वर्तमान गाँव द्रोणीपुर में हिन्दी तिथ्यानुसार पौष माह के कृष्णपक्ष की पंचमी (चतुर्थी), शनिवार संवत् 1999 वि. ब्रह्मवेला में हुआ। अंग्रेजी समयानुसार यह तिथि 26 दिसम्बर 1942 प्रमाणित होती हैं, जबकि व्यवहारिक जीवन में अन्य तीसरी तिथि ही मान्य है, जो कविवर्य के शैक्षिक प्रमाण–पत्रों में 02 जनवरी, 1943 ई. के रूप में अंकित है। महाकवि का बाल्यकालीन परिवेश ग्रामीण था अतः उनका लालन–पालन भी उसी परिवेश में हुआ।

समग्र भारत में ख्यातिप्राप्त गंगा, यमुना तथा सरस्वती की त्रिवेणी से अलंकृत तीर्थराज प्रयाग की पवित्रस्थली पर, वात्सल्य की मूर्ति देवी अभिराजी व पं. श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र के मध्यम पुत्र रूप में जन्मे डॉ. मिश्र के परिवार का प्रारम्भिक कर्म कृषि, पौरोहित्य तथा भैषज्य रहा है।

महाकवि के प्रपितामह पं. काशीराम मिश्र प्रसिद्ध भिषक एवं पितामह रामानन्द मिश्र शाक्त एवं भागवत् सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले निष्ठावान् उपासक थे। शैशवावस्था में ही पितृनिधन के कारण पितृस्नेह से वंचित महाकवि का यह समय करुणामयी माता व पितामह के सान्निध्य में ही व्यतीत हुआ। पितामह की संगत के प्रभाववश ही कवि बाल्यकाल में माँ सरस्वती की उपासना में सम्पृक्त हो गए।

महाकवि मिश्र के दो भ्राताओं में से डॉ. देवेन्द्र मिश्र अग्रज एवं सुरेन्द्र मिश्र अनुज हैं। अग्रज डॉ. देवेन्द्र मिश्र के नौका दुर्घटना में असामयिक निधन से, पितृशोक से संतप्त महाकवि का अन्तर्मन पुनः शोकार्त हो उठा तथा परिवार का स्निग्ध वातावरण शोकमग्न हो गया। अनुज सुरेन्द्रमिश्र (जौनपुर के जयहिन्द संस्कृत महाविद्यालय, करशूलनाथ में आचार्य पद पर कार्यरत) का भी दुर्दैववशात् सेवाकाल में ही असामयिक देहांत हो गया जो कविमन पर कुठाराघात के समान था।

महाकवि मिश्र का विवाह 19 जनवरी 1995 में संस्कृत साहित्य की सारस्वत साधिका परम विदुषी डॉ. राजेश कुमारी 'राजश्री' के साथ सम्पन्न हुआ। डॉ. राजेश कुमारी मिश्र भी संस्कृत साहित्य सर्जना में सातत्येन संजुष्ट हैं। इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' में प्रदत्त महाकवि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से सम्बन्धित जानकारी मेरे ही समान महाकवि के व्यक्तित्व अथवा कर्तृत्व पर कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिए परम उपयोगी है।

महाकवि के पुत्र रत्न के रूप में जन्मे चि. क्षेमेन्द्र मिश्र वर्तमान समय में 'शिमला विश्वविद्यालय' में बी. टेक. तृतीय वर्ष के छात्र हैं। अपने माता–पिता के प्रभाववश क्षेमेन्द्र मिश्र भी बाल्यकाल से ही वाग्देवी की साधना में लीन हैं। इनकी दो रचनाएँ 'हिमतरंग' (कविता संग्रह) तथा 'कलियुग में सतयुग' (एकांकी संग्रह) प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ. मिश्र का संक्षिप्त वंश परिचय निम्न प्रकार है–

पं. भोजराज मिश्र → पं. शीतलादीन मिश्र → पं. काशीराम मिश्र → पं. रामदुलार मिश्र

→ पं. रामानंद मिश्र

पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र (श्रीमती अभिराजी देवी)

प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र

श्री सुन्दरी प्रसाद मिश्र

डॉ. देवेन्द्र मिश्र

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (डॉ. राजेश कुमारी मिश्र)

सुरेन्द्र मिश्र

चि. क्षेमेन्द्र मिश्र

2. शिक्षा एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ –

धार्मिक एवं आस्तिक विचारों से परिपूर्ण वंश में जन्मे डॉ. अभिराज जी का बाल्यकाल द्रोणीपुर में ही व्यतीत हुआ तथा कविवर्य की प्रारम्भिक शिक्षा भी गाँव के स्निग्ध वातावरण में ही पूर्ण हुई। शैशवावस्था से मातृच्छाया तथा पितामह के सान्निध्य से कवि के बालमन में देववाणी के प्रति आसक्ति का बीज प्रस्फुटित हुआ, अतः विज्ञान विषय से हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के बाद भी महाकवि ने स्नातक परीक्षा कला संकाय के विषयों में उत्तीर्ण करते हुए स्नातकोत्तर परीक्षा अपने इच्छित विषय संस्कृत से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। महाकवि ने सम्पूर्ण कला संकाय में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए अतः उन्हें विश्वविद्यालय से स्वर्ण व रजत पदक भी प्राप्त हुए जिनमें से 'क्वीन विक्टोरिया' रजत पदक व 'पं. दुर्गाप्रसाद उपाध्याय' स्वर्ण पदक प्रमुख हैं।

महाकवि ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही अपने पितृव्य प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र के निर्देशन में 'अन्योक्तिसाहित्य के उद्भव एवं विकास' विषय पर शोध कार्य करते हुए सन् 1966 में डी.फिल्. की उपाधि प्राप्त की। विक्रमशिला विद्यापीठ (बिहार) ने सन् 1987 में कविवर्य को मानद डी.लिट्. (विद्यासागर) की उपाधि से विभूषित किया तथा 2003 में शिमला विश्वविद्यालय ने भी महाकवि को डी.लिट्. उपाधि से अलंकृत किया है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी.फिल्. की उपाधि प्राप्त करने के बाद 10 दिसम्बर, 1966 ई. को इसी विश्वविद्यालय में विभागीय प्रवक्ता पद पर महाकवि की नियुक्ति हुई। 1966 से 1984 तक महाकवि ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रवक्ता पद पर कार्य किया उसके पश्चात् 1984–91 तक प्रवाचक के रूप में वहीं कार्यरत रहे। इसी अवधि में भारत सरकार ने कविवर्य को बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) के उदयन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त कर दिया जहाँ वे अप्रेल 1987–89 तक कार्यरत रहे।

22 जनवरी 1991 से कवि हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर पद पर कार्यरत रहे तथा वहीं से माँ सरस्वती की सारस्वत साधना में संलग्न रहते हुए वर्ष 2003 में सेवानिवृत्त हुए परन्तु वर्ष 2002 में उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का कुलपति नियुक्त कर दिया, जहाँ कवि 2005 तक कार्यरत रहे। इसी सेवावधि में महाकवि ने सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय में 42वें अखिल भारतीय प्राच्य विद्या समारोह का भव्य आयोजन भी करवाया।

अपने सेवाकाल में महाकवि मिश्र अब तक 52 शोधार्थियों का शोध निर्देशन कर चुके हैं जिनमें से अधिकांश शोधार्थी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हैं जिन्होंने महाकवि के निर्देशन में डी.फिल् की उपाधि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त कुछ शोधार्थी शिमला विश्वविद्यालय से महाकवि के निर्देशन में पी.एच.डी. एवं कुछ शोधार्थी सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय से विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। महाकवि के सान्निध्य एवं निर्देशन में एक शोधार्थिनी डी.लिट्. की उपाधि भी प्राप्त कर चुकी है।

3. सम्मान एवं पुरस्कार –

संस्कृत साहित्य के निष्णात विद्वान्, बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रो. मिश्र अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के कारण समय–समय पर अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित होते रहें हैं, जिनमें प्रादेशिक सम्मानों के अतिरिक्त राष्ट्रपति प्रदत्त राष्ट्रीय सम्मान भी सम्मिलित हैं। महाकवि प्राप्त प्रमुख सम्मान एवं पुरस्कारों का विवरण निम्न प्रकार हैं–

1. उत्तरप्रदेश शासन साहित्यिक पुरस्कार	:	1972–1997 के बीच (ग्यारह बार)
2. दिल्ली संस्कृत अकादमी पुरस्कार	:	1994–1998 (तीन बार)
3. राजस्थान संस्कृत अकादमी पुरस्कार	:	1999 (वामनावतरणम् महाकाव्य)
4. कालिदास सम्मान (म.प्र. शासन)	:	1988–1998 (दो बार)
5. राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार	:	1993 (सपनों में डूब गया मन)
6. वाल्मीकि पुरस्कार (चित्रकूट) (वित्तीय पुरस्कार)	:	1987 (संस्कृत सर्जना हेतु)
7. डॉ. रामकुमार वर्मा एकांकी पुरस्कार	:	1987 (रक्ताभिषेक : एकांकी संग्रह) शकुन्तला सिरोठिया न्यास, इलाहाबाद।
8. स्वामी धर्मानन्द साहित्य सम्मान	:	1994 (संस्कृत सर्जना हेतु) स्वामी धर्मानंद सरस्वती न्यास, परमार्थ आश्रम हरिद्वार (उ.प्र.)
9. डॉ. विद्यानिवास मिश्र नामित 'संस्कृतवाङ्मयालंकार सम्मान'	:	2000 ई., सोनाचल साहित्यकार संस्थान सोनभद्र (उ.प्र.)
10. सहस्राब्दी रत्न सम्मान	:	2000 ई., पानीपत हरियाणा (जैमिनी अकादमी)
11. साहित्य अकादमी सम्मान	:	1998 ई. (इक्षुगन्धाः कथासंग्रह) नई दिल्ली।

12. वाचस्पति सम्मान (वित्तीय पुरस्कार)	:	1993 (जानकीजीवनम् महाकाव्य) के. के. बिरलाफाण्डेशन, नई दिल्ली।
13. कल्पवल्ली सम्मान	:	1993 (विद्योत्तमा नाटिका) भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता।
14. महामहिम राष्ट्रपति सम्मान (वित्तीय सम्मान)	:	1999 ई. भारत सरकार, नई दिल्ली
15. अच्युतराम शर्मा संस्कृत सम्मान	:	2001 ई. हैदराबाद।
16. कविकुलगुरु कालिदास सम्मान	:	2004, महाराष्ट्र शासन, मुम्बई

महाकवि को 'कल्पवल्लीपुरस्कार' राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा व 'महामहोपाध्याय' अलंकरण राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के करकमलों से प्राप्त हुए हैं।

इन सभी सम्मान, पुरस्कार व अलंकरणों के अतिरिक्त महाकवि को 14 सितम्बर 2015 को 'पं. दीनदयाल उपाध्याय हिन्दी साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया है जो 4 लाख के वित्तीय पुरस्कार के रूप में है।

इन सबके अतिरिक्त प्रो. मिश्र रचित रचनाओं का विविध भाषाओं में अनुवाद होना उनके व्यक्तित्व का एक विशेष गुण है जो स्वयमेव इस बात का प्रमाण है कि वे सच्चे अर्थों में अर्वाचीन संस्कृत रचनाधर्मिता के एकमात्र पर्याय हैं। इसी रचनाधर्मिता के कारण भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों के सुदूर अंचलों में उनका समय–समय पर सारस्वत सम्मान होता रहा है।

4. कवि की रचनाधर्मिता –

जिस तरह गंगा, यमुना व सरस्वती की तीन धाराएँ तीर्थराज प्रयाग को अपने निर्मल जल से पवित्र कर उसे अलंकृत करती हैं उसी तरह प्रो. मिश्र भी स्वरचित त्रिभाषीय रचनाओं के द्वारा भारत को विश्व साहित्य जगत में विभूषित कर रहे हैं एवं सतत् श्रमसाध्य स्वसाधना से माँ भारती को अनवरत सुसमृद्ध कर रहे हैं।

'निरङ्कुशा हि कवयः' उक्ति को चरितार्थ करने वाले डॉ. मिश्र की साहित्यिक गुणवत्ता का प्रमाण यह है कि तेरह वर्ष की कोमलवय से अद्यतन कवि माँ भारती की सारस्वत साधना में स्वसर्जन द्वारा सतत् संजुष्ट हैं। समय–समय पर कवि की तीनों भाषाओं में विविध रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं, जिनमें से कुछ ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं–

1. आधुनिक संस्कृत काव्य :

(i) महाकाव्य – 1. जानकीजीवनम् (21 सर्ग) 1988

2. वामनावतरणम् (17 सर्ग) 1993

(ii) खण्डकाव्य :

1. आर्यान्योक्तिशतकम्	:	1975 में प्रकाशित ग्रन्थ जिसमें आर्या छन्द का अवलम्बन लेकर कवि ने आधुनिक कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।
2. नवाष्टमालिका	:	1976 में प्रकाशित रचना।
3. पारम्बाशतकम्	:	1981में प्रकाशितशतककाव्य।
4. शताब्दीकाव्यम्	:	1987 में प्रकाशित शतककाव्य।
5. अभिराज सप्तशती	:	1987 में प्रकाशित, देशप्रेम से सम्बन्धित सात शतक (नव्यभारतशतक, मातृशतक,प्रभात–मंगलशतक, चतुर्थीशतक, सुभाषितोद्धार शतक,सम्बोधनशतक,भारतदण्डकम्)

6. धर्मानन्दचरितम्	:	1992 में प्रकाशित।
7. पंचकुल्या	:	1992 में प्रकाशित जिसमें पाँच शतक सम्मिलित हैं (विमान–यात्राशतक,बालीप्रत्यभिज्ञान–शतक,यवसाहित्यशतक,देव–वाणीहुंकारशतक, संस्कृतशतक)।
8. करशूलनाथ महात्म्यम्	:	1996 में प्रकाशित।
9. कस्मैदेवाय हविषा विधेम	:	1996 ई. में प्रकाशित स्तुति ग्रन्थ जिसमें छः विषय हैं (देवस्तुतिः, महात्मस्तुतिः, विद्वत्स्तुतिः, राजस्तुतिः, सत्पुरुषस्तुतिः, प्रकीर्णस्तुतिः)।
10. अरण्यानि	:	1999 में प्रकाशित (काव्यसंग्रह)।
11. संस्कृतशतकम्	:	1999 में प्रकाशित (संस्कृत भाषा की प्रशस्ति में रचित शतककाव्य)।
12. अभिराजसहस्रकम्	:	2000 ई. में प्रकाशित शतक काव्य, जिसमें दश शतकों का संकलन है (प्रबोधशतक,धारामाण्डवीय, हिमाचलशतक, भारतीयपरिवेदन–शतक, उज्जयिनीशतक, वैशाली–शतक, विस्मयशतक, गुर्जरशतक, पाक– शासन शतक)।
13. मृगांकदूतम्	:	2000 में प्रकाशित / खण्डकाव्य
14. चर्चरी	:	2004 में प्रकाशित (गीतसंग्रह)
15. मृगमृगेन्द्रायोक्तिशतकम्	:	2008 में प्रकाशित, (मृग तथा मृगेन्द्र (सिंह) को केन्द्र बनाकर रचित सौ अन्योक्तियों का संकलन)।
16. अभिराजगीता	:	2011 में प्रकाशित।

17. अभिराजदण्डकम्	:	2014 में प्रकाशित ग्रन्थ जिसमें छः प्रमुख विषय हैं– (भारतदण्डकम्, सुरभारतीदण्डकम्, कलिदण्डकम्, दण्डकदण्डकम्,कालिदास दण्डकम्, रामभद्रदण्डकम्)
18. शतपंचदशी	:	2014 में प्रकाशित।
19. तुलसीप्रशस्तिशतकम्	:	2014 में प्रकाशित।

(iii) नवगीत संग्रह :

1. वाग्वधूटी	:	1978 में प्रकाशित 55 गीतों का संग्रह।
2. मृद्वीका	:	1985 में प्रकाशित 53 गीतों का संग्रह। जो पाँच भागों में विभक्त है। संस्कृत ध्वनि, राष्ट्र ध्वनि, प्रवास ध्वनि, निसर्ग ध्वनि एवं आत्म ध्वनि।
3. श्रुतिम्भरा	:	1989 में प्रकाशित 38 गीतों का संग्रह।
4. मधुपर्णी	:	2000 में प्रकाशित 60 गीतों का संग्रह। तीन शाखाओं में निबद्ध है जिसमें 22 ग़ज़लें, अठ्ठाईस गीति रचनाएँ व 18 छन्दोबन्धन–मुक्त रचनापर्ण रचनाएँ हैं।
5. कौमारम्	:	2006 में प्रकाशित 38 शिशुगीत संग्रह।
6. धोरणी	:	(यंत्रस्थ / Under Print)

गलज्जलिका संग्रह :

1. मत्तवारणी	:	2001 में प्रकाशित 64 गजलों का संग्रह।
2. शालभंजिका	:	2006 में प्रकाशित।
3. हविर्धानी	:	2009 में प्रकाशित।
4. कनीनिका	:	2010 में प्रकाशित।
5. शिखरिणी	:	2013 में प्रकाशित।
6. औदुम्बरी	:	2014 में प्रकाशित।

2. संस्कृत नाट्यसाहित्य :

(i) एकांकी रूपक :

1. नाट्यपंचगव्यम्	:	1971 में प्रकाशित पाँच एकांकी नाटक संकलन (कविसम्मेलनम्, राधामाधवीयम्, फण्टूसचरितभाणः, नवरसप्रहसनम्, कचाभिशापम्)
2. अकिञ्चनकांचनम्	:	1974 में प्रकाशित एकांकी संग्रह जिसमें मूल यूनानी कथा–वस्तु को भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार उपनिबद्ध किया गया है।
3. नाट्यपंचामृतम्	:	1977 में प्रकाशित पाँच एकांकी नाट्य संकलन (दास्यापनोदनम्, अर्जुनोर्वशीयम्, प्रीतिनिर्यातनम्, समर्चितमृत्तिकम् तथा छलिताधमर्णम्)
4. चतुष्पथीयम्	:	1983 में प्रकाशित चार एकांकी नाट्य संग्रह : (इन्द्रजालम्, निर्गृहघट्टम्, वैधेयविक्रमम्, मोदकं केन भक्षितम्)
5. रूपरूद्रीयम्	:	1986 में प्रकाशित एकांकी रूपक जिसमें ग्यारह एकांकी हैं (अभीष्टमुपायनम्, नात्मानमनवसादयेत्, स्वप्नाज्जागरणं वरम्, पुनर्मेलनम्, कन्था माणिक्यम्, कुटुम्बरक्षणम्, राजराजौदार्यम्, को विजयते नैव ज्ञातम्, रक्ताभिषेकम्, काश्यपाभिशापम्, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति)
6. नाट्यसप्तपदम्	:	1996 में प्रकाशित, सात एकांकी नाट्य संग्रह हैं (पंचसी नमी, वाणीघटकमेलकम्, बधिरप्रहसनम्, साक्षात्कारः, रूपमती, देहलीपरिवेदनम् तथा द्विसन्धानम्)
7. नाट्यनवरत्नम्	:	2006 में प्रकाशित एकांकी संग्रह।

8. नाट्यनवग्रहम् : 2006 में प्रकाशित इस ग्रन्थ में बच्चों के लिए प्रणीत नौ एकांकियों का संग्रह है (ईश्वरान्वेषणम्, गुरुदक्षिणा, दास्यमुक्तिः, सत्यकामो जाबालः, रत्नप्रत्यभिज्ञानम्, नामकरणम्, श्वेतोद्धारः, गुणाः पूजास्थानम् तथा सिंहजम्बुकीयम्)।

9. नाट्यनवार्णम् : 2010 में प्रकाशित एकांकी नाटक।

10. ममोत्तमलघुरूपकाणि : 2013 में प्रकाशित रचना।

11. नाट्यनवाह्निकम् : अप्रकाशित रचना।

12. रूपविंशतिका : अप्रकाशित रचना, अठारह उपरूपकों की संकलना से युक्त अप्रकाशित कृति।

(ii) सम्पूर्ण नाटिका :

1. प्रमद्वरा : 1984में प्रकाशित चतुरंकिका नाटिका जो कविवर्य द्वारा अपने श्रद्धेय गुरुजनों को समर्पित है।
2. विद्योत्तमा : 1992 में प्रकाशित चतुरंकिका नाटिका।
3. प्रशान्तराघवम् : 2006 में प्रकाशित सप्तांक नाटक।
4. लीलाभोजराजम् : 2011 में प्रकाशित सप्तांक नाटक।
5. उभयोदयम् : (यंत्रस्थ / inpress)

3. आधुनिक संस्कृत कथा :

(i) कथासंग्रह

1. इक्षुगन्धा : 1986 में प्रकाशित, आठ कहानियों का संग्रह।
2. राङ्गडा : 1992 में प्रकाशित, नौ कहानियों का संग्रह।
3. चित्रपर्णी : 2000 में प्रकाशित, 62 लघुकथाओं का संग्रह।
4. पुनर्नवा : 2006 में प्रकाशित कथा संग्रह।
5. अभिनवपंचतंत्रम् : 2009 में प्रकाशित कथा संग्रह।
6. कान्तारकथा : 2009 में प्रकाशित जंगल कथाओं का संग्रह।

7. छिन्नमस्ता : 2010 में प्रकाशित कथा संग्रह।

8. ममोत्तमकथानिका : 2013 में प्रकाशित संग्रह।

9. संचरणामृतम् : (in press)

4. संस्कृत काव्यशास्त्र :

1. संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति : 1985 में प्रकाशित, डी.फिल्. शोध प्रबन्ध।
2. अभिराजयशोभूषणम् : 2006 में प्रकाशित पंच उन्मेष समन्वित आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ।
3. शोध प्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान : 2008 में प्रकाशित।
4. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र : 2010 में प्रकाशित।

5. समीक्षा साहित्य :

संस्कृत :

1. शास्त्रालोचनम् : 1994 में प्रकाशित, 17 शोध निबंध।
2. समीक्षा सौरभम् : 2003 में प्रकाशित–संस्कृत शोध निबंध।
3. बालीद्वीपे भारतीया संस्कृति : 2009 में प्रकाशित।
4. ज्ञानांजनशलाका : in press

6. हिन्दी :

1. सेजराह कुसुशास्त्रान् संसकिर्त : 1988 में प्रकाशित।
2. मणिकांचन : 1991में प्रकाशित 18 हिन्दी शोध निबंध।
3. सुवर्णद्वीपीय रामकथा : 1996 में प्रकाशित।
4. भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक : बालीद्वीप : 1998 में प्रकाशित, बालीद्वीप में विद्यमान भारतीय संस्कृति पर रचित संस्कृत भाषा का शोध–प्रबन्ध।
5. सप्तधारा : 2004 में प्रकाशित 57 शोधलेख।

6. स्वाध्यायपर्व	:	2012 में प्रकाशित।
7. प्रज्ञालोक	:	2012 में प्रकाशित।
8. संस्कृत कविता का प्राचीन एवं नवीन परिदृश्य	:	2013 में प्रकाशित।
9. सन्धानसिन्धु	:	2014 में प्रकाशित।
10. नई सहस्राब्दी में संस्कृत	:	2014 में प्रकाशित।
11. जनवादी संस्कृत कविता	:	2014 में प्रकाशित।
12. संस्कृत कविता का समृद्धियुग	:	2014 में प्रकाशित।
13. पोइट्री एण्ड पोएटिक्स	:	यंत्रस्थ (25 निबन्ध)।
14. Glimpses of Modern Sanskrit Poetry	:	inpress

7. पाठ्य ग्रन्थ :

1. किरातार्जुनीयम्	:	1970 में प्रकाशित, प्रथम सर्ग अनुवाद एवं व्याख्या।
2. कादम्बरीकथामुखम्	:	1973 में प्रकाशित, अनुवाद एवं व्याख्या।
3. छन्दोऽलंकारसौरभम्	:	1980 में प्रकाशित, छन्दःशास्त्र पर मौलिक कृति।
4. रसनिरूपणम्	:	1986 ई. में प्रकाशित।
5. संस्कृतगद्यामृतम्	:	1996 ई. में प्रकाशित।
6. साहित्यदर्पणः	:	2000 में प्रकाशित, तृतीय परिच्छेद एवं रसप्रकरणपर्यन्तम्।
7. संस्कृत काव्यत्रिपथगा	:	2000 ई. में प्रकाशित।
8. संस्कृतामृतचन्द्रिका	:	2000 ई. में प्रकाशित।

8. अनुवाद एवं लिप्यन्तरण :

1. रामायणककविन् : 1995 में प्रकाशित यवद्वीपीय रामायण, देवनागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत भूमिका।
2. प्रो. राघवन् प्रणीत रसों की संख्या : 2007 में प्रकाशित
3. सुवर्णमुक्तासंवादः (संस्कृत) : 2010 में प्रकाशित।
4. विजयपर्वः (संस्कृत) : 2011 में प्रकाशित।
5. ओङ्कारविज्ञानम् (हिन्दी से संस्कृत) 2014 में।

9. अभिराजराजेन्द्र – समीक्षा साहित्य :

1. अभिराज राजेन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : 2005 में प्रकाशित
   डॉ. राजेश कुमारी मिश्र
2. साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्र मिश्र : 2010 में प्रकाशित
   लेखन : डॉ. राजेशकुमारी मिश्र
3. अभिराजराजेन्द्र एवं उनकी कृतियाँ : 2009 में प्रकाशित
   लेखन–डॉ. एस. रंगनाथ बंगलौर (कर्नाटक)
4. अभिराज रागकाव्य–समीक्षा : 2012 में प्रकाशित
   लेखन : डॉ. हितेश कुमार चौरे (जबलपुर यूनि.)
5. जानकीजीवन एक अभिनव स्पर्श : 2008 में प्रकाशित।
   लेखन : डॉ. सुमन जैन (श्री गंगानगर)
6. आधुनिक संस्कृत गद्यकार (प्रथम पुष्प) : 2008 में प्रकाशित।
   अभिराज राजेन्द्र मिश्र
   लेखन : डॉ. मुकेश पाण्ड्या
7. इक्षुगन्धा का बंगला अनुवाद : 2008 में प्रकाशित।
   लेखन : श्रीमती अमिता चक्रवर्ती
8. शतकद्वयम् (गुजराती रूपान्तर) : 2009 में प्रकाशित।
   लेखन : डॉ. राधा एम. पटेल,
   पालनपुर गुजरात।

10. अप्रकाशित संस्कृत कृतियाँ :

1. पृथुवंशम् (महाकाव्य)
2. मंगलाचरणकाव्यम्
3. गीतभारतम् (रागकाव्यम्)
4. अभिराजचम्पूः
5. औदीच्ययक्षगानम्
6. छन्दोऽभिराजीयम्
7. बालीविलासम् (खण्डकाव्यम्)
8. वैतरणी (काव्यसंकलना)
9. छायातपीयम् (काव्य)
10. काव्यपंचवटी (शतकसंग्रह)
11. काव्यतरंगणी (विंशतितरङ्गात्मिका)
12. अभिराजशतकम् (खण्डकाव्यम्)
13. चौरशतकम् (प्रणयकाव्यम्)
14. गृभ्णामि त्वां सौभगत्वाय (आत्मवृत्तम्)
15. मरुवणमाकन्दः (उपन्यास)
16. साहित्यपथोनिधिमन्थनामृतम् / अर्वाचीनकविसदुक्तिसंकलनम्

अभिराज वाङ्मय : (हिन्दी, भोजपुरी एवं अंग्रेजी)

11. काव्यसंग्रह :

1. दो पात नींबू–तीन पात अमोला	:	1968 में प्रकाशित 68 कविताओं का संग्रह।
2. मुक्तधारा	:	1972 में प्रकाशित 20 गीत संग्रह।
3. सपनों में डूब गया मन	:	1972 में प्रकाशित 55 गीत संग्रह।
4. पलकों के बन्द द्वार	:	1990 में प्रकाशित 53 गीत–संग्रह।
5. तटस्था	:	2003 में प्रकाशित जनवादी कविताएँ।

12. खण्डकाव्य :

1. वेदना (भूमिका : पं. सुमित्रानन्दन पंत) : 1966 में प्रकाशित।
2. पनघट (भूमिका : डॉ. रामकुमार वर्मा) : 1967 में प्रकाशित।
3. मुक्तिदूत : 1975 में प्रकाशित।
4. पूर्णकाम (भरत पर आश्रित) : 1975 में प्रकाशित।
5. गृहत्याग (तथागत पर आश्रित) : 1975 में प्रकाशित।

13. बालसाहित्य :

1. बच्चों के पाहुन : 1975 में प्रकाशित पंचतंत्र की पद्यकथाएँ।
2. पढ़ों और बनो : 1975 में प्रकाशित सचित्र बालकथाएँ।
3. वन के गीत–मन के मीत : 1975 में प्रकाशित पद्यकथाएँ।
4. नया विहान : 1976 में प्रकाशित तीन एकांकी।
5. महाभारत की किशोरकथाएँ : 1981 में प्रकाशित।
6. तितली के पंख : 1982 में प्रकाशित 30 शिशु कविताएँ।
7. रक्ताभिषेक : 1985 में प्रकाशित तीन एकांकी।

14. भोजपुरी काव्य संग्रह :

1. फगुनी बयार : 1992 में प्रकाशित 120 गीत।

गद्यवाङ्मय :

1. विधवा : 1973 में प्रकाशित आंचलिक उपन्यास।
2. देवरा हजारी : 1994 में प्रकाशित कथासंग्रह।
3. रक्तवैतरणी : 2004 में प्रकाशित कथासंग्रह।

15. अप्रकाशित वाङ्मय :

1. बदरा भइल मोरा दूत (मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तरण)
2. बिरहा के रैन (खण्डकाव्य)
3. सकुन्तला (भोजपुरी महाकाव्य)
4. गन्धमादन (राष्ट्रीय काव्यसंग्रह)
5. अस्थिकलश (खण्डकाव्य)

6. सुपर्ण (खण्डकाव्य)
7. पाषाणी (खण्डकाव्य)
8. त्रिणाचिकेत (काव्यरूपक)
9. अदृश्यन्ती (पौराणिक नाटक, तीन अंक)
10. दुर्योधनवध (मंचीय नाटक, पाँच अंक)
11. रोदसी (महाकाव्य, 15 सर्ग, अपूर्ण)
12. टिटनेस वार्ड की पाँच रातें (डायरी)
13. हिमालय के आँगन में (यात्रावृत्त)
14. मेरी प्रथम दक्षिण भारत–यात्रा (यात्रावृत्त)
15. सुवर्णद्वीप में भारतीय वर्चस्व
16. महाकाल की नगरी में (यात्रावृत्त)
17. नाच्यौ बहुत गोपाल (आत्मकथा)
18. आत्मख्यात कालिदास
19. पुण्यश्लोको नलो राजा (संस्मरण)
20. आँचल तले तुम्हारे (गीत संग्रह)
21. पावन पत्रशेष (पत्रसंग्रह)

इन सब बिन्दुओं के अतिरिक्त भी प्रो. मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू भी हैं जिनका स्पर्श किए बिना महाकवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्पूर्ण विवेचन करना अपर्याप्त होगा, अतः मिश्र कवि के जीवन व कार्यों के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष निम्नवत् हैं–

(i) प्रो. मिश्र की रचनाओं का अन्यान्य भाषाओं में अनुवादः –

प्रो. मिश्र की रचनाओं का भाषान्तर रूपान्तरण भी उनके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष एवं उनकी लोकप्रियता व साहित्यिक गुणवत्ता का सूचक है, यथा–

अंग्रेजी रूपान्तरण –महाकवि की अनेक रचनाओं के अंग्रेजी में अनुवाद हुए हैं, जिनमें से दो कथासंग्रह; 'अनामिका' एवं 'महानगरी' का रूपान्तरण डॉ. वी. कामेश्वरी द्वारा 'पोतविहगौ' एवं 'इक्षुगन्धा' का क्रमशः डॉ. गंगाधर पण्डा एवं डॉ. रविशंकर नागर द्वारा 'वैशाली' कविता का रूपान्तर डॉ. हर्षदेव माधव द्वारा किए गए हैं।

हिन्दी रूपान्तरण – महाकवि की विविध रचनाओं के हिन्दी रूपान्तरण भी साहित्यानुरागियों द्वारा किए गए हैं। महाकवि विरचित 'स्वतंत्रता' तथा 'न्यायालयवृत्तम्' (कविता) का हिन्दी रूपान्तरण श्री बालस्वरूप राही एवं डॉ. इन्दु प्रकाश मिश्र द्वारा किया गया है। 'इक्षुगन्धा' (कथासंग्रह) का हिन्दी रूपान्तर डॉ. शैल वर्मा व डॉ. प्रमोद भारतीय द्वारा पृथक्–पृथक् किए गए हैं।

तेलगु रूपान्तरण – महाकवि विरचित 'इन्द्रजालम्' एकांकी का तेलगु रूपान्तरण डॉ. श्रीनिवास दीक्षितुलु (काजीपेट) आन्ध्रप्रदेश द्वारा किया गया है। महाकवि रचित अनेक कहानियों के तेलगु रूपान्तर श्रीमती एस.राजश्री द्वारा किए गए हैं जो 'विपुल' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं।

मलयालम रूपान्तरण – महाकवि की 'जिजीविषा' कथा का मलयालम रूपान्तरण डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण (केरल) द्वारा किया गया है।

उर्दू रूपान्तरण – महाकवि विरचित 'भग्नपंजरः' कथा का उर्दू रूपान्तर डॉ. अहमद नसीम सिद्दीकी (लखनऊ) द्वारा किया गया है।

बँगला रूपान्तरण – साहित्य अकादमी की कलकत्ता शाखा द्वारा महाकवि रचित 'इक्षुगन्धा' (कथासंग्रह) का बँगला संस्करण 2008 में प्रकाशित किया जा चुका है जिसका बंगला अनुवाद श्रीमती अमिता चक्रवर्ती द्वारा किया गया है।

गुजराती रूपान्तरण – महाकवि विरचित 'शतकद्वयम्' कृति का गुजराती अनुवाद डॉ. राजाराम पटेल द्वारा किया गया है।

(ii) विदेश यात्रा या बाली द्वीपीय प्रवास –

1987–89 की दो वर्षीय अवधि में डेनपसार में रहते हुए महाकवि ने 10 काव्य (हिन्दी / संस्कृत), 36 शोध निबंध, 44 कविताएँ तथा दर्जनों संस्मरण लिखे हैं, जिनमें से कुछ कार्य 'कादम्बिनी' तथा 'धर्मयुग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित हुए हैं। बालीप्रवास के समय प्रो. मिश्र द्वारा किए गए कार्यों में से दो प्रमुख कार्य, जो कि चिरस्मरणीय हैं, वे हैं–

(क) Bahasa Indonesia –इण्डोनेशिया की वर्तमान राष्ट्रभाषा में संस्कृत साहित्य के इतिहास की रचना (Sejarah kesusastram Sanskerta. p.110, Denpasar, Bali, 1998)

(ख) Ramayan Kakween –(जावी रामायण, 26 सर्ग तथा 2778 कवि भाषा श्लोक) का देवनागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद/शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका एवं पाद टिप्पणी।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाकवि के आत्मचिन्तन एवं आत्मप्रतिभा से उद्‌भुत 50 संस्कृत रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से दो विशाल महाकाव्य, तीन कथा संग्रह, पाँच नवगीत संग्रह तथा पाँच एकांकी संग्रह हैं। डॉ. मिश्र की उत्कृष्ट लेखन कला से सम्बन्धित प्रमुख तथ्य निम्न प्रकार हैं–

- डॉ. मिश्र सर्वाधिक शतककाव्य लिखने वाले महाकवि हैं, जिनके शतकों की संख्या 33 है।
- चार सौ की संख्या से भी अधिक मुक्तगीत लिखने वाले महाकवि डॉ. मिश्र ही हैं।
- महाकवि लिखित 65 एकांकी नाटक या तो ग्रन्थाकार हैं अथवा पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

अपने पाण्डित्य से महाकवि ने संस्कृत भारती के समान ही हिन्दी वाङ्‌मय को भी अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से सुसमृद्ध बनाया है। लगभग 200 हिन्दी मौलिक कृतियों के अतिरिक्त 1150 ललित निबन्ध देश की मानक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर साहित्य रसिकों के हृदयानुरंजन के साधनभूत बन चुके हैं।

संस्कृत व हिन्दी साहित्य के समान ही कवि ने भोजपुरी में भी नानाविध रचनाओं के द्वारा अपनी विलक्षण प्रतिभा से उसे चमत्कृत किया है। 'मेघदूत' के भोजपुरी रूपान्तरण (बदरा भइल मोरा दूत) तथा 'सकुन्तला' महाकाव्य (9 सर्ग के) अतिरिक्त लगभग सवा सौ पारम्परिक लोकगीतों की सर्जना कर कवि ने भोजपुरी

भाषा को श्रीमण्डित किया है। महाकवि की सहस्र कमल सदृश कृतियों पर देश के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शोधकार्य किया जा रहा है।

महाकवि राजेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के पूर्ण विवेचन के बाद हम कह सकते हैं कि महाकवि मिश्र की प्रतिभा ही उनकी रचनात्मकता का मूल है। किसी भी कवि को सायास सर्जन हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता, वह स्वयं अनुभूत भावनाओं व विचारों को ही अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सारस्वत परिस्फुरणमूलक होने के कारण प्रो. मिश्र की रचनाधर्मिता को भी परिमाण में बांधना कठिन है। महाकवि ने अपने त्रिविध भाषीय सर्जन तथा विविध विधाओं में किए गए नवीन प्रयोगों द्वारा युवा साहित्य सर्जकों के लिए अनुद्घाटित वातायन खोले हैं। कविवर्य द्वारा प्रवाहित विविध विधाओं से सम्पृक्त त्रिविध भाषाओं की अलकनंदा में सहृदय पाठकों का हृदय तरंगायित व कम्पित होते हुए आनन्द से आप्लावित हो उठता है।

सम्प्रति महाकवि शिमला में रहकर अपनी सारस्वत साहित्यिक साधना में सातत्येन सन्नद्ध हैं। महाकवि की वाग्मिता वक्तृत्व कौशल, ऊर्जस्विता को देखकर उनकी अवस्था का अनुमान लगाना कठिन है। महाकवि की रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि समूचे संस्कृत साहित्यजगत् में कालिदास के पश्चात् डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ही एकमात्र सहृदय कवि हैं।

◈◈◈

पंचम अध्याय

महाकाव्य का महाकाव्यत्व

महाकाव्य का महाकाव्यत्व

1. महाकाव्य का लक्षण –

वेद से संस्कृत साहित्य की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई वह अद्यावधि अक्षुण्ण रूप से प्रवहमान है। आदिकाल से ही 'रामायण' व 'महाभारत' संस्कृत वाङ्मय के दो अनमोल उपजीव्य रत्न ग्रन्थ हैं, जो अद्यतन संस्कृत साहित्य सर्जकों को सर्जन हेतु अनुप्राणित कर रहे हैं। अतएव उपजीव्य नाम से अभिहित किए जाते हैं।

उपजीव्य ग्रन्थों के अनुसार यदि हम 'महाकाव्य' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करें तो 'महाभारत' में स्वयमेव 'महत्' विशेषण संयुक्त है ही, आदिकवि ने भी 'रामायण' को 'महत्' काव्य की संज्ञा दी है–

"कर्त्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनि i>0:।।"[1]

महाकाव्य के लिए वाल्मीकि रामायण में ही 'सर्गबन्धं' शब्द का उल्लेख भी मिलता है तदनुरूप ही 'रामायण' पहला काव्य है जिसका विभाजन सर्गों में हुआ है।

महाभारत व रामायण के पश्चात् 'अग्निपुराण' में महाकाव्य का नवीन व विशद लक्षण प्राप्त होता है जिसके अनुसार–

सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत्।।
तादात्म्यमजहद् तत्र तत्समं नाति दुःष्यति।
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम्।
शक्वर्य्यातिजगत्यातिशक्वर्य्या त्रिष्टुभा तथा।।
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिजनैश्चारुभिः समैः।
युक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्त सर्गकम्।।
अतिशक्वरिकाष्टिभ्यामेकसङ्कीर्णकः परः।
मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः।।

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–93 / 24

कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन् विशेषो नादरः सताम्।
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रर्कार्श्रमपादपैः।।
उद्यान सलिल क्रीड़ामधुपानरतोत्सवैः।
दूतीवचन विन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः।
तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः।
सर्ववृत्तिप्रवृतंच सर्वभावप्रभावितम्।।
सर्वरीतिरसैः पुष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः।
अतएव महाकाव्यं तत् कर्त्ता च महाकविः।।
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।
पृथक्प्रयत्नानिर्वर्त्यं वाग्वक्रिम्णि रसाद् वपुः।।
चतुर्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं नायकाख्यया।
समानवृत्तिनिर्व्यूढः कौशिकीवृत्ति कोमलः।।[1]

जिसका निबन्धन सर्गों में तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से किया गया हो, उसे महाकाव्य कहते हैं। महाकाव्य के स्वरूप का त्याग किए बिना जो रचना महाकाव्य के स्वरूप होती है, उसे भी दूषित नहीं माना जाता। काव्य का निर्माण इतिहास के आधार पर होता है, अथवा अन्य किसी सदाश्रय के आधार पर होता है। इसमें यथास्थान गुप्तमन्त्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण तथा युद्ध का वर्णन किया जाता है। वह अधिक विस्तृत नहीं होता। शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा आदि तथा वक्त्र आदि अत्यन्त मनोहर तथा समवृत्तों के द्वारा महाकाव्यों की रचना होती है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना चाहिए। सर्गों को अत्यंत संक्षिप्त नहीं होना चाहिए। अतिशक्वरी तथा अष्टि इन दो छन्दों में से एक छन्द संकीर्ण होना चाहिए तथा दूसरा छन्द मात्रिक छन्दों से संकीर्ण (पूर्ण) होना चाहिए। पूर्व सर्ग की अपेक्षा अगला सर्ग अधिक प्रशस्त होना चाहिए। अल्प अत्यन्त निन्दित कोटि का काव्य है, उसमें सज्जनों का विशेष आदर नहीं होता है। नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमा, सूर्य, आश्रम, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान, सुरतोत्सव, दूतीवचन, विन्यास तथा कुलटा के

1. अग्निपुराण—337/24—34

चरित्र आदि अद्‌भुत वर्णनों से युक्त होता है महाकाव्य। अन्धकार, वायु तथा रति को उद्दीप्त करने वाले अन्य विभावों से महाकाव्य युक्त होता है। उसमें समस्त प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। वह सब प्रकार के भावों से प्रभावित होता है तथा सब प्रकार की रीतियों तथा समस्त रसों से उसका संस्पर्श होता है। समस्त गुणों तथा अलंकारों से उसे परिपुष्ट किया जाता है। इन समस्त विशेषताओं के कारण ही इस रचना को महाकाव्य तथा उसके प्रणेता को महाकवि कहा जाता है। महाकाव्य में वाणी की विचित्रता की प्रधानता होने पर भी रस ही उसका जीवन होता है। उसके स्वरूप की सिद्धि सहजभाव से साध्य वक्रोक्तिविषयक रस से होती है। महाकाव्य का फल चारों प्रकार के पुरूषार्थ की प्राप्ति है। वह नायक के ही नाम से विख्यात होता है। महाकाव्य का निर्वाह समान छन्दों अथवा वृत्तियों से किया जाता है। कौशिकी वृत्ति की प्रधानता होने से काव्य में कोमलता होती है।

प्राचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त महाकाव्य का लक्षण–

'अग्निपुराण' के पश्चात् काव्यशास्त्रीय आचार्यों में प्रथमगण्य **भामह** ने अपने **'काव्यालंकार'** में महाकाव्य का विस्तृत लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है कि–

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्चयत्
मन्त्रदूतप्रयाणा जिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येमृद्धियत्
चतुवर्गाभिधानेऽपि भूयसार्धोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।[1]

सर्गबन्ध महाकाव्य कहलाता है। यह आकार में बड़ा तथा महान् लोगों के चरित्र का निरूपण करने वाला वाक्य है। इसमें मंत्र, दूत, युद्ध का वर्णन होता है तथा नायक का अभ्युदय दिखाया जाता है। महाकाव्य ग्राम्य शब्दों से रहित, अर्थसौष्ठव से युक्त, अलंकार से युक्त तथा सत्पुरुषों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए।

1. काव्यालंकार–भामह–1/19–21

इसमें चतुर्वर्ग का प्रतिपादन होना चाहिए। लोकस्वभाव तथा सभी रसों का इसमें निरूपण होना चाहिए। भामह के पश्चात् **दण्डी** ने अपने **'काव्यादर्श'** नामक ग्रन्थ में महाकाव्य लक्षण का निरूपण करते हुए लिखा है कि–

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापितन्मुखम्
इतिहासकथोऽभूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकं।
नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिल क्रीडा मधुपानरतोत्सवैः।
विप्रलम्भैर्विवाहश्च कुमारोदयवर्णनैः
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि
अलंकृतसंक्षिप्तमं रसभावनिरन्तरं।।
सर्गैरनातिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुगन्धिभिः।
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरूपैत लोकेरंजनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति।।[1]

सर्गबन्ध महाकाव्य कहलाता है। इसका आरम्भ आशीः, नमस्क्रिया या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से होना चाहिए। कथा इतिहास से निकली हुई होनी चाहिए या अन्य कोई उदात्त कथा इसमें वर्णित हो सकती है। नगर, जलाशय, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, उपवनविहार, जलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलंभ, विवाह तथा युद्ध का वर्णन होना चाहिए। इसके सर्ग न अधिक बड़े हों, न अधिक छोटे। महाकाव्य लोकरंजन में समर्थ तथा विभिन्न प्रकार के वृत्तान्तों से युक्त होना चाहिए।

1. काव्यादर्श–दण्डी–1 / 14–16

काव्यशास्त्रीय आचार्यों की इसी परम्परा में **रुद्रट** ने भी अपने **'काव्यालंकार'** में महाकाव्य का लक्षण करते हुए लिखा है कि–

तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कविः सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्तिं नायकमपि कुत्रचित् कुर्यात्।।
तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च।।
तत्र त्रिसर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्त प्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्।।
विविधत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राज्यवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम्।।
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादिं साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद्गुणिनम्।।
स्वचराद्दूताद्वा कुतोऽपि वा श्रृण्वतोऽरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचिन्तगिराम्।।
संमन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
तं दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखम्।।
अथ नायक प्रयाणे नागरिकाक्षोभ जनपदाद्रिनदीः।
अटवीकानन सरसीमरूजलधिद्वीप भुवनानि।।
स्कन्धावारनिवेशं क्रीडा यूनां यथायथं तेषु।
रव्यस्तमयं सन्ध्यां सतमसमथोदयं शशिनः।।
रजनीं च तत्र यूनां समाज संगीतपान श्रृंगारान्।
इति वर्णयेत्प्रसङ्गात्कथां च भूयो निबध्नीयात्।।
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखमृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि।।
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः।
स्ववधं विंशकमानान्दसंदेशान्दापयेत्सुभटान्।।

संनह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कार्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते।।
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत।
संधीनपि संश्लिष्टां स्तेषामन्योन्यसम्बन्धात्।।[1]

रुद्रट के अनुसार उत्पाद्य प्रबन्ध वे होते हैं जिनकी पूरी कथावस्तु कविकल्पित होती है और कहीं तो वह नायक भी वास्तविक जगत में कविकल्पित होता है जिसकी उत्पत्ति युक्त प्रतीत होती है। महाकाव्य के प्रारम्भ में सुन्दर नगरी तदनन्तर उसमें नायक के कुल की प्रशंसा का वर्णन होना चाहिए। मन्त्र, प्रभु और कोष शक्ति से सम्पन्न सभी गुणों से युक्त, समस्त प्रजाओं को प्रिय विजयेच्छु नायक का उपन्यास करना चाहिए। समूचे राज्य और राजधर्म को भलीभाँति पालन करते हुए उसके प्रसंग में आए हुए शरदादि ऋतुओं का वर्णन करना चाहिए। अपने मित्र अथवा धर्मादि के प्रयोजन को सिद्ध करते हुए उस नायक के प्रतिनायक को कुलीनों में अग्रगण्य एवं गुणवान रूप में चित्रित करना चाहिए। राज्यसभा में अपने चर (प्रतिपक्षी) दूत तथा किसी अन्य सूत्र से शत्रु के कार्यों को सुनते हुए क्रोध से जले हुए (नायक) के चित्त एवं वाणी के क्षोभ का वर्णन होना चाहिए। सचिवों के साथ मन्त्रणा करके शत्रु की दण्डसाध्यता का निश्चय करके उसके ऊपर आक्रमण करे अथवा चंचल दूत भेजे। नायक के प्रस्थान में नागरिकों के अक्षोभ (धैर्य), देश, पर्वत, नदी, अटवी, वन, सरसी, मरुस्थल, सागर, द्वीप, लोक, पड़ाव तथा उनमें युवकों की क्रीड़ा, सूर्य के अस्त होने के समय संध्या, अंधकार व चन्द्रोदय का प्रभूत विस्तार हो, रात्रि, युवकों के समाज, संगीत, पान–गोष्ठी और श्रृंगार का प्रसंगानुकूल वर्णन हो तथा इस प्रकार कथा का प्रभूत विस्तार होना चाहिए। नायक के ही समान उसके सामने आते हुए प्रतिनायक का वर्णन करना चाहिए। प्रयोजनवश उसमें नगरी पर घेरा डालने का भी वर्णन होना चाहिए। 'प्रातःकाल युद्ध करना है' इस कारण से अपनी मृत्यु की शंका करने वाले सैनिकों के द्वारा रात में स्त्रियों के लिए प्रबन्धवश (प्रसंगतः) मदिरापान का संदेश होना

---

1. काव्यालंकार–रुद्रट–16/3, 7–19

चाहिए। सन्नद्ध होकर व्यूह बनाकर आश्चर्यपूर्वक परस्पर युद्ध करते हुए दोनों में से परिणाम में नायक की बड़ी कठिनाई से सुन्दर अभ्युदय करना चाहिए। इस उत्पाद्य महाकाव्य में (भरतादि आचार्यों द्वारा उपदिष्ट) परस्पर सम्बद्ध, संश्लिष्ट संधियों की तथा अवान्तर प्रकरणों की सर्गबद्ध रचना करनी चाहिए।

हेमचन्द्र ने **'काव्यानुशासन'** में महाकाव्य का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है कि–

> **"पद्यं प्रायः संस्कृत प्राकृतापभ्रंशग्राम्य भाषा निबद्धभिन्नान्त्य–**
> **वृत्तसर्गा श्वाससंध्यवस्कन्धकबन्धं सत्संधि शब्दार्थवैचित्र्योपेतं**
> **महाकाव्यं। छन्दोविशेषरचितं प्रायः संस्कृतादिभाषा निबद्धैभिन्ना–**
> **न्त्य–वृत्तैर्यथासंख्यं सर्गादिभिनिर्मितं सुश्लिष्टमुखप्रतिमुख गर्भ**
> **विमर्श निर्वहणसंधिसुन्दरं शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।।"**[1]

हेमचन्द्र के अनुसार संस्कृत भाषा के अतिरिक्त, प्राकृत, अपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना हो सकती है। संस्कृत भाषा में सर्गबन्ध, प्राकृत में आश्वासक बन्ध, अपभ्रंश में संधिबंध और ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कन्धबंध महाकाव्य होते हैं। कभी–कभी संस्कृत में सर्ग के स्थान पर आश्वासकबन्ध, नाम से विभाजन दृष्टिगत होता है। वह नाटकादि संधियों–मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण तथा शब्दार्थ वैचित्र्य से युक्त होता है।

परवर्ती आचार्यों में **साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ** ने श्रव्य काव्य के भेद के रूप में महाकाव्य का लक्षण करते हुए कहा है कि–

> **सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।**
> **सदृशं क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।**
> **एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।**
> **शृंगार वीर शkkUrkukedk>h रस इष्यते।**

1. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र–8/6

अ›ानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।

इतिहासोद्‌भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गाः अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
संध्यासूर्यन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलतुर्वनसागराः।।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं सा›ोपा›ाम् अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतस्य वा।।[1]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होता है और उसमें एक ही नायक का चरित्र चित्रित होता है। वह देवता या सद्‌वंशोत्पन्न होता है, जिसमें धीरोदत्त नायक के गुण विद्यमान होते हैं। किसी–किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक राजाओं का भी चरित्र–वर्णित होता है। इसमें शृंगार, वीर, शान्त में से एक अंगीरस होता है तथा शेष गौण होते हैं। महाकाव्य में रचनाशिल्प की दृष्टि से सभी नाट्‌यसन्धियों का समावेश किया जाता है। महाकाव्य का इतिवृत्त ऐतिहासिक होना चाहिए अथवा किसी भी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध घटना का इसमें वर्णन होना चाहिए। धर्म–अर्थ–काम व मोक्ष का इसमें काव्यात्मक वर्णन होना चाहिए तथा मुख्य फल के रूप में किसी एक का सम्यक् निबन्धन होना चाहिए। महाकाव्य का

1. साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ–315–324

प्रारम्भ नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक में से किसी एक मंगलाचरण से होना चाहिए। इसमें खल निन्दा अथवा सज्जनप्रशंसा का भी विधान होना चाहिए। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द में पद्यों की रचना हो, किन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तित कर देना चाहिए। इसमें न तो अधिक बड़े और न अधिक छोटे आठ से अधिक सर्ग हों। कुछ महाकाव्यों में एक ही सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग देखा जाता है। सर्ग के अन्त में आगे आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, उपवन, समुद्र, सम्भोग, विप्रयोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, पुत्रजन्म और अभ्युदय आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य का नामकरण कवि, वृत्त अथवा नायक–नायिका एवं अन्य आधार पर भी होता है, साथ ही उसके सर्ग का नाम वर्ण्यविषय के आधार पर होता है।

इनके अतिरिक्त प्रतापरूद्र के 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' तथा 'विष्णु धर्मोत्तर' पुराण में भी महाकाव्य के लक्षण उपलब्ध होते हैं। ये लक्षण उपर्युक्त महाकाव्य लक्षणों से साम्य रखते हैं। परवर्ती आचार्यों द्वारा दिए गए महाकाव्य लक्षणों के आधार पर महाकाव्य में निम्न तत्वों का होना आवश्यक है–

- सर्गबन्ध होना चाहिए।
- इतिहास प्रधान अथवा अन्य किसी सदाश्रय के आधार पर काव्यनिर्माण होना चाहिए।
- काव्य कलेवर के अनुसार यथास्थान गुप्तमन्त्रणा, दूतमन्त्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण, युद्ध आदि का वर्णन होना चाहिए।
- नदी, नद, पर्वत आदि प्रकृति के विविध उपादानों का वर्णन होना चाहिए।
- अन्धकार, वायु तथा रति को उद्दीप्त करने वाले विभावों से युक्त होना चाहिए।
- रस महाकाव्य का प्राण होना चाहिए।
- शान्त, वीर तथा शृंगार में से एक रस अंगी तथा शेष गौण होने चाहिए।

- सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए।
- समस्त प्रकार की वृत्तियों एवं गुणों से युक्त होना चाहिए।
- पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति महाकाव्य का फल होना चाहिए।
- त्रिविध मंगलाचरण में से किसी एक का विधान होना चाहिए।
- सर्ग संख्या आठ से अधिक होनी चाहिए।
- सर्गान्त में आगे आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।
- सर्ग का नामकरण वर्ण्य विषय के आधार पर होना चाहिए।
- महाकाव्य नायक के नाम से विख्यात हो अथवा कविवृत्त, नायक–नायिका के आधार पर नामकरण होना चाहिए।
- महाकाव्य में खल निन्दा अथवा सज्जन प्रशंसा का विधान होना चाहिए।
- नायक के समान ही प्रतिनायक का वर्णन होना चाहिए।

आधुनिक काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त महाकाव्य का लक्षण–

वर्तमान समय में डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी एवं रहसबिहारी द्विवेदी जी प्रभृति महाकवियों ने भी महाकाव्य लक्षण प्रस्तुत किए हैं जिनका मेरी दृष्टि से यहाँ उल्लेख करना समीचीन है क्योंकि समय के साथ मत, विचार व धारणाएँ परिवर्तित होती हैं। जो विचार या मत पहले नवीन था आज वह प्राचीन है, जो आज नवीन है हो सकता है उसे आने वाले कुछ काल पश्चात् प्राचीन माना जाए एवं पुनः परवर्ती आचार्यों के विचारों को भावी पीढ़ी द्वारा नवीनता की दृष्टि से देखा जाए परन्तु फिर भी बदलते हुए परिवेश के आधार पर यहाँ अर्वाचीन आचार्यों द्वारा दिए गए लक्षणों के आधार पर महाकाव्य की समीक्षा करना मेरे विचार से उपयुक्त ही है–

सर्वप्रथम **'अभिराजयशोभूषण'** में **डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र** ने महाकाव्य का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है कि–

सर्गबन्धो महाकाव्यं लोकवन्द्य जनाश्रयम्।
ख्यापयद् विश्वबन्धुत्वं स्थापयद् विश्वमंगलम्।।
नायकस्तत्र देवः स्यात्प्रजाबन्धुरथो नृपः।
चारूचर्योऽथवा कोऽपि सज्जनश्चरितोज्ज्वलः।।
प्रातस्सन्ध्यानिशीथेन्दुभास्करोदयतारकाः।
वनोद्यानदीसिन्धुप्रपातादि बलाहकाः।।
ग्रामाश्रमपुराऽरामदुर्गसैन्यरणोद्यमाः।
पुत्रजन्मादिवृत्तान्ताः पामरावासंकथा।।
इतिवृत्तानुरोधात्तु वर्णनीया न चाऽन्यथा।
प्रसह्य वर्णने तेषां न च तृप्तिर्न वा यशः।।
यच्छिवं यच्च सत्यं स्यादथवा लोकमंगलम्।
वर्णनीयं प्रकल्प्यापि कथांशीकृत्य सादरम्।।
सर्गाः अष्टाधिकाः सन्तु कथाविस्तृति सम्मताः।
अष्टत्रिगुणतां यावत्सर्गसंख्या प्रथीयसी।।
नोद्वेगः कठिना कार्यः पाठकानां रसात्मनाम्।
सर्गसंख्यादि विस्तारैर्वर्णनैर्वाऽनपेक्षितः।।
लोकवृत्तं न हातव्यः मूल वृत्तापकारकम्।
लोकचित्रण गर्भं हि महाकाव्यं महीयते।।
त्रयाणां पुरुषार्थानां कश्चिदेको भवेद्ध्रुवम्।
महाकाव्यं फलं रम्यं धर्मकामार्थसम्मतम्।।
श्रृंगारवीर शान्तानां कश्चिदन्यतमो रसः।
सयत्नमङ्गीकर्त्तव्य कविना प्रतिभावता।।
छन्दोऽलंकार संदर्भा भूरिवैविध्यमण्डिताः।
महाकाव्ये प्रयोक्तव्याः भावुकानां प्रतुष्टये।।
लोकोत्तरगुणादर्शाः पुरुषो नायकः भवेत्।
महीयसी पुरन्ध्री वा नाऽत्र कार्या विचारणा।।

कथावैशिष्ट्यमालक्ष्य समज्ञां नायकस्य वा।
करणीयं महाकाव्यस्याभिधानं यशस्करम्।।
प्रतिष्ठापयितुं मूलं महाकाव्ये स्वयं कविः।
आचार्य प्रतिभो नूनं यदि वा भवति क्षमः।।[1]

लोकवन्द्य नायक पर आश्रित, विश्वबन्धुत्व को प्रख्यापित करने वाला तथा विश्वमंगल की स्थापना करने वाला सर्गबन्ध महाकाव्य होता है। उस महाकाव्य में नायक (कोई) देवता हो, प्रजावत्सल नरपति हो अथवा समुज्ज्वल चरित वाला तथा सौम्य आचरण वाला कोई सत्पुरुष। प्रातः, सन्ध्या, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, सूर्योदय, नक्षत्रोदय, वन, उद्यान, नदी, सागर, प्रपात, पर्वत, मेघ, गाँव–गिराँव, आश्रम, नगर, आराम, दुर्ग, सैन्य, रणप्रयाण तथा पुत्रजन्मादि के वृत्तान्त एवं झुग्गी झोपड़ियों की आपबीती, इतिवृत्त के अनुरोध को दृष्टि में रखकर ही वर्णित करना चाहिए, किसी अन्यरूप में नहीं। उनका जबर्दस्ती (अस्वाभाविक) वर्णन करने से न तो (पाठकों को) तृप्ति होगी और नहीं (रचनाकार कवि को) यश प्राप्त होगा। जो (लोक के लिए) कल्याणकारी हो, जो सत्य हो अथवा लोकमंगलकर हो ऐसी घटनाओं को चाहे कल्पना ही क्यों न करनी पड़े, मूलकथा का अंश बनाकर, आदरपूर्वक वर्णित करना चाहिए। सर्ग आठ से अधिक हो (परंतु) कथा–विस्तार के सानुपातिक हों। (मेरी दृष्टि में) आठ का तिगुना अर्थात् चौबीस तक सर्गसंख्या उचित मानी जाएगी (इससे अधिक नहीं)। रसानुभूति के लिए उत्कण्ठित पाठकों का, कवियों द्वारा सर्गसंख्यादि के (अनपेक्षित) विस्तार तथा अप्रासंगिक वर्णनों द्वारा, उद्वेग नहीं किया जाना चाहिए। मूल कथा का उपकार करने वाले लोकवृत्तों का परित्याग नहीं करना चाहिए (वस्तुतः) लोकचित्रण से भरे–पूरे महाकाव्य ही प्रशंसनीय होते हैं। धर्म, अर्थ, काम–इन तीन पुरुषार्थों में से कोई एक निश्चित रूप से महाकाव्य का रमणीय फल (लक्ष्य) होना चाहिए। प्रतिभाशाली कवि द्वारा श्रृंगार, वीर एवं शान्त में से किसी एक को (महाकाव्य का) अंगीरस यत्नपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिए। प्रभूत विविधता से श्रीमण्डित, छन्दों

---

1. अभिराजयशोभूषण–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–66–80

एवं अलंकारों के सन्दर्भ, पाठकों की हार्दिक तुष्टि के लिए महाकाव्य में प्रयुक्त किए जाने चाहिए। लोकोत्तर गुणों एवं उच्च आदर्शों वाला कोई पुरुष नायक होना चाहिए अथवा कोई महीयसी स्त्री भी, इस विषय में विचार नहीं करना चाहिए। कथा की विशेषता को दृष्टि में रखकर अथवा नायक की कीर्ति को महत्त्व देते हुए महाकाव्य का यशस्कर नाम रखना चाहिए। आचार्य स्वप्रतिभा से महाकाव्य में कुछ भी अभिनव प्रतिष्ठित करने में समर्थ होता है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कृत महाकाव्य लक्षण भी दर्शनीय है–

पद्यात्मकं समग्रजीवननिरूपणपरं महाकाव्यम्।
गीतैतिह्यपुराणलोककथा भेदादस्य नानात्वम् इति।।[1]

समग्रजीवन का निरूपण करने वाला पद्यबन्ध महाकाव्य है। गीत, ऐतिह्य, पुराण तथा लोककथा की दृष्टि से उसका वैविध्य संभव है।

रहसबिहारी द्विवेदी जी ने भी महाकाव्य का लक्षण करते हुए कहा है कि–

सर्गवृत्तैश्च बद्धं सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थरम्यं
संवादैश्चोच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रन्थिमुक्तं समृद्धम्।।
पात्रं स्याद्यस्य मुख्यं परमगुणयुतं लोकविख्यातवृत्तं
भव्यं लोकस्वभावं महदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते।।[2]

सर्गों एवं वृत्तों में निबद्ध, सहृदयहृदयाह्लादी शब्दार्थ–समष्टि से रमणीय, संवादों एवं उत्कृष्ट शिल्पों से निरन्तर रसमय, ग्रन्थियुक्त, समृद्ध, लोकविख्यात कथानक वाला, चरित्र–चित्रण की प्रधानता से युक्त, परमगुणयुक्त, भव्य लोकस्वभाव का प्रदर्शक, श्रेष्ठों में भी जो श्रेष्ठ हो, उसे महाकाव्य कहते हैं।

---

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र–डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी–3/1/3
2. नव्यकाव्यतत्वविमर्श–रहस बिहारी द्विवेदी जी, दूर्वा द्वितीयोन्मेष–साहित्यसमीक्षणम्–पृ.सं.–13

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर हम देखते हैं कि आधुनिक आचार्यों ने महाकाव्य में निम्न तत्वों का समावेश किया है–

- नायक लोकवन्द्य/लोकोत्तर गुणों से युक्त होना चाहिए अथवा कोई महीयसी स्त्री।
- सर्गबन्ध/पद्यबन्ध अथवा वृत्तों में निबन्धन होना चाहिए।
- सर्गसंख्या आठ से चौबीस तक होनी चाहिए।
- धर्म, अर्थ अथवा काम में से कोई एक महाकाव्य का रमणीय फल होना चाहिए।
- श्रृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक अंगीरस होना चाहिए।
- विविध छन्द व अलंकारों का प्रयोग होना चाहिए।
- महाकाव्य का नामकरण कथा अथवा नायक की कीर्ति के आधार पर होना चाहिए।
- चरित्र–चित्रण की प्रधानता होनी चाहिए।
- प्रकृति के विविध उपादानों का चित्रण इतिवृत्त के आधार पर होना चाहिए।
- महाकाव्य लोकविख्यात कथानक वाला होना चाहिए।
- आधुनिक काव्यशास्त्रियों ने सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का कोई निर्देश नहीं दिया है।
- आधुनिक कावयशास्त्रियों ने प्रत्येक सर्ग के नामकरण का भी उल्लेख नहीं किया है।
- महाकाव्य संस्कृत में ही निबद्ध हो, यह निर्देश भी आधुनिक काव्यशास्त्रियों नहीं दिया है।

प्राचीन व अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा दिए गए महाकाव्य लक्षणों पर विचार करने के बाद हम पाते हैं कि दोनों ही विचारधाराओं के अनुसार महाकाव्य में निम्नांकित तत्वों का होना अनिवार्य है–

1. महाकाव्य का इतिवृत्त इतिहास प्रधान अथवा किसी सज्जन के चरित्र पर आधारित होना चाहिए।

2. सर्गों में निबन्धन होना चाहिए तथा सर्गों की संख्या आठ से चौबीस तक होनी चाहिए।

3. महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण (त्रिविध में से कोई एक) का निर्वहन किया जाना चाहिए।

4. महाकाव्य में सच्चरित्र वाले किसी नायक या नायिका का वर्णन प्रधान होना चाहिए।

5. शृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अंगी होना चाहिए।

6. विविध छन्दों व अलंकारों का प्रयोग पाठकों की तुष्टि के लिए किया जाना चाहिए एवं सम्पूर्ण सर्ग की रचना एक छन्द में करते हुए सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया जाना चाहिए।

7. लोकचित्रण प्रधान महाकाव्य होना चाहिए।

8. प्रकृति के विविध उपादानों का अवसरानुकूल स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

9. धर्म, अर्थ तथा काम में से कोई एक पुरुषार्थ महाकाव्य के रमणीय फल के रूप में होना चाहिए।

10. महाकाव्य का नामकरण कथा के वैशिष्ट्य अथवा नायक–नायिका के आधार पर होना चाहिए।

विविध आचार्यों द्वारा दिए गए महाकाव्य लक्षणों की कसौटी पर यदि हम 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को परखते हैं तो इसमें सभी लक्षण पूर्णतया घटित दृष्टिगत होते हैं। यह महाकाव्य विषय के वैविध्य एवं विशिष्टता की दृष्टि से रत्नाकर की भाँति विविध काव्य तत्वों से भरा पड़ा है।

2. वस्तुविभाजन –

सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों में से महाकाव्य के इतिवृत्त का विश्लेषण करेंगे–

इतिवृत्त– काव्यशास्त्रीय आचार्यों द्वारा दिए गए महाकाव्य लक्षणानुसार इतिवृत्त इतिहास प्रधान अथवा कविकल्पना पर आधारित लोककल्याणकारी घटनाओं से सम्बन्धित होना चाहिए।

महाकाव्य लक्षण की दृष्टि से 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि महाकवि ने लोकप्रचलित प्राचीन रामायण कथा को महाकाव्य का आधार बनाया है। परन्तु इस प्राचीन कथा में महाकवि ने अपनी प्रतिभा से अनेक परिवर्तन कर विलक्षणता को जन्म दिया है। संस्कृत साहित्य में प्राचीनकाल से लेकर आजतक रामायण को उपजीव्य मानकर विविध ग्रन्थों का प्रणयन रचनाकारों द्वारा किया जा रहा है परन्तु डॉ. मिश्र सम्पूर्ण साहित्य जगत में प्रथम महाकवि हैं जिन्होंने रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन की घटना को अपनी नवीन उद्भावनाओं एवं कल्पनाओं द्वारा नूतन ढंग से सहृदय रसिकों के समक्ष प्रस्तुत कर सीता सहित सम्पूर्ण नारी जाति को समाज में गौरवान्वित किया है।

इतिहास प्रधान इतिवृत्त होते हुए भी महाकवि ने अपनी नवीन कल्पना के पुट द्वारा लक्ष्मण व वसिष्ठ गुरु के समवेत प्रयास से सीता निर्वासन की घटना का अभाव दर्शाते हुए दुःखान्त रामकथा को सुखान्त कर नवीन स्वरूप प्रदान किया है अतः महाकाव्य के इतिवृत्त का मूलाधार रामायण की कथा होने पर भी कवि की उच्च कल्पनाशक्ति के मिश्रण के कारण पूर्णतया इतिहास प्रधान न होकर 'मिश्र' कोटि का है। कथानक पुरातन होने पर भी महाकवि ने उसमें अपनी नव्यनूतन कल्पनाओं द्वारा नवीनता का संचार कर दिया है।

सर्ग व नामकरण –

काव्यशास्त्रीय आचार्यों के महाकाव्य लक्षणानुसार किसी भी महाकाव्य का निबन्धन सर्गों में होना चाहिए व सर्गों की संख्या आठ से लेकर चौबीस तक होनी

चाहिए। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का निबन्धन महाकवि द्वारा इक्कीस सर्गों में किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कथा के अनुसार ही सर्ग का नामकरण भी किया गया है चूँकि सम्पूर्ण महाकाव्य का केन्द्र जानकी जीवन का वर्णन ही है अतः प्रत्येक सर्ग का नामकरण भी जानकी के जीवन की प्रमुख घटनाओं के आधार पर किया गया है यथा लक्ष्मी स्वरूपा जानकी के पृथ्वी पर अवतरण से सम्बन्धित प्रथम सर्ग को '**अवतारः**' संज्ञा दी गई है। जानकी की शैशवकालीन क्रीड़ाओं से परिपूर्ण द्वितीय सर्ग '**शिशुकेलिः**' संज्ञा वाला है। यौवनावस्था में पदार्पण करने वाली वैदेही के मन में राघव विषयक प्रथम अनुराग उत्पन्न होता है अतः सर्ग का नामकरण भी तदनुरूप '**राघवानुरागः**' है। जनक की विलासवनिका में राघव से प्रथम मिलन के कारण ही पंचम सर्ग '**रघुराजसंगम**' नाम वाला है। विवाह से पूर्व ही राघव व सीता के प्रथम मिलन में दोनों के हृदय में एक–दूसरे के प्रति उत्पन्न होने वाले अनुरागवश षष्ठ सर्ग का नाम '**पूर्वरागः**' है। पिनाकभंजन के पश्चात् सीता द्वारा राघव का वर रूप में चयन करने के कारण सप्तम सर्ग '**स्वयंवर**' है। विवाह की सभी विधियों को सम्पन्न करने के बाद ससुराल पक्ष के साथ सीता के विदा होने के वर्णन से सम्बन्धित अष्टम सर्ग '**श्वसुरालयः**' नाम वाला है। अयोध्या पहुँचने पर नववधुओं के स्वागत सत्कार से सम्बन्धित नवम सर्ग '**वध्वाचारः**' है। कैकयी द्वारा वर प्राप्ति के पश्चात् राम–लक्ष्मण सहित सीता का वल्कल वस्त्र धारण कर वन की ओर गमन करने का वर्णन '**वनवासः**' नामक दशम सर्ग में किया गया है। एकादश सर्ग का सम्बन्ध रावण कृत सीता के अपहरण से होने के कारण यह सर्ग '**रावणापहारः**' संज्ञा वाला है। द्वादश सर्ग में रावण द्वारा अपहृत सीता को अशोकवन में पहुँचाने का वर्णन मिलता है अतः यह '**अशोकवनाश्रयः**' नाम वाला सर्ग है। त्रयोदश सर्ग में हनुमान के अशोकवाटिका पहुँचने का वृत्तान्त है अतः सर्ग का नामकरण भी कथा के अनुरूप '**हनुमत्प्राप्तिः**' है। राम–रावण युद्ध व राम द्वारा लंका पर विजय से सम्बन्धित चतुर्दश सर्ग का नाम '**लंकाविजयः**' है। लंकाविजय के पश्चात् अपने चरित्र की शुद्धता हेतु सीता के अग्नि में प्रवेश करने के कारण पंचदश सर्ग की संज्ञा '**अग्निपरीक्षा**' है। षोडश सर्ग में राम के राज्याभिषेक का वर्णन मिलता है अतः सर्ग का नामकरण '**राज्याभिषेकः**' किया गया

है। सीता के चरित्र के विषय में लोगों के मध्य फैलने वाले अपवाद से सम्बन्धित सप्तदश सर्ग **'जनापवादः'** नाम वाला है। लक्ष्मण व गुरु वसिष्ठ के समवेत प्रयास के कारण सीता सम्बन्धित लोकापवाद का निर्णय होता है अतः अष्टादश सर्ग **'अपवादनिर्णयः'** नाम से अभिहित है। सीता का निर्वासन न होने के कारण, राजमहल में ही लवकुश का जन्म होता है अतः ऊनविंश सर्ग **'लवकुशोदयः'** संज्ञक है। राम द्वारा अपने वंश की कीर्ति के विस्तार हेतु किए जाने वाले अश्मेध यज्ञ के कारण विंश सर्ग **'अश्वमेधः'** संज्ञक है। एकविंश सर्ग में लवकुश द्वारा राम की राज्यसभा में सम्पूर्ण रामचरित का संगीतमय, लयबद्ध गायन होने से यह अन्तिम सर्ग 'रामायणगानम्' संज्ञा वाला है।

महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के संक्षिप्त परिचय से ज्ञात होता है कि सभी सर्गों में जानकी के जीवन की विविध घटनाओं को वर्णित करना ही कवि का प्रमुख कर्म रहा है अतः महाकाव्य का नामकरण भी इसी को आधार मानकर (नायिका को आधार मानकर) किया गया है क्योंकि काव्यशास्त्रीय आचार्यों का भी यही मत है कि महाकाव्य का नामकरण कथा के वैशिष्ट्य अथवा नायक/नायिका के आधार पर ही किया जाना चाहिए अतः यहाँ दोनों ही दृष्टियों से महाकाव्य का 'जानकीजीवनम्' नामकरण उपयुक्त ही है।

मंगलाचरण –

कवि ने मंगलाचरण के सन्दर्भ में पारम्परिक प्रक्रिया का निर्वहन न करके तीसरा मार्ग अपनाया है। महाकवि का मत है कि– "औपचारिक मंगलाचरण की आवश्यकता तो सामान्य राजाओं के कथानक में होती है, सीता का पवित्र चरित्र तो स्वयमेव सर्वोत्तम मंगलाचरण है।"[1]

इतिवृत्त के अन्य तत्व –महाकाव्य के लक्षण में काव्यशास्त्रियों ने नगर, समुद्र, पर्वत, ॠतु, सन्ध्या, रात्रि (चन्द्रास्त–सूर्यास्त), चन्द्रोदय–सूर्योदय, उपवनविहार, जलक्रीड़ा,

---

1. त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व–डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, पृ.सं.–317

मधुसेवन तथा संभोग आदि के वर्णन का उल्लेख किया है। काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त इन तत्वों के अनुसार प्रस्तुत महाकाव्य में उपर्युक्त तत्वों का विश्लेषण करेंगे—

ऋतु वर्णन — ऋतु वर्णन प्रसंग में महाकवि ने प्रसंगानुकूल ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं का उत्कृष्ट चित्रण किया है, जो निम्न प्रकार है—

ग्रीष्म ऋतु —प्रथम सर्ग में जनकपुरी में दुर्भिक्ष की भयावहता के चित्रण द्वारा महाकवि ने ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत किया है, यथा—

पुरा विदेहेषु ववर्ष नाभ्रं बहूनि वर्षाणि किल व्यतीयुः
प्रजासु हाहाकृतवेदनोत्थं निकामदुखं प्रमुखीबभूव।
सरांसि शुष्काणि कुलायभूमौ परासवश्चापि विहंगवत्साः।
द्रुमोल्लसद्वृन्तनिकामलग्ना न पल्लवाः प्राणप्रभृतिं प्रयाताः।।[1]

वर्षा ऋतु — द्रुतगति से गर्जित विद्युल्लतारूपी सिंगो वाले बादलों की तुलना महिष शरीर से करते हुए महाकवि ने वर्षाकालीन वर्णन को हमारे समक्ष उपस्थित कर दिया है—

इतस्ततः सैरिभकायपीनाः क्षणप्रभा श्रृंगधृतावलेपाः।
द्रुतं ध्वनन्तस्त्वरितं प्लवन्तोऽसिताम्बरेरेजुरथाम्बुवाहाः।।[2]

वसन्त ऋतु —महाकवि ने होली उत्सव के वर्णन में वसन्त का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। वसन्त ऋतु में होली उत्सव व उसकी प्राकृतिक सुषमा का अनोखा वर्णन महाकवि ने किया है—

यदा जातु वसन्तर्तो फाल्गुन धृतवैभवे
माकन्दमंजरीरम्ये पीतसर्षपमण्डिते।
होलोत्सवः समायातो महद्भिस्संविधानकैः।
नेत्रपथ्यकरं दृश्यं तदा राजकुलोऽभवत्।।[3]

प्रभात वर्णन —महाकवि ने प्रातःकालीन बाल रवि का अत्यन्त मनोहारी चित्रण करते हुए लिखा है कि अंशुमाली भगवान सूर्य के मँजीठी जैसी लालिमा को कुछ—कुछ

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—1/112
2. वही—1/51
3. वही—9/87,88

छोड़कर, आकाशमण्डल में स्थित हो जाने पर विश्वामित्र जनक के पुत्र के साथ यज्ञदर्शनार्थ प्रस्थित हुए–

अथांशुमालिन्यपहाय किंचिन्मांजिष्ठरागं नभसि प्ररूढे।
विदेहराजस्य सुतेन सार्धं मुनिः प्रतस्थे मखदर्शनाय।।[1]

वनभूमि –महाकवि ने महाकाव्य में वन प्रदेश के भी सुन्दर चित्र उकेरे हैं। राघव के साथ जनशून्य वन को भी राजमहल से सुन्दर बताती हुई सीता पशु–पक्षियों के गीतों, नृत्यों एवं पर्वतों की गिरती जलधाराओं को ही नृत्य, गीत एवं वाद्य इन तीनों का समवेत मानती है, यथा–

हंसकोकिल कीरचातक गीताकाभिर्नेत्रसौख्यकरैमयूरकपोतनृत्यैः।
अद्रिशृंग पतज्जलाहततंत्रवाद्यैः किन्न मे सुलभं वनेऽपि सुखम् त्रयाणाम्।।[2]

वन प्रदेश का यह वर्णन महाकवि के वन्य प्रेम का सूचक है।

तपोवन व आश्रम –प्रथम सर्ग में महाकवि ने यज्ञ से उठे हुए धूमबिम्ब से घिरे हुए तथा जलते हुए पुरोडाश से सुरभित वायु वाले तपोवन में स्थित विश्वामित्र आश्रम का सुन्दर वर्णन किया है, यथा–

मखोत्थधूमावलिसम्परीतं ज्वलत्पुरोडाशलसत्समीरम्।
विलोलखेलोपनतप्रबन्धैर्महर्षिभिश्चार्थितयोगचर्यम्।।[3]

विश्वामित्र का आश्रम पलाशों से निर्मित पर्णशाला के रूप में था जिसके चारों ओर शोभायमान मौलसिरी वृक्षों के थाले थे। वह चम्पे की झाड़ से बने गोपुरों तथा हवादार लता वातायनों से श्रीमण्डित था, यथा–

स्फुरत्पलाशावृतपर्णशालं ह्युपान्तचञ्चवद्वकुलालवालम्।
विमण्डितं केसरगोपुरेण प्रवातयोग्यैर्व्रततीगवाक्षै।।[1]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/20
2. वही–11/33
3. वही–1/12

पर्वत – महाकवि ने महाकाव्य में विविध पर्वतों का भी अवसरानुकूल सुन्दर वर्णन किया है। महाकाव्य में वर्णित पर्वत राम व सीता के परम सहयोगी हैं। वनवासकाल में सियाराम के आश्रयस्थल कामदशिखर का वर्णन करते हुए महाकवि ने उसे प्रकृति से प्रेम रखने वाली मैथिली के लिए परम आह्लादकारी बताया है यथा–

दुष्प्रवेशं लतागृहकुंजरम्यं पुष्पगन्ध भारान्वितं घनसारशीतम्।
पक्षिभिर्मृदुकूजितैः पशुभिश्च नद्धं मैथिलीं प्रकृति प्रियां विपुलं ननन्द।।[2]

समुद्र –महाकवि ने समुद्र का भी अत्यन्त आकर्षक वर्णन किया है । समुद्र में उन्मत्त प्राणी का चित्रण करते हुए लिखा है कि–

झषमकरभुजंग ग्राहनक्रप्रविद्धं प्रहसदिव निकामं शुभ्रडिण्डीरपुंजैः।
लुठदिव चलवीचिक्षोभवेगात्प्रमत्तं जलधिविकलरूपं रूपय प्रेयसीदम्।।[3]

नदी –महाकवि कृत नदी वर्णन भी दर्शनीय है जहाँ राजहंसी व मयूरी के आरोप–प्रत्यारोप द्वारा कवि ने चिरकालीन वियोगजन्य खेद को समाप्त कर मिलने वाली गंगा व यमुना का मनोहारी वर्णन किया है–

अमृतधवलतोया राजहंसीव गंगाशबलतनु मयूरी सन्निभा भानुकन्या।
सरभसमिह बद्ध्वा देवि! गाढोपगूढं चिरविरतिजखेदं साधुरिक्तः प्रगाढम्।।[4]

नद –नद वर्णन के अन्तर्गत महाकवि द्वारा किया गया पम्पा झील का वर्णन दर्शनीय है। पम्पाझील के प्रत्येक भ्रमर में धीरोद्धत नायक व प्रत्येक कमलिनी में मानिनी नायिका की कल्पना करते हुए महाकवि ने अत्यन्त शृंगारिक वर्णन प्रस्तुत किया है–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/15
2. वही–11/05
3. वही–16/21
4. वही–16/45

मुकुरविमलनीरा स्नानसोपानतीरा ऋषिमुनिकपियूथे सानुकम्पा नु पम्पा।
प्रतिमधुपमुपेतं यत्र धीरोद्धत्वं प्रतिनलिनि च रूदामानिनीमानचर्चा।।[1]

नगर – नगर वर्णन प्रसंग में महाकवि ने अयोध्यापुरी व मिथिलापुरी की भव्यता का विशद वर्णन किया है। एक पद्य यहाँ दर्शनीय है जिसमें महाकवि ने अयोध्यापुरी को भोगावती, अमरावती व अलकापुरी से भी श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है, यथा–

भोगवती न नागानां द्युसदां नामरावती।
नालका राजराजस्याप्ययोध्यातुल्यतांगता।।[2]

उपवन – महाकवि ने महाराज जनक की विलास वनिका के वर्णन में उपवन के सुन्दर दृश्य वर्णित किए हैं। एक पद्य यहाँ दर्शनीय है–

अवनीपवनीमश्यतां धृतमाकन्दकपुष्पशाटिकाम्।
रतिलम्पटरोदरैर्विटैरनुयातां रजसा विभूषिताम्।।[3]

सेना – महाकाव्य में मिथिलाप्रस्थान, राम–रावणयुद्ध आदि अनेक अवसरों पर हाथी, घोड़े, ऊँट, बाण, धनुष, तरकस, ढाल आदि से सुसज्जित सैन्य बल का वर्णन मिलता है। एक पद्य संदर्शनीय है जिसमें महाकवि ने विविध शस्त्रों से सुसज्जित कौसलनरेश की सेना का वर्णन किया है, यथा–

पताकियाष्टीकधनुर्धरा वा पुरोगनैस्त्रिंशिककाण्डवन्तः।
पदातिपारश्वधिकायुधीया उरश्छदच्छन्नसमग्रकायाः।।
कलम्बकोदण्डनिषंगचर्म प्रकृष्टशीर्षण्यविभूषितांगाः।
सहस्रिणस्सैन्यचराश्च जैत्राः पुरो ययुर्नर्मवचोऽनुलीनाः।।[4]

संग्राम –सम्पूर्ण चतुर्दश सर्ग में महाकवि ने संग्राम का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। एक पद्य यहाँ दर्शनीय है जिसमें महाकवि ने राम व रावण के संग्राम का भयावह चित्रण करते हुए लिखा है कि–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–16/34
2. वही–9/9
3. वही–5/49
4. वही–8/12, 13

प्रवृत्तमुदयाद्रेवे प्रववृधे रणं धस्मरं

ह्यवेदि न गतागतं दिवसनैशयोः कैरपि।।[1]

विवाह – महाकाव्य में राम–सीता विवाह का वर्णन महाकवि द्वारा किया गया है। सम्पूर्ण अष्टम सर्ग विवाह वर्णन से ओत–प्रोत है।

लोकाचार – 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में विविध अवसरों पर प्रसंगानुकूल अनेक लोकाचारों का वर्णन महाकवि ने किया है। महाकाव्य का सप्तम, अष्टम, नवम व एकोनविंश सर्ग विविध लोकाचारों के सुन्दर चित्रण से ओतप्रोत है।

पुत्रजन्म –महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में लव–कुश जन्म का प्रसंग प्राप्त होता है, यथा–

अथ यथासमयं धरणीसुता रूचिरशारदसौम्यनिशीथके।

प्रथितवंशधरौ यमजौ सुतौ रघुपतिप्रतिमौ समजीजनत्।।[2]

इतिवृत्त के अन्य तत्वों के विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि ने महाकाव्य लक्षण में काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट नदी, नद, पर्वत, सागर, ऋतु, पुत्रजन्म आदि का प्रसंगानुकूल सुन्दर वर्णन किया है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–14 / 82
2. वही–19 / 1

3. पात्रों का चरित्र चित्रण –

नेता –प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परानुसार किसी भी महाकाव्य का नामकरण स्त्री पात्र के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, किन्तु आधुनिक मत इससे भिन्न ही है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों में स्वयं अभिराज जी ने किसी महीयसी स्त्री के भी महाकाव्य में नेता होने का मत प्रकट किया है। जैसाकि इस महाकाव्य के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका नामकरण नायिका 'जानकी' के आधार पर किया गया है क्योंकि जानकी के चरित्र–चित्रण द्वारा आधुनिक सशक्त भारतीय नारी के चरित्र को पाठकों के समक्ष उकेरना ही महाकवि का लक्ष्य रहा है। महाकवि ने सम्पूर्ण महाकाव्य का ताना–बाना जानकी जीवन के ऊपर ही बुना है अतः समस्त घटनाएँ जानकी चरित के इर्द–गिर्द घूमती हैं। महाकाव्य का सूक्ष्माध्ययन करने के पश्चात ज्ञात होता है कि यहाँ महाकवि ने प्रथम सर्ग से लेकर अन्तिम सर्ग तक जानकी के विविध रूपों का वर्णन किया है।

जानकी के जीवन में वे सभी गुण समाविष्ट हैं जो किसी भी काव्य के नेता (नायक/नायिका) में होने चाहिए।

सीता – आदिकाल से ही भारतीय परम्परा नारी को आदिशक्ति का अवतार मानती आई है, 'जानकीजीवनम्' में भी अनेकशः जानकी के दिव्य तथा परमेश्वरी रूप को प्रतिपादित किया गया है–

'अवेहि राजन्नपायदीप्तिं श्रियन्नु साक्षाद्गृहमागतान्ते।।[1]

सीता को अन्यत्र भी लक्ष्मी का अवतार बताते हुए महाकवि ने लिखा है–

या श्रीश्चिरन्तनसखी कमलालयाख्या
नारायणस्य नवाम्बुधरैकधाम्नः।
त्रेतायुगे जनकवेश्मनि सैव जाता
रामप्रिया दशमुखान्वयनाशनाय।।[2]

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/46
2. वही–4/1

अभिराज जी की जानकी में आदर्श कन्या, आदर्श पत्नी, आदर्श गृहस्वामिनी, परम महिमामयी राजमहिषी एवं परम लावण्यमयी रमणी के समस्त गुण समाविष्ट हैं। अपने शुभ लक्षणों से वैदेही माता–पिता व अन्य कुटुम्बिजनों का मनोविनोद करने वाली, गृहकार्य में दक्ष कन्या हैं, यह महाकवि का अभिनव प्रयोग ही है कि सियाचरित को इतनी विशदता के साथ निरूपित किया है।

वैदेही धीर–गम्भीर तथा लज्जाशीला होने के साथ–साथ मितभाषिणी नायिका हैं, उनका हृदय स्वजनों के प्रति स्नेहसिक्त है। विदाई वेला में मातृ–पितृ प्रेम से परिपूर्ण हृदया सीता का कारुणिक विलाप उनके प्रगाढ़ स्नेह व समर्पण को सूचित करता है–

कथं न दैवेन हताऽस्मि बाल्ये भणाम्ब! कस्मादिह जीविताऽस्मि।
पृथङ् न कार्या तव नन्दिनीयं गृहान्तरे जीवति नैव सीता।।[1]

बाल्यावस्था में प्रस्फुटित प्रेम व समर्पण की भावना ही तरुणावस्था में परिपक्व होकर, विवाहोपरान्त सीता को आदर्श पत्नी के पद पर प्रतिष्ठित करती है। वे आदर्श पत्नी हैं, अनन्यचित्त से श्रीराम की आराधना करने वाली हैं, उनके हृदय का प्रेम श्रीराम के चरणों में समर्पित था।

गम्भीरता के साथ–साथ उनके चरित्र की विशेषता है कि वे मनोविनोद प्रिया एवं वाक्पटु हैं उनके इसी स्वभाव के कारण राजमहल का वातावरण आह्लादपूर्ण रहता था।

वनवास के समय महाकवि ने सीता को सर्वसुख परिहार्या, पतिपरायणा व अतिथि सत्कार की भावना से परिपूर्ण दिखलाया है। कोल–किरातों की स्त्रियों को कहे गए वचनों से उनका श्रीराम के प्रति अनन्य अनुराग प्रकट होता है जो उनके पतिपरायणता का सूचक है।[2]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8 / 57
2. वही–11 / 30

पतिपरायणा सिया को महाकवि ने आशंकिता नायिका के रूप में भी चित्रित किया है। वे कभी स्वप्न में तो कभी अन्य किसी कारणवश भयार्त हो उठती है।[1] वनवासकाल में पति को लेकर शंकित सीता अपने भ्रातृ सदृश देवर पर भी आक्षेप कर देती है जो उनकी स्त्रीयोचित भीरू बुद्धि का परिचायक है, जो उनके लिए आगे विपत्ति का कारण बनता है परन्तु इस आचरण के पीछे भी उनका पातिव्रत्य धर्म ही मूल कारण है।

पति विषयक चिन्ता से विषण्ण मनोवृत्ति वाली होने पर भी द्वार पर आए हुए यतिवेषधारी रावण को ससम्मान आतिथ्य सामग्री अर्पित करना, सीता के आतिथ्य प्रेम का सूचक है–

स्वागतं यतिवर्य! राघवगेहिनी त्वां मैथिलीं प्रणम्याम्यहं महितं तपोभिः।
कानने किमु लभ्यतेऽशनपेयजातं यत्तथापि समर्पितं तदिदं गृह्यण।।[2]

रावण द्वारा विविध प्रलोभनों से अपनी ओर आकृष्ट करने पर[3] सीता द्वारा किया गया प्रतीकार उनके चरित्र की निडरता एवं उदात्तता का परिचायक है–

..................श्रृणु भो दशास्य!
धिक् छलं हतपौरुषं विबुधाधिपत्यं धिक् च ते मलिनायितं हृदयं निकृष्टं।।
इन्द्रिय न जितं किमिन्द्रजयेन तत्ते हत्तमो न गतं ततस्तरणोशिता का?
निष्कले त्वयि का नु चन्द्रकला समीक्षा वर्जिता मरुतात्वयैव धृताऽस्ति वात्मा।।[4]

सीता को महाकवि ने पश्चाताप व क्षोभ की भावना से भी परिपूर्ण बताया है–

आत्मपापप्रधर्षिता ममैव दोषः पूर्वजन्मकृतं भवेन्ननु पातकम्मे।
वत्स लक्ष्मण सौम्य मूढ़धिया भवन्तं न्वक्षिपं यदियं तु तस्य फलं विषाक्तं।।[5]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/77
2. वही–11/88
3. वही–11/96
4. वही–11/99
5. वही–11/110

सीता को महाकवि ने एक ओर एकमात्र राम में अनुरक्त पतिव्रता तथा राममिलन की आशा में ही अपने प्राणों का अवलम्बन करने वाली नायिका के रूप में चित्रित किया है दूसरी ओर उनके चरित्र की उदात्तता व निर्भीकता का चित्रण कर महाकवि ने आधुनिक भारतीय नारी को सम्बल प्रदान करते हुए सीता चरित को नवीन स्वरूप प्रदान किया है। अपने पति द्वारा उपेक्षित होने पर उनका स्वाभिमान जाग उठता है एवं वे स्वप्रतिष्ठा हेतु क्रोधित होकर अपने पति से भी प्रतिवाद करती हैं—

अथ प्रमृज्याश्रुततिं विदेहजा प्रवृद्धमन्युर्निजगाद राघवम्।
प्रभोऽद्य विज्ञातमिदं मयापि यन्न मे पतिस्त्वं न च वल्लभाऽस्मि ते।।[1]

स्वाभिमान की रक्षार्थ वैदेही राम को रावण तुल्य एवं उससे भी भयावह बताते हुए नारी को भोग्या समझने वाले पुरुषत्व की गर्हणा करती है, जो उनके चरित्र को उदात्तता प्रदान करता है—

स्वकांत संसर्गं सुख प्रहारिणावुभौ मदर्थं किल तुल्यविक्रमौ।
पुरन्ध्रिपण्यक्रयविक्रमार्थिनौ निमज्जितावात्मनि रामरावणौ।।[2]

सीता की अग्निपरीक्षा द्वारा महाकवि ने पुनः नारी के दिव्य स्वरूप का चित्रांकन करते हुए यह सिद्ध किया है कि भारतीय समाज में नारी का पद महनीय है, कवि ने सीता को पट्टमहिषी रूप में स्थापित कर प्रत्येक भारतीय नारी की गरिमा को उच्च पद पर आसीन किया है।

सीता चरित्र के द्वारा महाकवि ने साधुता, शीलता, सच्चरित्रता, गुणवत्ता, ऋजुता, पातिव्रत्य आदि गुण स्तबकों को पाठकों के समक्ष उकेरा है। कवि नारी के निर्भया एवं वीरांगना स्वरूप के समुपासक हैं। महाकवि कहीं भी नारी जीवन में दुर्बलता को स्थान नहीं देना चाहते फलतः उन्होंने जानकी के माध्यम से भारतीय संस्कृति में नारी गरिमा को नूतन आयाम प्रदान करते हुए सीता को परम तेजस्विनी, स्वाभिमानिनी नायिका के रूप में चित्रित किया है।

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—15 / 38
2. वही—15 / 50

राम –'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का चरित्र–चित्रण की दृष्टि से गहनावलोकन करने के पश्चात् परिलक्षित होता है कि नायिका सीता के बाद दशरथनन्दन 'राम' का चरित्र–चित्रण महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण महाकाव्य में नायिका सीता के साथ–साथ राम का भी विशद वर्णन प्राप्त होता है। महाकवि ने राम के चरित्र को कहीं भी उपेक्षित नहीं किया है, सीता के समान ही राम को भी विष्णु का अवतार बताया गया है–

रामोऽभिरामचरितो मदनांगयष्टि–
स्त्वाजानुबाहुररविन्दविलोचनोऽसौ।
साक्षात्स्वयं निखिललोकपतिर्मुरारि–
र्वंशे रघोरवततार किलाध्ययोध्यम्।।[1]

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में 'राम' को लोकनायक माना गया है अतः उनकी सम्पूर्ण क्रियाएँ एवं व्यवहार लोकानुरंजनार्थ ही है। रामचरित में महाकवि ने सेवा तथा समर्पण, श्रद्धा तथा विनम्रता, त्याग तथा प्रेम, न्याय एवं धीरता आदि अनेक गुणों का समावेश किया है जो प्रजानुरंजन से अनुप्राणित हैं।

वंश परम्परा रक्षार्थ सहर्ष चौदह वर्ष का वनवास स्वीकारना राम के जीवन की उदात्तता एवं महानता का परिचायक है जो उन्हें परम पितृभक्त के पद पर प्रतिष्ठित करता है। राम का जीवन आधुनिक नवीन पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है, उनके चरित्र में विद्यमान पितृभक्ति व गुरुभक्ति रूपी महान गुण उन्हें आदर्श पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

सीतापति राघव स्वभाव से गम्भीर एवं अलौकिक शक्ति के स्वामी है। उनके हृदय में जहाँ एक ओर प्रसून सी कोमलता है वहीं दूसरी ओर पाषाण सी कठोरता भी है। अनेक अवसरों पर सीता के मन को अपनी विनोदप्रिय बातों से उल्लसित करने वाले राघव अवसर आने पर कठोर तटस्थता का परिचय देते हुए लोकहितार्थ उनका परित्याग कर देते हैं–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/2

रणान्तमासीत्तव मे समन्वितिर्न मेऽधुना किंचिदपि प्रयोजनम्।
प्रयाहि तत्सम्प्रति यत्र कुत्रचित् इहैव वा तिष्ठ मया न रोत्स्ये।।[1]

राम आदर्श लोकतंत्र के संवाहक हैं, प्रजानुरंजन उनका परम धर्म है। उन्हें कहीं भी शंकित नायक के रूप में कवि ने चित्रित नहीं किया है, उन्हें सीता के चरित्र पर कहीं भी अविश्वास या सन्देह नहीं था, एकमात्र अपने लोकानुरंजन के लिए ही उन्होंने निर्दोष वैदेही का परित्याग किया। वे स्वयं अपने निष्ठुर एवं तटस्थ व्यवहार का कारण समाज को बताते हुए दुखित होकर कहते हैं–

जानाम्यात्मनिलीन सौम्यहृदयां चारित्र्यशुद्धां प्रियां
पूतां राममयीमनन्यशरणां स्वप्नेऽपि नोऽन्याश्रयाम्।
आशंकेत ममापि चारू चरितं लावण्य लालाटिकं
लोकोऽयं कृपणस्ततो व्यपसितं कृत्यम्मया निष्ठुरम्।।[2]

महाकाव्य में ऐसे अनेक स्थल हैं जो ये प्रमाणित करते हैं कि राम–सीता के मध्य का प्रेम आदर्श दाम्पत्य का उदाहरण है। दुर्मुख से सीता विषयक अपवाद को सुनकर एवं गर्भिणी सीता के पुनः संभावित वन प्रस्थान को सोचकर राम का हृदय उद्विग्न हो उठता है, वे दुःखी हो जाते हैं। महाकवि ने सामान्य जन के समान ही राम में उद्विग्नता, दुःख, करुणा, स्नेह आदि की भावनाओं का सफल चित्रांकन किया है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि 'जानकीजीवनम्' में दशरथनन्दन राम का लोकधर्मी स्वरूप केन्द्र है। उनकी सम्पूर्ण मानुषी क्रियाएँ लोकहितार्थ ही प्रवर्तित हुई हैं। वे दया व धर्म की प्रतिमूर्ति हैं। आदर्श राजा के रूप में उनका चरित्र पूर्णतया सफल रहा है। उनका चरित्र आधुनिक पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है। अपने विविध गुण स्तबकों के कारण उनका व्यक्तित्व निष्कलंकित एवं किसी भी तरह के अपवाद से रहित है। त्रिकालबाधित श्रीराम का चरित, समर्चनीय था, समर्चनीय है एवं समर्चनीय रहेगा।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/31
2. वही–15/86

रावण –'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में 'रावण' को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। वह अपनी अप्रतिम शक्ति एवं अगाध पाण्डित्य के कारण अहंकारी हो जाता है और यह अहंकार ही उसकी पराजय एवं मृत्यु का कारण बनता है।

क्रोध रावण का मुख्य दुर्गुण है, शूर्पणखा मुख से राम की प्रशंसा सुनकर वह अत्यधिक क्रोधित हो उठता है एवं विवेकहीनता का परिचय देते हुए सीतापहरण की योजना बनाता है।

रावण कामान्ध होकर सीतापहरण रूपी षडयन्त्र को रचता है। पतिपरायणा सीता से अनेकशः कामयाचना करता हुआ तिरस्कृत होता है, जो एक राजा व आदर्श पति की दृष्टि से किसी भी तरह समीचीन प्रतीत नहीं होता।

रावण छल प्रवंचना में कुशल है, कामविवश हो छद्मवेश धारण कर धोखे से मुग्धा सीता का अपहरण करता है। आत्मप्रशंसा उसका मुख्य गुण है। सीता से अनेकविध प्रणयनिवेदन करते हुए वह अतिशयोक्तिपूर्ण कथन करता हुआ स्वप्रशंसा करता है–

हन्त राजसुते! क्व ते लवलीलताभं कोमलं वपुरीदृशं च भूमिशय्या?
पल्वलेषु विचिन्तवतीं किल राजहंसींदर्दुरान् परिलक्ष्य में ह्रदयं प्रभिन्नं।।[1]

कामवासना एवं अहंकार के वशीभूत हो वह स्वजनों (विभीषण आदि) का भी तिरस्कार कर देता है। अपने से बड़ों की अवमानना करना उसके चरित्र की दुर्बलता थी यही कारण था कि उसने अपनी माता व मातामह की अवहेलना की एवं विनाश को प्राप्त किया।

अहंकार, क्रोध, कामान्धता, छल–प्रवंचना, आत्मप्रशंसा, विवेकहीनता आदि अनेक चारित्रिक दुर्बलताओं के परिणामस्वरूप ही रावण जैसा महान पंडित एवं अप्रतिम शक्तिमान व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त हुआ।

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/42

'जानकीजीवनम्' में राम, सीता के अतिरिक्त अन्य मुख्य पात्र हैं लक्ष्मण एवं वसिष्ठ जिनके माध्यम से रामायण की प्राचीन कथा को महाकवि ने नवीन स्वरूप प्रदान किया है।

लक्ष्मण– लक्ष्मण के चरित्र की प्रासंगिता वर्तमान समय में बढ़ रहे भ्रातृत्व वैमनस्य के संदर्भ में सर्वाधिक है। लक्ष्मण में उत्कृष्ट भ्रातृत्व स्नेह के साथ–साथ आदर्श देवर के उच्च गुणों का सन्निवेश है। रामायण के लक्ष्मण रामभक्त हैं। बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना वे अपना परम धर्म मानते हैं परन्तु यहाँ महाकवि ने लक्ष्मण के चरित्र में नवीन गुणों का संचार किया है। वे राम के आज्ञापालक एवं भक्त तो हैं परन्तु यहाँ वे माँ सदृश सीता के परमहितैषी देवर भी हैं।

'जानकीजीवनम्' के लक्ष्मण राम के साथ–साथ सीता के भी परम भक्त हैं। वे वीर, दृढ़निश्चयी, स्थिर मनोवृत्ति वाले, एवं दक्ष हैं जो हर परिस्थिति में विवेकपूर्ण आचरण करने वाले हैं।

महाकाव्य में लक्ष्मण के नवीन स्वरूप के भी दर्शन होते हैं, यहाँ वे हास–परिहास से परिपूर्ण मनोविनोदप्रिय व्यवहार करने वाले हैं। अन्तःपुर में अपनी भाभियों के साथ किए गए हास–परिहास युक्त व्यवहार में उनके इस रूप के दर्शन होते हैं –

यदा च वामनीभूय पृष्ठतो नीरवैः पदैः।
समाक्रम्य स सौमित्रिर्भ्रातृजायां प्रगृह्य च।।
कपोलमण्डले गौरे कज्जलं कर्दमं मसीम्।
लिम्पती स्म भृशं नृत्यन् चर्चरीं कामिनी प्रियां।।
तदान्तः पुरसीमासु महोल्लासमहोदधिः।
रिंगदुन्मदकल्लोलो निर्भरं कोऽप्यजायत।।[1]

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/90–92

राम के समान ही अपनी भ्रातृजाया की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले, वचनपालक लक्ष्मण का शान्त व परम विवेकी रूप महाकवि ने चित्रित किया है जो कवि का सर्वथा नूतन प्रयोग ही है। एक स्थान पर कवि ने लक्ष्मण के विषय में कहा है कि– **लक्ष्मणो विनतैः स्वरर्निजगाद शान्तो देवि!**[1]

शान्त स्वरूप के अतिरिक्त महाकवि ने लक्ष्मण का अवसरानुकूल क्रोधित व रोष से परिपूर्ण रूप भी चित्रित किया है। वैदेही विषयक अपवाद को सुनकर उनका हृदय क्रोध से भर उठता है, वे आवेश में आकर कहते हैं कि–

सत्यमेव वदामि देवेमां पुरीमित्वरैर्निमिषे शरैर्धक्ष्याम्यहम्।।
मज्जितस्सरयूजले पश्चात्स्वयमात्मदेहमपि प्रभो! नंक्षाम्यमुम्।।[2]

प्रतिरोष में भी लखन अपना धैर्य नहीं खोते व अवसरोचित धैर्यपूर्वक विवेकपूर्ण आचरण करते हुए, वसिष्ठ गुरु के सम्मुख अपनी वेदना को प्रकट करके समस्या हल हेतु उचित मार्गदर्शन की प्रार्थना करते हैं। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि ने लक्ष्मण के संयत आचरण व विवेकी व्यवहार के माध्यम से कथा को पूर्णतया नवीन स्वरूप प्रदान किया है अतः इस महाकाव्य में लक्ष्मण का चरित्र वर्णनीय व प्रशंसनीय है।

वसिष्ठ – रामकथा को नूतन आयाम प्रदान करने की दिशा में महाकवि ने वसिष्ठ चरित्र को सर्वथा नवीन रूप में वर्णित किया है। वे रघुवंश के परम हितैषी, परम सलाहकार, परम गुरु हैं। महान तपस्वी गुरु वसिष्ठ अपनी तर्कपूर्ण बुद्धि से जटिल समस्या का भी समाधान करने वाले हैं। वे लोकतंत्र के परमज्ञाता व सर्वहितों की रक्षा करने वाले मुनि हैं।[3]

मैथिली की रक्षार्थ वे रघुवंश के कुलगुरु पद का भी त्याग करने हेतु उद्यत हो जाते हैं। वे महान निर्णायक एवं भूत–भविष्य के वेत्ता हैं। उनके विवेकपूर्ण निर्णय से ही कवि ने प्रत्येक नारी की गरिमा की रक्षा करते हुए उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है। तत्ववेत्ता वसिष्ठ के ही त्वरित निर्णय से जानकी संबन्धी लोकापवाद का उचित समाधान प्रस्तुत होता है फलतः सीता का निर्वासन न होकर पुनः राजमहिषी पद पर उसकी स्थापना होती है , जो संस्कृत साहित्य में अभिनव प्रयोग ही है।

---

1. जानकीजीवनम्, डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/79
2. वही–17/42
3. वही–18/44, 82

4. रस –

काव्य उस विशाल वटवृक्ष की भाँति है, जिसकी शाखा प्रशाखाएँ शब्द, अर्थ, गुण, दोष, रीति, छन्द और अलंकारादि हैं तथा जिसकी प्राणदायिनी शक्ति 'रस' है। गुणदोषादि काव्य के बाह्य सौन्दर्योपकरण हैं और उनको संशिष्ट कर सचेतन कर देना रस का कार्य है।[1] यही कारण है कि भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धान्त, सभी सिद्धान्तों में अग्रणी है।

व्याकरणात्मक रूप से 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति है 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।'

'रस' शब्द की काव्यानुरूप व्याख्या सर्वप्रथम नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि द्वारा की गई है, उन्होंने रस के विषय में कहा है कि–**"नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।"**[2]

तथा– यथा बीजात् भवेत् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसा सर्वे तेषु भावा व्यवस्थिता।।[3]

भरतमुनि ने नाट्य के परिप्रेक्ष्य में रस को प्रमुखता दी है जबकि अलंकारशास्त्र की परम्परा में रस की मान्यता बहुत बाद में स्वीकृत हुई। भामह, दण्डी, उद्भट आदि प्राचीन आलंकारिक भरत सम्मत रस से परिचित थे, ऐसा नहीं लगता है। सर्वप्रथम ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने 'ध्वनि' की उद्भावना कर रसध्वनि को प्रथम तथा सभी कवि कर्मों में 'आत्मा' सिद्ध किया है। रसध्वनि के मूल में भरतमुनि का सुप्रसिद्ध रससूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' ही था। भरत रससूत्र की चार व्याख्याएँ मम्मट ने काव्यप्रकाश में उद्धृत की हैं– उत्पत्ति, अनुमिति, भुक्ति और अभिव्यक्ति। इनमें से अभिनवगुप्त के मत को मम्मट ने सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित किया है।

रस के सन्दर्भ में सर्वाधिक मान्य अभिनवगुप्त के मत का उल्लेख करना समीचीन होगा। रसास्वाद की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए अभिनव गुप्त का कहना है कि लौकिक अनुभवों के आधार पर ही मनुष्य काव्य जगत में रसास्वादन करता है।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गौरेला–19 अध्याय, पृ.सं.–832
2. नाट्यशास्त्र–भरमुनि–6/71
3. वही–6/303

परन्तु काव्य का लोक, लौकिक लोक से भिन्न होने के कारण उसमें कारण, कार्य, सहकारी के स्थान पर विभाव, अनुभाव व व्यभिचारी भाव क्रियाशील हो जाते हैं। लौकिक भूमि ही अलौकिक रस की भूमिका है।

रस चूँकि व्यंग्य होता है अतः अभिधा से उसका साक्षात् अवबोध नहीं होता है। विभाव और अनुभाव ही स्थायी भाव का संकेत कर सकते हैं और उन्हीं से सहृदयों के हृदय में रस की अभिव्यक्ति आस्वाद के रूप में होती है। व्यभिचारी भाव भी व्यंजित होकर उसकी सहायता करते हैं। रस की अभिव्यक्ति के विषय में यही ध्वनिवादी दृष्टि है।

किसी भी कृति में रस का निरूपण करते समय हमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का अन्वेषण करना पड़ता है। 'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि ने आठ या नव रसों के विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का समग्र विवरण इन रसों के प्रसंग में किया है। इसी को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य में रस की स्थिति की विवेचना करेंगे।

(i) महाकाव्य में प्रयुक्त रस का विवेचन –

आलंकारिक आचार्यों का मत है कि महाकाव्य में श्रृंगार, वीर एवं शान्त में से एक V›hj l होना चाहिए तदनुरूप ही 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में शान्त रस प्रधान है। यद्यपि वैदेही जीवन की विविध अवस्थाओं के वर्णन में न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी रसों का समावेश दिखलाई पड़ता है। परन्तु महाकवि ने रामायण में वर्णित सीता निर्वासन के अनुत्तरित प्रश्न का समाधान करके प्रत्येक पाठक के मन एवं मस्तिष्क को आह्लाद से भर दिया है। महाकवि कृत समाधान परमप्रीति, परमतोष तथा परमानन्द दायक है अतः शम स्थायी भाव वाला शान्त रस स्वयमेव ही महाकाव्य का अ›ीरस है।

अ›ीरस शान्त –'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर शान्त रस की अभिव्यंजना की गई है। अठारहवें सर्ग में महाकवि कृत शान्त रस की सृष्टि दर्शनीय

है जहाँ धोबी अनेक पश्चाताप युक्त वचनों द्वारा ग्लानि का अनुभव करते हुए अपने जीवन का अन्त करना चाहता है, यथा–

अत्रैव ममाद्य हिनस्तु देवः प्रकिल्विषं पापिनमात्तदोषम्।
जहान्यहं वा स्वयमेव नाथ! प्राणान् मदीयांस्त्वयि सम्मुखीने।।[1]

प्रस्तुत पद्य में गुरु वसिष्ठ के वचनों से धोबी को तत्वज्ञान होता है, स्वकृत व्यवहार के कारण उसे अपने अपराध का बोध होता है। अतः धोबी द्वारा स्वयं की मृत्यु का निश्चय करना, अपने कृत्य पर पश्चाताप करना तथा स्वयं जीने से विमुख होना आदि कार्य अनुभाव है। अपने अपराध युक्त कार्यों का स्मरण यहाँ संचारी भाव है अतः इन सबसे निर्वेद स्थायी भाव पुष्ट होकर शान्तरस की अनुभूति कराता है।

अठारहवें सर्ग के अतिरिक्त भी महाकाव्य में अनेक स्थलों पर शान्त रस की अनुभूति होती है। शान्त रस का एक अन्य उत्कृष्ट उदाहरण दर्शनीय है जिसमें अपनी प्रिया का वध वृतान्त सुनकर राम मृत्यु को ही औषध मानते हैं एवं कहते हैं कि–

ह्वता दयितदेवरोभयसयत्नसंरक्षिता
ह्वता दशरथोद्यमैः पुनरिहासि नोरक्षिता।
कथं दधदिदं प्रिये! रघूपतिः कलंकद्वयं
अनेहसि गतिं श्रयेन्निधनमेव रामौषधम्।।[2]

प्रस्तुत पद्य में राम के ह्वदय का सन्ताप, जीवन से विमुख होना आदि अनुभाव हैं। विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं जो निर्वेद स्थायीभाव को पुष्ट करते हुए शान्तरस की अनुभूति में सहायक हैं।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि ने अ›ीरस शान्त के साथ–साथ अन्य रसों की भी अवसरानुकूल योजना की है जिनका विवेचन निम्नवत् है–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/9
2. वही–14/63

करुण रस – अपने शोक भाव को प्रकट करने हेतु महाकवि ने करुण रस को पुष्ट किया है। महाकाव्य में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे पाठक हृदय द्रवीभूत हो उठता है। रामवनवास प्रसंग में करुणरस की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। राम–लक्ष्मण सहित, सीता वनगमन के शोक से उत्पन्न करुण रस सहृदय हृदय को वेदना से आप्लावित कर देता है यथा–

विह›ा स्फुरच्छातकुम्भाश्चितेषु स्फुटं क्रन्दनं सन्दधुः पंजरेषु।

गलन्नेत्र पौरप्रजाऽव्यक्तवाग्भिः रूदन्निर्भरं राजसौधोव्यलोकि।।[1]

इस पद्य में वन के लिए प्रस्थित राम को देखकर पशु–पक्षियों सहित पौरजनों का रूदन आदि अनुभाव है, जड़ता, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं जो शोकरूपी स्थायीभाव वाले करुण रस का परिपाक करने वाले हैं।

सीताऽपहरण, सीता–राम विरह प्रसंग, अग्नि परीक्षा, दुर्मुख वचन आदि अनेक प्रसंग हैं जहाँ महाकवि ने करुण रस का मर्मस्पर्शी सन्निवेश किया है।

शृंगार रस – महाकाव्य में शृंगार के भी अनेक स्थल दिखलाई पड़ते हैं। शृंगार के दोनों पक्षों संयोग व वियोग की महाकवि ने सफल अभिव्यंजना की है।

संयोग शृंगार – राम व सीता के विवाहोपरान्त संयोग शृंगार की अनुपम छटा दर्शनीय है–

अन्तःपुर प्रतोलीषु चरन्ती निभृतम्भुदा
स्तम्भ कोण निलीनेन प्रियेण गोपितात्मना।
मुंचमुंचेति सव्रीडं भणन्ती मृदुवाचिकाम्
कदाचिच्च दृढ़ बद्ध्वा भुजयोराशु चुम्बिता।।[2]

प्रस्तुत पद्य में राम द्वारा स्वयं को छिपाना, जबरन सीता को पकड़ना तथा चूमना आदि क्रियाएँ रतिभाव को पुष्ट कर शृंगार रस की सुखद अभिव्यक्ति कराने वाली हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/80
2. वही–9/48, 49

विप्रलम्भ शृंगार – संयोग शृंगार के समान ही कविकृत वियोग शृंगार का वर्णन भी यहाँ दर्शनीय है। चौदह वर्ष के वनवास के कठोर व्रत के सम्बन्ध में विचारकर वैदेही उद्विग्न होकर अश्रुधारा प्रवाहित करती हैं, यथा–

सा क्वचिज्जलचारिणां युगलं रिरंसुं प्रेक्ष्य कातरमुद्रया दयितं पठन्ती।
दुस्त्यजं विपिनावधेशशपथं स्मरन्ती नेत्रवारि मुमोचवारिणी निम्नगायाः।।[1]

यहाँ सीता की कातर मुखमुद्रा, मानसिक दौर्बल्य, अश्रुप्रवाह आदि से वियोग की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। महाकाव्य में वियोग शृंगार के अनेक पद्य दृष्टिगत होते हैं। सीतापहरण के पश्चात् तो महाकाव्य में राम व सीता की वियोगावस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है।

वीररस – महाकाव्य में वीररस के भी अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। राम–रावण युद्ध वर्णन प्रसंग में अनेक पद्यों में राम का उत्साही स्वरूप दिखाई पड़ता है। यथा– अपनी प्रिया की व्यथा सुनकर राम का सम्पूर्ण शरीर क्षुब्ध हो उठता है और वे रावण सहित उसकी सम्पूर्ण राजधानी को दग्ध करने के लिए उत्कण्ठित हो जाते हैं–

विदेहतनया व्यथाक्षुभितसर्वगात्तो ज्वल–
त्प्ररोषशिखिधर्षितो भ्रुकुटिव्रक्रतामादधत्।
दिधक्षुरिव रावणं सकुलमेव लंकापुरं
कृशानुमुखभूधरो रघुपतिर्द्रुतं प्रोत्थितः।।[2]

यहाँ पर प्रताप विक्रमादि विभावों द्वारा पुष्ट राम का 'उत्साह' वीर रस की अभिव्यंजना करने वाला है।

भयानक रस – भयानक रस के भी महाकाव्य में अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। लंकादहन व युद्धवर्णन प्रसंग में भयानक रस के सर्वाधिक उदाहरण दिखलाई पड़ते हैं।

---
1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11 / 15
2. वही–14 / 12

महाकविकृत समरभूमि की विकरालता व भयावहता से सम्बन्धित एक पद्य यहाँ दर्शनीय है–

विभिन्नशिरसो भुवि प्रवहमान रक्तांचिता
निपेथुरथ राक्षसाः क्रकचकृत्तवृक्षप्रभाः।
बभौ समरमेदिनी त्रुटितहार केयूराणि
शरत्समय शर्वरी विशदताराङ्किता।।[1]

इस पद्य में खून से लथपथ शरीर का, आरी से काटे हुए महावृक्षों से समानता करना तथा विच्छिन्न मुक्ताहारों एवं भुजबन्धों वाली समरभूमि का शर्वरी के समान प्रतीत होना भय नामक स्थायीभाव को पुष्ट करते हुए भयानक रस की अनुभूति करता है।

रौद्र रस –रौद्र रस का चित्रण भी महाकवि ने अवसरानुकूल अपने महाकाव्य में किया है। सीता के क्रोध के माध्यम से महाकवि ने रौद्ररस का संचार करते हुए नारी का नवीन स्वरूप वर्णित किया है। वर्तमान सशक्त नारी की प्रतीक स्वरूपा जानकी अपने अपमान को सम्पूर्ण नारी जाति का अपमान मानते हुए प्रतीकार युक्त क्रोधित स्वर में कहती है–

स्वकान्तसंसर्गसुखप्रहारिणावुभौ मदर्थं किल तुल्यविक्रमौ।
पुरन्ध्रिपण्यक्रयविक्रयार्थिनी निमज्जितावात्मनि रामरावणौ।।[2]

यहाँ राम कृत तिरस्कार से उद्दीप्त सीता के क्रोधरूपी स्थायीभाव वाले रौद्ररस की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।

अद्भुत रस –अद्भुत रस की भी महाकवि ने सृष्टि की है जो प्रत्येक पाठक को विलक्षणता की अनुभूति करवाने वाले हैं। महाकवि ने जनकपुरी की समानता अमरावती से की है जो विस्मयकारी है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–14/42
2. वही–15/50

विवाहकालोचिततुंगतोरणैर्मणिप्रदीपैश्च गृहान्तरस्थितैः।
महार्घहर्म्याणि पुरौकसां ययुः श्रियं दुरापां सुरसद्मलम्बिनीम्।।[1]

इसी तरह जनक के विलास वन वर्णन में, नवयुवतियों के संचरण आदि में स्वयंवर सभा प्रसंग में भी अद्भुत रस के अनेक पद्य प्राप्त होते हैं।

हास्य रस –महाकवि ने हास–परिहास युक्त वर्णन द्वारा महाकाव्य में हास्य रस का भी सन्निवेश किया है। 'वध्वाचारः' सर्ग में देवर–भाभी के आपसी हास–परिहास में हास्य रस का प्रयोग दर्शनीय है–

भ्रातृजायावचोभङ्ग्या प्रेरितः प्रेक्ष्य दर्पणे।
वैरुप्यं लज्जितस्तावत् कृत्रिमरोषमुद्रया।।
कया कृतं तिसृणां भोः ब्रूहि शीघ्रमिति ब्रुवन्।
विवल्गनैः कृतातोपैरवरोधंच नन्दयन्।।
समुपास्थापयामास लक्ष्मणो गृहताण्डवम्।
सर्वकार्यं परित्यज्य सर्वेयद् ददृशुश्चिरम्।।[2]

वात्सल्य रस –वात्सल्य रस की भी अभिव्यंजना महाकाव्य में अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होती है। महाकाव्य में प्रयुक्त वात्सल्य रस का एक सुन्दर उदाहरण यहाँ दर्शनीय है। चतुर्थ सर्ग में कुशिकनन्दन के आग्रह से व्यथित दशरथ पुत्रस्नेह के वशीभूत होकर अपना जीवन व्यर्थ मानते है–

प्राणैर्विना दाशरथीभवितुं न शक्तो
दृष्टिं विना दृगुभयं ननु मोघजन्म।
किं वा करोमि तदहं वितथं न भाष
रामं विना क्षणमपि श्वसितुं न शक्यम्।।[3]

---

1. जानकीजीवनम्– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–2/6
2. वही–9/96–98
3. वही–4/25

इसी तरह लवकुश के विद्याध्ययनार्थ वाल्मीकि आश्रम में जाने के समय सीता का वात्सल्य से ओतप्रोत वर्णन अद्वितीय है। 'रामायणगानम्' सर्ग में तो वात्सल्य रस से परिपूर्ण अनेक पद्य प्राप्त होते हैं।

रस विवेचन के अन्तर्गत हम कह सकते हैं कि महाकवि ने प्रसंगानुकूल रसों की अन्विति महाकाव्य में की है, वीभत्स रस का महाकाव्य में अभाव परिलक्षित होता है। यह महाकाव्य सुखान्त होने के कारण प्रत्येक पाठक के मन व मस्तिष्क को परम आह्लाद प्रदान करते हुए परम संतोषदायक प्रतीत होता है। अतः शान्तरस प्रधान महाकाव्य की कोटि में आता है।

(ii) गुण –

गुण काव्य के उन विशिष्ट धर्मों को कहा गया है जिनसे काव्य शरीर में यौवन आता है और काव्य का जीर्णोद्यान वासन्ती उपवन में परिणत हो जाता है अथवा कहा जा सकता है कि शरीर में यौवन का और उद्यान में वसन्त का जो स्थान है वही स्थान काव्य में गुणों का है। वस्तुतः काव्य धर्मी है और उसमें शोभा उत्पन्न करने वाले जो धर्म हैं उनका नामकरण गुण किया गया है।

गुण स्वरूप विवेचन के अन्तर्गत सर्वप्रथम 'वामन' ने गुण का स्पष्ट रूप से स्वरूप वर्णित करते हुए काव्य में शोभा उत्पन्न करने वाले धर्म को गुण कहा है, यथा–**काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।।**[1]

इस प्रकार आचार्य वामन की मान्यता है कि काव्य में गुण ही आधारभूत शोभाकारक तत्व हैं और अलंकार उसी शोभा को बढ़ाने वाले उपकरण (शोभाधायक तत्व) हैं। गुणों के बिना शोभा की उत्पत्ति सम्भव नहीं है परन्तु अलंकारों के अभाव में शोभा का अस्तित्व संभव है। गुण व अलंकार के विषय में ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का मत वामन से अलग है। उनके अनुसार–

1. काव्यालंकारसूत्र, आचार्य वामन 3/1/1, 2

तमर्थमवलम्बन्ते येऽ>िनं ते गुणाः स्मृताः।

अ>ाश्रितास्त्वलङारा मन्तव्याः कटकादिवत्।।[1]

जो काव्य के प्रधानभूत रस (V>h) के आश्रित रहने वाले माधुर्यादि हैं उनको गुण कहते हैं और जो काव्य के शरीर (अ>) शब्द तथा अर्थ में आश्रित रहने वाले हैं उनको कटकादि के समान अलंकार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि गुण काव्य के आत्मभूत रस के धर्म होते हैं जबकि अलंकार काव्य के अंगभूत (शरीरभूत) शब्द और अर्थ के धर्म होते हैं। लेकिन आचार्य मम्मट ने दोनों मतों का विवेचन करते हुए ध्वनिवादी सिद्धान्त का ही युक्तिपूर्ण समर्थन प्रस्तुत किया है–

"ये रसास्या>िनो धर्माः शौर्यादयः इवात्मनः।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा।।"[2]

अर्थात् जिस प्रकार शौर्य आदि धर्म आत्मा के उत्कर्ष करने वाले होते हैं और उन्हें लोक में गुण शब्द से व्यवहार किया जाता है उसी प्रकार काव्य की आत्मा रस के उत्कर्ष करने वाले धर्म (ओज, प्रसाद आदि) को गुण कहते हैं तथा ये गुण काव्य में अचल स्थिति में रहते हैं।

निष्कर्षतः ध्वनिवादियों का गुण सम्बन्धी सिद्धान्त यह है कि गुण रस के धर्म, रस के उत्कर्ष हैं तथा रस के साथ नियत रूप से रहने वाले हैं। यद्यपि गुणों के व्यंजक के रूप में वर्णों को निश्चित किया गया है फिर भी आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि निश्चित वर्णों का होना अपरिहार्य नहीं है। ध्वनिवादियों ने वामनादि के द्वारा प्रोक्त 10 शब्द गुण और 10 अर्थ गुणों का निषेध किया है और केवल माधुर्य, ओज और प्रसाद के रूप में तीन ही गुण स्वीकार किए हैं। ध्वनिवादी आचार्यों के अनुसार शृंगार, करुण और शान्त में माधुर्य, वीर, वीभत्स और रौद्र में ओज तथा समस्त रसों में प्रसाद गुण होते हैं।

---

1. ध्वन्यालोक–आचार्य आनंदवर्धन–2/6
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–8/86

गुणों के इसी विवेचन के अनुसार किसी भी साहित्यिक कृति में गुण का विवेचन कैसे किया जाए, यह प्रश्न उपस्थित होता है। रसों के स्वरूप के आधार पर ही गुणों का निश्चय करना पड़ता है अर्थात् यदि रस श्रृंगार है तो माधुर्य गुण अवश्य ही होगा। इसी प्रकार वीर, वीभत्स आदि रसों में ओजगुण होगा। यह भी ध्यातव्य है कि कहीं भी अकेले माधुर्य या ओज गुण की स्थिति नहीं होती। प्रसाद सर्वत्र रहने वाला गुण माना गया है। अतः गुणों के व्यंजक वर्णों का पालन महाकवियों ने नहीं किया है।

महाकाव्य शान्त रस प्रधान है अतः इसमें सर्वत्र माधुर्य+प्रसाद गुण की स्थिति विद्यमान है। रसाभिव्यंजन के प्रसंग में श्रृंगार रस के बहुत से उदाहरण दिए गए हैं जो कि माधुर्य+प्रसाद गुण युक्त हैं।

माधुर्य –नवविवाहिता सीता के प्रणय–प्रसंग में श्रृंगार रस स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है जो माधुर्य एवं प्रसाद गुण से युक्त है, यथा–

अन्तः पुरप्रतोलीषु चरन्ती निभृतम्भुदा।
स्तम्भकोणनिलीनेन प्रियेण गोपितात्मना।।
मुंचमुंचेति स्व्रीडं भणन्ती मृदुवाचिकम्।
कदाचिच्च दृढ़ बद्ध्वा भुजयोराशु चुम्बिता।।[1]

श्रृंगार रस से परिपूर्ण इस पदावली में समस्त पदों की गंभीरता से भिन्न रूप दर्शनीय है। इस पद्य के संयुक्त वर्ण जैसे स्तम्भ, निभृतम्भुदा, मुंच, भणन्ती, चुम्बती आदि वर्ग के अन्त्य वर्णों से मिलकर श्रुति माधुर्य का संचार कर रहे हैं अतः मधुर पद रचना से युक्त यह माधुर्य गुण का उत्कृष्ट उदाहरण है। महाकाव्य में इस तरह के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/88, 89

ओजगुण –राम–रावण युद्ध, अग्निपरीक्षा, लङ्कादहन आदि अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ पर महाकवि ने वीर रस का उदाहरण दिया है। जो कि ओज एवं प्रसाद गुण से युक्त है। दण्डकवन में राम अकेले ही शौर्य का प्रदर्शन करते हुए सम्पूर्ण राक्षस सेना को ढेर कर देते हैं–

निर्भयं प्रविवेश राक्षससैन्यगर्भे केसरीव करालद्रंष्ट्र इभेन्द्रयूथे।
तीक्ष्ण सायकवर्षणैः ककुभोविरुन्धन् राक्षसान् स ददाह तूलनिभान् क्षणेन।।[1]

यहाँ पर राम का राक्षसों के साथ वीरतापूर्ण युद्ध में, राक्षस सेना को अकेले ही ढेर करने आदि के वर्णन में प्रयुक्त समस्त पदावली, संयुक्त रेफ, 'ण' आदि वर्णों का प्रयोग एवं औद्धत्य पदरचना दर्शनीय है जो ओजगुण की परिचायक है। इसी तरह के अन्य पद्य महाकाव्य में प्रसंगानुकूल प्राप्त होते हैं।

प्रसाद गुण –'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में सर्वत्र प्रसादगुण की विद्यमानता लक्षित होती है। महाकाव्य में प्रसादगुण की छटा कुछ पद्यों द्वारा दर्शनीय है। 'श्वसुरालयः' सर्ग में महाकवि ने कन्यारूपी धन की विविध अवस्थाओं का अत्यन्त सहजता से हृदयग्राही वर्णन किया है–

सुतेयं पत्नीयं भवनवधुकेयं च भगिनी
ननान्देयं श्वश्रूस्तनयदयितेयं च जननी।
सखी नप्त्री पौत्री किमधिकमहो गौरवपदं
न किं धत्ते कन्या द्रुहिणरचनायामनुपमा।।[2]

महाकाव्य में वर्णित प्रसादगुण समन्वित स्थलों के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाकवि ने पुरातनी कथा को सहजता से सहृदयगामी व रसपेशल बनाने हेतु प्रसादगुण का प्रसंगानुकूल उचित प्रयोग किया है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/60
2. वही–8/80

तीनों गुणों का विवेचन करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में वर्णित विविध रस के प्रसंगों में त्रिविध गुणों का समन्वय महाकवि ने सफलतापूर्वक किया है।

(iii) रीति योजना –

मनोगत भावों को सहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन 'भाषा' है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना विधान को ही सम्भवतः 'शैली' कहा जाता है। रीति शब्द से ही शैली का उद्‌गम हुआ है। संस्कृत काव्यशास्त्र में शैली को रीति, वृत्ति, मार्ग, प्रवृत्ति, पद्धति, संघटना आदि पृथक्–पृथक् नामों से काव्यशास्त्रियों ने अभिहित किया है। वामन ने 'काव्यालंकार सूत्राणि' में पदों की विशिष्ट रचना को 'रीति' कहा है–

विशिष्टा पदरचना रीतिः। विशेषोगुणात्मा।[1]

तथा वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली के रूप में रीति के तीन प्रकार बताए हैं, यथा–

सा त्रेधा वैदर्भी गौड़ीया पांचाली चेति।[2]

दण्डी ने रीति के स्थान पर 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हुए गुणों के आधार पर वैदर्भी व गौड़ी के रूप में दो प्रकार के मार्ग का उल्लेख किया है–

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरूद्रात्वमोजः कान्ति समाधयः।।
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दशगुणाः स्मृताः।
एषां विपर्ययः प्रायोः दृश्यते गौड़वर्त्मनि।।[3]

रुद्रट ने अपने काव्यालङ्कार में समास के आधार पर चार रीतियों वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी एवं लाटी को मान्यता दी है–

---

1. काव्यालंकारसूत्राणि–आचार्य वामन–1/2/7
2. वही–1/2/9
3. काव्यादर्श–आचार्य दण्डी–1/41,42

द्वित्रिपदा पांचाली लाटीया पंच सप्त वा यावत्।
शब्दाः समासवन्तो भवति यथाशक्ति गौड़ीया।।[1]

रुद्रट ने असमासा वृत्ति की वैदर्भी ही एकमात्र रीति है ऐसा कहकर समास रहित वृत्ति को वैदर्भी कहा है–

वृत्तेरसमासाया वैदर्भी। रीतिरेकैव।[2]

आचार्य कुन्तक ने पुनः मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए कवि स्वभाव के आधार पर सुकुमार, मध्य तथा विचित्र तीन मार्गों का प्रतिपादन किया है–

सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थान हेतवः।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः।।[3]

आचार्य विश्वनाथ पदों के मेल या संघटन को रीति कहते हैं। 'साहित्यदर्पण' में उन्होंने रीतियों का विशद वर्णन करते हुए वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली एवं लाटी इन चारों को रस का उपकार करने वाली रीतियाँ कहा है–

पदसंघटना रीतिरङ्संस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा
वैदर्भी चाऽथ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा।।[4]

इस प्रकार साहित्याशास्त्र में वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली रीतियाँ काव्यों के प्रस्थान रूप में व्यवस्थित हैं। इन तीनों रीतियों में भी वैदर्भी रीति को अधिक सहृदय आह्लादक कहा गया है। विशिष्ट पदरचना का तात्पर्य है गुण संवलित पद संघटना। अतएव रीति व गुण का सम्बन्ध नित्य हुआ। गुण रीति के अनुप्राणक हैं अतः रीतियाँ, गुणों के माध्यम से ही रस की उपकारक होती हैं। साक्षात् रूप से नहीं। अतः किसी भी साहित्यिक कृति में रीति का अन्वेषण गुणों के आधार पर किया जाता है।

---

1. काव्यालंकार–रूद्रट–2/5
2. वही–2/6
3. वक्रोक्तिजीवितम्–कुन्तकाचार्य–1/24
4. साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ–9/1

महाकवि डॉ. मिश्र ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में प्रस›ानुकूल तीनों रीतियों का यथोचित समायोजन किया है–

वैदर्भी रीति –'जानकीजीवनम्' में अधिकांशतः वैदर्भी रीति के श्रुतिमधुर स्थल मिलते हैं। महाकाव्य में प्रयुक्त वैदर्भी रीति का एक सुन्दर उदाहरण यहाँ दर्शनीय है, यथा–

न च ससार पुरो न पृष्ठतो खलु दक्षिणतो न च वामतः।
उपरि नैव ददर्श न वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवाजनि जानकी।।[1]

जानकी की अचल स्थिति के वर्णन में वैदर्भी रीति की विशेषता बताने वाले 'च' वर्णों का आधिक्य एवं सुगम उच्चारण वाले वर्णों का सामंजस्य दर्शनीय है। इसी तरह अन्य सर्गों में भी समासराहित्य से सम्बन्धित वैदर्भी रीति के पर्याप्त स्थल देखे जा सकते हैं।

पांचाली रीति – पांचाली रीति का भी महाकवि ने महाकाव्य में मंजुल निबन्धन किया है। यह रीति कवि की काव्य कुशलता के परिप्रेक्ष्य में चारूता लाने वाली सिद्ध हुई है।

महाकाव्य में अवसरानुकूल जहाँ माधुर्य मिश्रित स्थल देखे जाते हैं वहाँ पांचाली रीति का ही संयोजन सुषमावृद्धि करता है। वैदेही की लज्जाभावना प्रसंग में पांचाली रीति दर्शनीय है जिसमें मधुर वर्णों का प्रयोग एवं पाँच–छः पदों तक समस्तपदावली बड़ी आकर्षक रही है–

सपदि कोशलराजसुताननाज्जनकजा समवेत्य गुणस्तुतिम्।
ननु विवक्षुरपु त्रपयार्दिताऽजानि निवाग्जडिमानमुपेयुषी।[2]

महाकवि ने पांचाली रीति का अवसरानुकूल पर्याप्त प्रयोग किया है। जो प्रत्येक पाठक के आनन्दातिरेक का वर्धन करने वाले हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/57
2. वही–6/55

गौड़ी रीति – महाकाव्य में गौड़ी रीति का भी अवसरोचित प्रयोग दृष्टिगत होता है। महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में लव–कुश द्वारा लंकादहन प्रसंग में समस्त पदावली, अनुप्रास की छटा एवं महाप्राण वर्णों का संयोजन बड़ा हृदयग्राही है, यथा–

दशमुख बलाभिमाननिनं क्षुर्घननादेन निबद्धः।
प्रज्ज्वालितलाङ्गूलशिखाभिर्महाकालसंक्रुद्धः।।
लंकापुरी ददाह दारूणं स्वर्णमयीमतिकामम्।
सिन्धुसलिलशिशिरीकृतकायः पुनरागतश्च रामम्।।[1]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि महाकवि ने महाकाव्य में काव्यसम्प्रदाय में प्रचलित तीनों रीतियों का रूचिर निबन्धन कर चमत्कृति को उत्पन्न किया है।

(iv) अलंकार –

'अलंकरोति अनेन इति अलंकारः' व्युत्पत्यानुसार 'अलं' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय करने पर अलंकार शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है– 'सजाने का उपकरण'। आचार्य दण्डी के शब्दों में–

"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।।"[2]

अर्थात् जैसे सौन्दर्ययुक्त शरीर में आभूषण धारण करने से ये आभूषण शरीर की शोभा वृद्धि करते हैं, वैसे ही अलंकारों के प्रयोग से काव्य या नाटक की शोभा वृद्धि होती है। अलंकारों के प्रयोग से ही कोई भी काव्य रमणीय स्वरूप को प्राप्त करता है। अलंकारों से रहित काव्य नीरस कथा का पुलिन्दा होगा, जिसमें रसमयता नहीं होगी। काव्य में अलंकारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है। यदि अलंकार हैं तो वे काव्य के उत्कर्षाधायक होगें यदि नहीं हैं तो भी काव्य की कोई हानि नहीं होगी। इसलिए 'मम्मट' ने 'अनलंकृति पुनः क्वापि' लिखकर अलंकार रहित को भी काव्य

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–21/117, 118
2. काव्यादर्श–आचार्य दण्डी–2/9/1

माना है। मम्मट अलंकार का लक्षण करते हुए लिखते हैं कि जैसे हार आदि आभूषण अंगों के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं वैसे ही अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार शब्द और अर्थ के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽ›द्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[1]

ध्वनिवादी आचार्य आनंदवर्धन ने अलंकार को युक्तिपूर्ण ढंग से काव्य शरीर पर आश्रित माना है और आत्मभूत रस के उत्कर्षक होने पर उसे उपादेय सिद्ध किया है। उनका निदर्शन बड़ा स्पष्ट है कि गले का हार जिस प्रकार गलदेश को भूषित करता हुआ सुन्दरी के समग्र व्यक्तित्व को सुशोभित कर देता है उसी प्रकार शब्द या अर्थ में होने वाला अलंकार काव्य के मुख्यार्थ रस को सुशोभित करता है–

अ›ाश्रितास्त्वलङारा मन्तव्या कटकादिवत्।।[2]

काव्य में कवि को वर्णन का प्रभूत अवसर मिलता है अतः वर्णन के मध्य में कवि सर्वत्र अलङारों की योजना कर सकता है। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रृंगार, करुण, वीर, वात्सल्य, शान्त आदि रसों का प्रयोग किया है। इन रसों के चित्रण में कवि ने अनेकत्र, अनेकविध अलङारों का प्रयोग किया है। कवि की रचना में अलङारों का महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य में प्रयुक्त विविध अलङारों का विवरण निम्नवत् है–

शब्दालङार –

अनुप्रास – "वर्णसाम्यनुप्रासः।"[3]

आचार्य मम्मट के अनुसार स्वर की विषमता होने पर भी वर्णों की समानता जहाँ होती है वहाँ अनुप्रास अलङार होता है।

1. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट 8/67
2. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन 2/6
3. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट 9/पृ.सं.–135

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ शब्दों की समानता होने के कारण अनुप्रास है। एक उदाहरण यहाँ दर्शनीय है–

दुरन्तदुर्भिक्ष निदाघदाहो, दहत्यजस्रं जनतालतालीम्।
न भव्यमाराम इवावकेशी विधातुमीशः प्रभवामितस्याः।।[1]

प्रस्तुत पद्य में प्रथम चरण में 'द', द्वितीय चरण में 'त', तृतीय चरण में 'व' एवं 'म' तथा चतुर्थ चरण में 'व', 'म' तथा 'त' वर्णों की आवृत्ति हुई है जो अनुप्रास का उत्कृष्ट उदाहरण है।

यमक – 'अर्थे सत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।'[2]

सुनने में समान होने पर भी अर्थों में परस्पर भिन्न वर्णों की आवृत्ति ही 'यमक' है। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में कुछ स्थानों पर यमक निबद्धित पद्य प्राप्त होते हैं जिनमें से एक पद्य यहाँ उल्लेखनीय है, यथा–

धराचक्रमासीद् विपन्नं विषण्णं विशीर्णं विदीर्णं विकीर्णं निकामम्।
तिरस्कृत्य विष्णु प्रसाद्याशुतोषं जगद्रावणो रावणोऽसौ ततापः।।[3]

प्रस्तुत पद्य के चतुर्थ चरण में 'रावणो–रावणो' की दो बार आवृत्ति हुई है जिनमें प्रथम 'रावणो' का अर्थ है 'रुलाने वाला' तथा दूसरा 'रावणो' दशानन के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः यहाँ यमक अलङ्कार की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

अर्थालङ्कार –

उपमा – 'साधर्म्यमुपमा भेदे।'[4]

उपमा तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य वर्णन को ही उपमा कहा जाता है। उपमा सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला अलङ्कार है। कालिदास की प्रसिद्धि का कारण उपमालंकार है। अप्पयदीक्षित ने इसे 'शैलूषी' कहकर सादृश्य मूलक सारे अलंकारों का आधार माना है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/20
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–9/83
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/26
4. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/124

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर उपमा का सुन्दर प्रयोग दिखलाई पड़ता है। उपमा अलंकार से अलंकृत एक मनोरम पद्य यहाँ दर्शनीय है–

विहान्यान्यभार्यागृहाणि प्रजेशस्तवाराधनेयोऽनिशं सिद्ध आसीत्।
स एवाधुना क्षीरमक्षीमिव त्वां क्षिपत्येव दूरेततः स्तम्भितास्मि।।[1]

इस पद्य में कैकेयी की तुलना दूध की मक्खी से की है। अतः यहाँ मक्खी उपमान व कैकेयी उपमेय है। 'इव' वाचक शब्द है। तिरस्कार साधारण धर्म है। उपमेय कैकेयी के तिरस्कार को उपमान मक्खी के दूध से फेंके जाने के समान बताये जाने के कारण पूर्णोपमा अलŠार है।

रूपक– "तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।।"[2]

जो उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप है, वह रूपक अलंकार कहलाता है।

महाकवि अभिराजकृत महाकाव्य में अनेक स्थलों पर रूपक अलंकार का चारू निबन्धन देखने को मिलता है। जिनमें से एक पद्य उदाहरण स्वरूप यहाँ दर्शनीय है–

कराङ्घ्रिरक्तोत्पलमास्यपंकजं विलोचनद्वन्द्वकुवेलमद्भुतम्।
विलम्बिहस्ताग्रमृणालयुग्मकं समेत्यं जातं क्षितिजांगपुष्करे।।[3]

यहाँ जानकी की यौवन माधुरी वर्णन प्रसंग में अनेक उपमानों का जानकी के शरीर सौष्ठव रूपी उपमेय में आरोप किया गया है अतः यहाँ रूपक अलंकार स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

स्वभावोक्ति – स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूप वर्णनम्।[4]

जहाँ पदार्थों की स्वाश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है, वहाँ स्वभावोक्ति अलŠार होता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/39
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/139
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–2/9
4. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/111

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में स्वभावोक्ति अलङ्कार से अलंकृत अनेक पद्य प्राप्त होते हैं जिनमें से एक स्थल द्रष्टव्य है–

कृतरम्यशिरोऽवगुण्ठनां वरहस्ताहितशाटिकाञ्चलाम्।
मणिबन्धविलोलकङ्कणां मृदुशिंजारवहृष्टहंसकाम्।।
प्रमदानिकुरम्बमण्डिताम् कलगीताभिभवन्मितस्वराम्।
उपभूधर नन्दिनीगृहं ह्युपयान्तीं वधुकामपश्यताम्।।[1]

इस पद्य में महाकवि ने नवोढा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। घूँघट काढ़ना, कलाई में खनखनाते कंगन, चूड़ियाँ पहनना एवं धीमे–धीमे स्वर से युक्त होना ये सभी वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार से समन्वित हैं।

सीता के शैशवावस्था व यौवनावस्था के वर्णन में महाकवि ने स्वभावोक्ति की अद्भुत छटा बिखेरी है। इसके अतिरिक्त राम, रावण, हनुमान, लव–कुश आदि की स्वाभाविक चेष्टाओं के वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार का रूचिर सन्निवेश महाकवि ने किया है।

दीपक – **सकृद्वृत्तिश्तु धर्मस्य प्रकृता प्रकृतात्मनाम्।**
स्मिनदर्शित कार्यनिश्चयः कपिसैन्यैर्मुदितैश्मण्डयत्।।[2]

जहाँ उपमेय (प्रकृत) और उपमान (अप्रकृत) रूप वस्तुओं के (क्रियादि रूप) धर्म का एक बार ही उपादान (ग्रहण) किया जाता है या बहुत सी क्रियाओं के होने पर किसी कारक का एक बार ग्रहण किया जाता है, वहाँ दीपक अलङ्कार होता है।

प्रस्तुत अप्रस्तुत सभी को आलोकित कर प्रत्येक सहृदय को आलोकित करने वाले दीपक अलंकार के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण महाकाव्य में प्राप्त होते हैं जिनमें से एक पद्य यहाँ दर्शनीय है–

हलं विनिर्माय सुवर्णरत्नैस्त्वयैव धुर्येण वृषेण नेयम्।
कृते त्वमेत्थं क्षितिकर्षकर्मण्यपां सुवृष्टिर्भविताऽप्रमेया।।[3]

---
1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/10, 11
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/155
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/28

यहाँ पर 'विनिर्माय' 'नेयम्' 'क्षितिकर्षकर्म' आदि अनेक क्रियाओं का एक ही कर्त्ता (त्वया–जनक) है अतः यह दीपक अलंकार का उदाहरण है।

अर्थान्तरन्यास – **सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।**
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणतरेण वा।।[1]

जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न (विशेष या सामान्य) के द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। महाकाव्य में अनेक स्थलों पर सामान्य का विशेष से समर्थन दिखलाई पड़ता है, यथा– **प्राणैर्विना दशरथीभवितुं न शक्तो**

दृष्टिं विना दृगुभयं ननु मोघजन्म।
किं वा करोमि तदहं वितथं न भाषे
रामं विना क्षणमपि श्वसितुं न शक्यं।।[2]

इस पद्य में राम के बिना दशरथ अपने जीवित न रह सकने रूप विशेष कथन का समर्थन सामान्य कथन दृष्टिहीन दोनों नेत्रों के अस्तित्व से करते हुए राम बिना अपने जीवन को व्यर्थ बताते हैं। अतः यहाँ विशेष का सामान्य से कथन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

विरोधाभास –"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।।"[3]

जहाँ विरोध न होने पर भी (दो वस्तुओं का) विरुद्धों के समान वर्णन किया जाता है, वह विरोधाभास अलङ्कार है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर विरोध अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। अयोध्यापुरी में हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण के वर्णन में कवि ने विरोधाभास का प्रयोग किया है, जो निम्न प्रकार है–

---

1. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/164
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/25
3. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–10/110

दिनं चान्द्रं ज्योत्स्नातुलिततपनं शीतलकरं
निशीथिन्यो नूनं प्रखररवितापप्रहरणाः।।
तमो ज्योति र्ज्योतिस्सघनतम इत्येवमनिशं
विपर्यस्तं सर्वं जनकतनुजायास्समभवत्।।[1]

यहाँ महाकवि ने परस्पर विरोधी बातें की हैं कि सीता के लिए दिन चन्द्रमा से युक्त अतएव शीतल एवं रातें निश्चय ही सूर्य की तीखी धूप को बढ़ाने वाली हो गई, अंधकार प्रकाश और प्रकाश सघन अन्धकार बन गया।

अतिशयोक्ति – **निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य प्ररेण यत्।**
प्रस्तुतस्य यदम्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।।
कार्यकारणोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा।।[2]

उपमान के द्वारा अपने भीतर निगल लिए गए उपमेय का जो तादात्म्य निश्चित किया जाता है वह अतिशयोक्ति है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में विविध स्थलों पर अतिशयोक्ति का वर्णन महाकवि ने किया है, जिनमें से एक पद्य यहाँ दर्शनीय है–

प्रकम्पते मेरुऽपि प्रभंजनैर्नदीजलैस्सिन्धुरपि प्रवर्धते।
प्रतप्यते भानुरहो शिखावलैर्यदद्य रामो दयितां परीक्षते।।[3]

राम को अपनी दयिता के चरित्र की परीक्षा करते देख सुमेरूपर्वत का हवा के झोंकों से काँपना, समुद्र में नदियों के पानी से बाढ़ का आना तथा सूर्य को दीपक से आँच लगाना ये सब कथन अतिशयोक्तिपूर्ण ही हैं।

महाकाव्य में प्रयुक्त काव्यशोभावर्धक गुणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाकवि ने अलंकारों का अवसरानुकूल प्रयोग कर कविता कामिनी की कमनीयता को बढ़ा दिया है। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार काव्य की सरसता एवं सुबोधता का अपकर्ष करने वाले न होकर सौन्दर्यवर्धक हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/101
2. काव्यप्रकाश–आचार्य ममम्ट–10/100
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/60

(v) छन्द योजना–'छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दः शब्दवर्जितम्।'[1] इस व्युत्पत्यानुसार काव्य में छन्द का स्थान निर्विवाद रूप से अतिमहत्वपूर्ण है। छन्द को वेद के चरण के रूप में कहा गया है–

"छन्दः पादौ तु वेदस्य।"[2]

यास्काचार्य ने **'छन्दांसि छादनात्'**[3] कहकर छन्द की प्रथम व्युत्पत्तिपरक व्याख्या की है। यास्काचार्य के पश्चात् कात्यायन ने 'यदक्षरः परिमाण तदच्छन्दः' कहकर छन्द की परिभाषा दी है। छन्द एक निश्चित परिभाषा में आबद्ध कर दिया गया जिसके अनुसार "छन्द काव्य के उस तत्व का नाम है जिसमें वर्णों की या मात्राओं की संख्या 'गुरु–लघु' का क्रम यति गति की व्यवस्था निर्धारित है।"

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही छन्दों का प्रयोग होता रहा है। वैदिक साहित्य में वर्णिक छन्द थे जो 'सप्तछन्दांसि' के नाम से जाने जाते हैं। लौकिक संस्कृत में वैदिक के साथ–साथ लौकिक छन्दों का प्रयोग भी देखा जाता है जिनका सम्बन्ध वाल्मीकि के हृदय पटल पर उद्बुद्ध प्रसिद्ध श्लोक से है। महाकाव्य के लक्षणानुसार महाकाव्य का छन्दबद्ध होना अनिवार्य है। इसीलिए प्रत्येक महाकवि अपने महाकाव्यों का प्रणयन योजनाबद्ध तरीके से छन्दों से करता है। छन्दों के प्रयोग से कवि अपने उदात्त भावों को अभिव्यक्त करता है जो सहृदयहृदयाह्लादक हुआ करता है। कवि ने केवल सम एवं विषम वृत्तों का प्रयोग किया है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि ने पूर्वप्रचलित छन्दों के साथ–साथ स्वरचित नए छन्दों का प्रयोग किया है जो कवि की अप्रतिम प्रतिभाशीलता के परिचायक हैं। महाकवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में महाकाव्य परम्परा का निर्वहन करते हुए छन्द परिवर्तन किया है। सर्गानुसार विविध छन्दों का प्रयोग निम्न प्रकार है–

---

1. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि–14/45
2. पाणिनीय शिक्षा–41
3. निरूक्त–यास्काचार्य–7/17

प्रथम सर्ग – 'अवतारः' संज्ञक प्रथम सर्ग उपेन्द्रवज्रा छन्द में निबद्ध है किन्तु सर्गान्त में महाकवि ने महाकाव्यत्व का निर्वहन करते हुए मालिनी व शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

द्वितीय सर्ग – 'शिशुकेलिः' सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग को वंशस्थ छन्द में निबद्ध कर महाकवि ने अन्तिम पद्यों में परम्परानुसार छन्द परिवर्तन करते हुए शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

तृतीय सर्ग – 'स्मरोदयः' नामक तृतीय सर्ग में सर्वत्र वंशस्थ प्रयुक्त करे हुए सर्गान्त में द्रुतविलम्बित व शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त किए हैं।

चतुर्थ सर्ग – 'राघवानुरागः' नामक चतुर्थ सर्ग वसन्ततिलका में छन्दोबद्ध है व अन्तिम पद्यों में क्रमशः द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया है।

पंचम सर्ग – 'रघुराजस›मः' नामक पंचम सर्ग में महाकवि ने वियोगिनी छन्द का प्रयोग कर सर्गान्त में शिखरिणी व शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

षष्ठ सर्ग – 'पूर्वरागः' नामक षष्ठ सर्ग में महाकवि ने सम्पूर्ण सर्ग को द्रुतविलम्बित छन्द में निबद्ध करते हुए सर्गान्त में मन्दाक्रान्ता व शार्दूलविक्रीडित छन्दों में अन्तिम पद्यों की सर्जना की है।

सप्तम सर्ग – 'स्वयंवरः' संज्ञक सप्तम सर्ग को उपेन्द्रवज्रा छन्द में उपनिबद्ध करते हुए सर्गान्त में इन्द्रवज्रा , द्रुतविलम्बित व शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया है।

अष्टम सर्ग – 'श्वसुरालयः' नामक अष्टम सर्ग में महाकवि ने सम्पूर्ण सर्ग में उपेन्द्रवज्रा छन्द व अन्तिम पद्यों में शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त किए हैं।

नवम सर्ग – 'वध्वाचारः' संज्ञक नवम सर्ग में महाकवि ने प्रारम्भिक पद्यों में अनुष्टुप् व सर्गान्त में द्रुतविलम्बित, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया है।

दशम सर्ग – 'वनवासः' नामक दशम सर्ग में महाकवि ने चतुर यकार युक्त भुजंगप्रयात छन्द का प्रयोग करते हुए अन्तिम पद्यों में हरिणी व शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया है।

एकादश सर्ग – 'रावणापहारः' नामक एकादश सर्ग कवि निर्मित मैथिली छन्द में निबद्ध है, अन्तिम पद्यों में मालिनी व शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त किए हैं।

द्वादश सर्ग – 'अशोकवनाश्रयः' द्वादश सर्ग में कवि का प्रिय छन्द वियोगिनी रहा है। सर्गान्त वसन्ततिलका व शार्दूलविक्रीडित में विरचित है।

त्रयोदश सर्ग – 'हनुमत्प्राप्तिः' संज्ञक त्रयोदश सर्ग में महाकवि ने सम्पूर्ण सर्ग सर्जना उपेन्द्रवज्रा छन्द में करते हुए सर्गान्त में मालिनी व शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त किए हैं।

पंचदश सर्ग – 'अग्निपरीक्षा' संज्ञक पंचदश सर्ग में महाकवि ने सर्वत्र वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है, अन्तिम दो पद्यों में मालिनी एवं शेष में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

षोडश सर्ग – 'राज्याभिषेकः' संज्ञक षोडश सर्ग में डॉ. मिश्र ने सम्पूर्ण सर्ग में मालिनी छन्द का प्रयोग करते हुए छन्द परिवर्तन की दृष्टि से अन्तिम पद्यों में वसन्ततिलका व शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

सप्तदश सर्ग – 'जनापवादः' नामक सप्तदश सर्ग में महाकवि ने छन्द की नव्यनूतन सरिणी प्रवाहित करते हुए सम्पूर्ण सर्ग में स्वनिर्मित स्यन्दिका का प्रयोग किया है। अन्तिम पद्य मालिनी व शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध है।

अष्टादश सर्ग – 'अपवादनिर्णयः' संज्ञक अष्टादश सर्ग उपजाति छन्द में निबद्ध कर, अन्तिम पद्यों की रचना महाकवि द्वारा शार्दूलविक्रीडित में की है।

एकोनविंश सर्ग – 'लवकुशोदयः' संज्ञक प्रस्तुत सर्ग में महाकवि ने द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग करते हुए सर्गान्त में वसन्ततिलका एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

विंश सर्ग – 'अश्वमेधः' नामक विंश सर्ग में महाकवि ने वसन्ततिलका छन्द में पद्य रचना करते हुए सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

एकविंश सर्ग – 'रामायणगानम्' संज्ञक एकविंश सर्ग में महाकवि ने सम्पूर्ण रामकथा का सार संक्षेप में गीतपद्धति द्वारा प्रस्तुत किया है। प्रत्येक गीत की अपनी पृथक् मात्रा व्यवस्था है। अन्तिम पद्यों में मालिनी व शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हैं।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि ने स्वनिर्मित दो नवीन छन्दों स्यन्दिका व मैथिली का प्रयोग किया है। सर्गानुसार छन्दों का विवरण इस प्रकार है–

शार्दूलविक्रीडित –

लक्षण – "सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।।"

गण – म,स,ज,स,त,त,ग।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में महाकवि ने इस छन्द का प्रयोग किया है, यथा–

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ
मूलं श्रीकविकालिदास कविता, श्रीहर्ष वाणी तनुः
पत्रं श्री जयदेव देववचनं श्रीविल्हणोक्तं सुमम्।
श्रीमत्पण्डितराज काव्यगरिमा यस्य प्रपूत फलं
जीव्याद्धन्त निसर्गजोऽयमभिराज राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।[1]

उपेन्द्रवज्रा –

लक्षण – उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।।

गण – ज,त,ज,ग,ग।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के प्रथम सप्तम, अष्टम व त्रयोदश सर्ग में उपेन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/118

।ऽ।ऽऽ।।ऽ।ऽऽ

अथ प्रभातोन्मुखरात्रिकाले
विनिद्रनेत्रा विगतं स्मरन्ती।
शुश्राव वाणीमलाऽनवद्या
कुतोऽपि सीता सहसैव दिव्यां।।[1]

वंशस्थ –

लक्षण – "जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ।"

गण – ज,त, ज, र।

महाकाव्य के द्वितीय, तृतीय व पंचदश सर्ग में वंशस्थ छन्द की छटा दिखाई देती है, यथा–

।ऽ।ऽ ऽ।।ऽ।ऽ।ऽ

दिने दिने सा ववृधे प्रभामयी
ह्यलोकसामान्यविकारसमीयुषी।
उपेक्षते स्नेहममन्ददीपिका
न वैधसी ह्यद्यकला चिरन्तनी।।[2]

वसन्ततिलका –

लक्षण – "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।।"

गण – त,भ,ज,ज,ग,ग।

महाकाव्य का सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है। इसके अतिरिक्त द्वादश, षोडश, एकोनविंश एवं विंश सर्ग के अन्तिम पद्यों में भी इस छन्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–13/1
2. वही–2/10

ऽऽ । ऽ । ।। ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

देव प्ररूढ महिमन् विनमद्दयालो

ज्ञातम्मया तदखिलं भवदेकमूलम्।

यावद्गुणा वनभुवां प्रभवेत् समृद्धि–

र्नासौ किमस्ति विभुतैव वसन्तकस्य।।[1]

वियोगिनी –

लक्षण – "विषमे ससजा गुरुः समे

सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।"

गण – विषम पाद – स, स, ज, ग

सम पाद – स, भ, र, ल, ग।

डॉ. मिश्र ने सम्पूर्ण पंचम सर्ग तथा द्वादश सर्ग के अन्त में इस छन्द का प्रयोग किया है, यथा–

।। ऽ । ।ऽ ।ऽ ।ऽ ।।ऽ ऽ ।। ऽ।ऽ।ऽ

हरिदश्वसमागमादृते, प्रभवेत्कश्शतपत्रवैभवे।

गुरुवर्य वशीकृताखिल! प्रणय प्रेम्णि भवान्यदीशते।।[2]

द्रुतविलम्बित –

लक्षण – "द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।"

गण – न,भ,भ,र।

महाकवि ने महाकाव्य के षष्ठ सर्ग की रचना द्रुतविलम्बित छन्द में की है। महाकाव्य के तृतीय, चतुर्थ, सप्तम, नवम एवं एकोनविंश सर्ग के अन्त में भी इस छन्द का प्रयोग दिखलाई पड़ता है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/13
2. वही–5/28

|| |S ||S| |S |S

लघु तृणं प्रतिकूलदिशं व्रजेत्

पवनघट्टनयाऽपि खलीकृतं।

सुदृढ़चित्तमहो रघुवंशिनां

न खलु किन्तु विसंवदति श्रियाम्।।[1]

अनुष्टुप् –

लक्षण – श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपंचमम्

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमम् दीर्घमन्ययोः।।

गण– प्रत्येक चरण में पाँचवाँ अक्षर लघु, छठा गुरु, दूसरे व चौथे चरण में सातवाँ अक्षर ह्रस्व एवं पहले व तीसरे चरण में सातवाँ अक्षर दीर्घ।

महाकवि ने सम्पूर्ण नवम सर्ग की रचना इसी सर्ग में की है एक उदाहरण दर्शनीय है–

|S S

दृष्ट्वा स्तनन्धयान् वत्सान्

|S|

प्रोषितान् प्रवेता›ताः।

|S S

सौरभेया इवातस्थु

|S|

र्महिष्यो हर्षविवेलाः।।[2]

भुजंगप्रयात –

लक्षण – "भुजंगप्रयात चतुर्भियकारैः।"

गण – य,य,य,य।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/27
2. वही–9/19

महाकवि ने दशम सर्ग में इस छन्द का प्रयोग किया है, यथा–

। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽऽ । ऽ ऽ

विहायान्यभार्यागृहाणि प्रजेशस्

तवाराधने योऽनिशं सिद्ध आसीत्।

स एवाधुना क्षीरमक्षिकामिव

त्वां क्षिपत्येव दूरे ततः स्तम्भितास्मि।।[1]

मैथिली –

लक्षण – मैथिलीरसजा सतौ जगगाः पदान्ता।।

गण – र,स,स,ज,ग,ग।

महाकाव्य के एकादश सर्ग में महाकवि ने स्वनिर्मित मैथिली छन्द का प्रयोग किया है, यथा –

ऽ । ऽ ।। ऽ। ऽ। । ऽ। ऽ ऽ

चन्द्रिका विधुसंगतैव दधत्प्रकाशा

मेघवारितवैभवा कुमुदाभिनन्या।

मैथिली प्रययौ वनं रघुनाथनाथा

सौधसौख्यमपास्य कान्तपदानुरागा।।[2]

पृथ्वी –लक्षण – "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरूः।"

गण – ज,स,ज,स,य,ल,ग।

महाकाव्य का चतुर्दश सर्ग पृथ्वी छन्द में उपनिबद्ध है। एक उदाहरण यहाँ दर्शनीय है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10 / 39
2. वही–11 / 1

। ऽ । ।। ऽ। ऽ । ।। ऽ । ऽ ऽ । ऽ

विषस्य विषमौषधम्, तदिति मातलिस्मारितो,

विरञ्चिरचितं पुरा ननु शचीपतेः श्रेयसे।

अगस्त्यकृपयाऽर्जितं स्फरदमोघ पैतामहा–

–भिधं दहदिषुं ततो रघुपतिः क्रुधा सन्दधे।।[1]

मालिनी –लक्षण –ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

गण – न,न,म,य,य।

डॉ. मिश्र ने षोडश सर्ग को मालिनी छन्द में निबद्ध किया है साथ ही प्रथम, एकादश, त्रयोदश, पंचदश, सप्तदश व एकविंश सर्ग के अन्तिम पद्यों में यह छन्द दृष्टिगत होता है।

।। ।।।। ऽ ऽ ऽ । ऽऽ । ऽ ऽ

अथनिहतदशास्योऽन्वास्यमानः कपीन्द्रैः

सुरसदसि विपूतां मैथिलीं प्राप्य रामः।

प्रजिगमिषुरयोध्यां सोदरस्नेहविद्धः

सपदि सदयमुचे राक्षसेन्द्रं प्रपन्नम्।।[2]

स्यन्दिका –लक्षण – "स्यन्दिका हि रसौ यरौ श्रान्ता पदे।।"

गण – र,स,य,र।

महाकवि ने महाकाव्य के सप्तदश सर्ग में स्वनिर्मित स्यन्दिका छन्द का प्रयोग किया है, यथा–

ऽ। ऽ । । ऽ । ऽऽ ऽ । ऽ

राघवे वसुधा प्रशासत्य×जसा

स्थापितं परितोऽपि सौराज्यं नवं।

ईति भीति विमोचिताऽऽयोध्या

बभौ नायिकाश्रितवल्लभेव प्रोन्मदा।।[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–14 / 84
2. वही–16 / 1
3. वही–17 / 1

उपजाति –

लक्षण – "अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौयदियावुपजातयस्ताः।

इत्थं किन्लान्यास्वापि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।"

जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा या उपेन्द्रवज्रा इन दो छन्दों का या इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा से भिन्न अन्य (दो सजातीय) छन्दों का मिश्रण हो, वह उपजाति छन्द कहलाता है।

महाकाव्य के अष्टादश सर्ग में इस छन्द का प्रयोग दर्शनीय है–

ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।। ऽ। ऽऽ

दाम्पत्यमस्ति प्रणयैकमूलं = इन्द्रवज्रा

। ऽ।ऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

विपर्यये तन्न बिभर्ति संज्ञाम्। = उपेन्द्रवज्रा

रागानुबन्धे त्रुटिते न काऽपि

कस्यापि भार्या न च कोऽपि भर्ता।।[1]

इन्द्रवज्रा –

लक्षण – "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।।"

गण – त,त,ज,ग,ग।

महाकाव्य के सप्तम सर्ग के अन्त में इस छन्द का प्रयोग दिखलाई देता है, यथा–

ऽ ऽ । ऽ ऽ।। ऽ। ऽऽ

अर्धांगिनी दाशरथेर्बभूव

प्रभामयी भूमिसुता प्रियेण।

खंजीकृते शम्भुशरासनेऽस्मिन्

स्वयंवरेणैव जगत्समक्षम्।।[2]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/1
2. वही–8/87

मन्दाक्रान्ता –

लक्षण –"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।।"

गण – म,भ,न,त,त,ग,ग।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के चतुर्थ व षष्ठ सर्ग के अन्त में इस छन्द का प्रयोग मिलता है, यथा–

ऽ ऽ ऽऽ ।। ।। ।ऽऽ।ऽ ऽ।ऽऽ

तस्यां रात्रौ मनसिज कथानायिकाऽकृष्टचेताः
काकुत्स्थोऽसौ क्षणमपि दृशौ मीलितुं नो शशाक।
स्मारं स्मारं जनकतया वीतनिद्रं त्रियामां
रामोऽनैषीकथमपि च तां सोदराद् गोपितात्मा।।[1]

शिखरिणी –

लक्षण – "रसै रूद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।।"

गण – य,म,न,स,भ,ल,ग।

महाकाव्य के पंचम, अष्टव नवम सर्गों के अन्त में इसका प्रयोग दर्शनीय है।

यथा– ।ऽऽऽ ऽऽ । ।। ।।ऽऽ ।।।ऽ

गता सीता दूरं, स्वसभिरथ सार्धं विधुमुखी,
समारोहप्येवं परिणयविधेः पूर्तिमभजेत्।
विदेहोऽसौ किन्तु क्षपितचितिबुद्धिव्यतिकरो
न निद्रातुं रात्रौ क्षणमपि शशाक क्वचिदपि।।[2]

हरिणी –

लक्षण – "नसमरसलगाः षड्वेदैर्हयैर्हरणी मता।।"

गण – न,स,म,र,स,ल,ग।

'जानकीजीवनम्' के दशम सर्ग के दो पद्य हरिणी छन्दोबद्ध हैं, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–4/46
2. वही–8/77

।।।।।ऽ ऽऽ ऽ ऽ ।ऽ। ।ऽ।ऽ

अमृतरसने वाणि! श्रोतं विधूय मदानने

जननि! निवस क्लेशं मा गा मनागिति याच्यते।

अवनि तनुजासौख्याने जहासि न लेखनीं

समधिकतरं साह्यं कृच्छ्रे विधाय विभावय।।[1]

महाकाव्य में प्रयुक्त विविध छन्दों के अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि महाकवि ने षष्ठ व एकोनविंश सर्ग में द्रुतविलम्बित छंद का, प्रथम, अष्टम, त्रयोदश सर्ग में उपेन्द्रवज्रा का, द्वितीय, तृतीय, पंचदश सर्ग में वंशस्थ छन्द का पंचम, द्वादश सर्ग में वियोगिनी तथा चतुर्थ व विंश सर्ग में वसन्ततिलका का सर्वाधिक प्रयोग किया है। महाकवि ने सर्गान्त में छन्द परिवर्तन तो किया है लेकिन सर्गान्त के पूर्व के दो, तीन श्लोकों में भी छन्दों का परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10/86

5. भाषा शैली –

भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का साधन है तो शैली भावों के अभिव्यक्ति की पद्धति (प्रकार मात्र) है। शैली कवि की प्रकृति के अनुसार निःसृत होती है। कवि हृदय अर्थात् कवि की प्रकृति जैसी होगी शैली वैसी ही होगी। कवि परुष हृदय तो शैली भी परुष होगी। कवि कोमल हृदय है तो शैली सुकुमार, कवि भावुक है तो शैली भावुकता से पूर्ण, यदि कवि तार्किक प्रकृति का है तो शैली तर्कपूर्ण होगी।

महाकवि के महाकाव्य में महाकवि की प्रकृति के अनुसार कोमल (सुकुमार) भाषा शैली के दर्शन होते हैं। महाकाव्य में सर्वत्र सरलतम भाषा में पद्यों का निबन्धन है, सुधी पाठक को कहीं भी अर्थग्रहण करने में जटिलता का आभास नहीं होता। महाकवि ने सरलता व सहजता के साथ अपने वर्णनों में कल्पनाशीलता व यथार्थता का उपयुक्त सामंजस्य बिठाकर सहृदय हृदय में झंकृति उत्पन्न कर काव्य में चमत्कृति का सफल समावेश किया है।

सम्पूर्ण महाकाव्य में महाकवि की भाषा में उच्चकोटि की कल्पनाशीलता के दर्शन होते हैं, यथा–महाकवि द्वारा नवयुवतियों के परिभ्रमण से सम्भ्रमित मनोवृत्ति वाले भ्रमर की उड़ान की समानता भ्रमनिर्मित कामदेव की प्रत्यंचा से करना, कल्पनाशक्ति की उच्च उड़ान का परिचायक है–

युवतिसंचरणोद्धुरमानसा मधुलिहस्सभयं वियदाश्रिताः।
मदनचाप गुणोऽलिभयोऽर्दितो यदवलोक्य सुरैरिति कल्पितम्।।[1]

कल्पना की ऊँची उड़ान के बाद भी भाषा में कही भी क्लिष्टता का अनुभव नहीं होता। महाकवि ने दीर्घसमास युक्त बहुल पदों का प्रयोग नहीं किया है, वैदर्भी रीति के साथ प्रसाद गुण का प्रयोग बहुलता से मिलता है। महाकाव्य में यथावसर माधुर्य एवं ओजगुण का भी प्रयोग दिखलाई पड़ता है। रामसीताविषयक प्रणय वर्णन में माधुर्य गुण की मधुरिमा संदर्शनीय है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/49

प्रभातकुन्दसंकोचा लोल्वत्सतरीगतिः।
त्रपाभारनिरूद्धाऽपि कान्तानुनयचंचला।।
शनैस्दंकमासाघ न किंचिदपि कुर्वती।
अमन्दानन्दसन्दोहं लेभे प्रियतमोद्यमैः।।[1]

महाकविकृत सौन्दर्य वर्णन भी अनुपम ही है। राम–सीता विवाह अवसर पर जानकी का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक व सहजतापूर्वक किया गया है। महाकवि ने विवाह अवसर पर गाए जाने वाले लोकभाषा के गीतों का संस्कृत में निबन्धन किया है, वह साहित्य जगत में अनुपम प्रयोग है। महाकवि कृत उत्तरप्रदेश के पूर्वांचल में गाये जाने वाले विवाह गीत भाषा शैली की नवीनता की दृष्टि से संदर्शनीय है–

काँपइ लोटा और काँपइ थारी, काँपई कुसेह कइ धार हो।
मँडए में काँपइँ बाबा हो कवने राम करथें करिनवाँ कऽदान।।[2]

प्रस्तुत लोकगीत का महाकवि द्वारा किया गया संस्कृत निबन्धन निम्न प्रकार है–

चलो निपोऽथावपनं चलं तत्कुशाग्रधाराऽपि विचंचलाऽसौ।
चलो वधूटीजनकोऽपि कुर्वन् सुतार्पणं मण्डपके विभाति।।[3]

महाकवि द्वारा किए गए इस तरह के नवीन प्रयोगों के बाद भी कहीं भी भाषा के प्रवाह में विच्छिन्नता नहीं आ पाई है सर्वत्र प्रवाहमयी भाषा है।

डॉ. मिश्र लिट् लकार के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं, महाकाव्य में पदे–पदे लिट् लकार का प्रयोग किया गया है यथा–ययाचे, ननन्द, अवाप, रुरोध आदि। अपने अगाध पाण्डित्य एवं उर्वर कल्पनाशक्ति के द्वारा महाकवि ने विविध रसों का चारू सन्निवेश महाकाव्य में किया है जिसका आस्वादन कर सहृदय पाठक को आत्मानंद की अनुभूति होती है। यद्यपि महाकाव्य का अंगीरस शान्त है तथापि अवसरानुकूल श्रृंगार, वीर, करुण आदि अन्य रसों का भी प्रयोग महाकाव्य में मिलता है। महाकवि

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/62, 63
2. वही–पृ.सं.–102
3. वही–8/32

कृत हास्य रस का नवीन प्रयोग पाठक हृदय को गुदगुदाने वाला है। लक्ष्मण द्वारा चुपके से आकर सीता को बकोट कर उनके उजले गालों पर कालिख, कीचड़ व स्याही लगाने व भाँगड़ा नाचने आदि में हास्य रस की अभिव्यंजना दर्शनीय है–

यदा च वामनीभूय पृष्ठतो नीरवैः पदैः।
समाक्रम्य स सौमित्रिभार्तृजायां प्रगृह्य च।।
कपोलमण्डले गौरे कज्जलं कर्दमं मसीम्।
लिम्पति स्म भृशं नृत्यन् चर्चरीं कामिनीप्रियां।।[1]

महाकवि ने वैदर्भी रीति से युक्त सरल, सहज भाषा में नारी की सम्पूर्ण अवस्थाओं का चित्रांकन करते हुए, नारी गरिमा को प्रतिष्ठित किया है, जो महाकवि का मूल उद्देश्य है। कवि वर्तमान समय में हो रही नारी अवमानना से आहत हैं, वे जनमानस में अपने सरल, सहज शब्दों द्वारा नारी सम्मान की भावना का संचार करना चाहते हैं एक ही पद्य में महाकवि ने नारी पद की महत्ता को प्रकट किया है जो महाकवि के भाषा आधिपत्य का सूचक है, यथा–

सुतेयं पत्नीयं भवनवधुकेयं च भगिनी
ननान्देयं श्वश्रुस्तनयदयितेयं च जननी।
सखी नप्त्री पौत्री किमधिकमहो गौरवपदं
न किं धत्ते कन्या द्रुहिणरचनायामनुपमा।।[2]

इस तरह के श्रुतिमधुर शब्दों से युक्त कोमलकान्त पदावली के द्वारा महाकवि ने जनमानस में स्त्री चेतना की जागृति पैदा की है। प्रत्येक पद्य में भाषा की उत्कृष्टता, वैभव तथा नवीनता दृष्ट्व्य है। प्रत्येक शब्द अपने में गूढ़ार्थ लिए हुए है। महाकवि ने महाकाव्य में अनेक स्थलों पर ऐसे पद्यों का संयोजन किया है जो अपने गूढ़ार्थ के द्वारा जीवन की वास्तविकता को हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। यथा–रघुनन्दन के प्रति विश्वामित्र की यह उक्ति कि समय के अनुसार ही प्रयत्न प्रशंसनीय होता है क्योंकि फसल के झुलस जाने पर अतिशय वृष्टि से क्या लाभ होगा, जगत के गूढ़ार्थ का प्रतिपादक है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/90, 91
2. वही–8/80

उत्तिष्ठ भो राघव रामभद्र! विपद्यतेन्वेष महीमहेन्द्रः।

प्रवर्षणैः किं ज्वलिते हि शस्ये कालोचितंचैव विभाति यत्नैः।।[1]

कविवर्य ने महाकाव्य में गूढ़ार्थ को प्रतिपादित करने वाली सूक्तियों को स्थान–स्थान पर अनुस्यूत किया है। महाकाव्य में प्रयुक्त कुछ सूक्तियाँ निदर्शन स्वरूप निम्नवत् हैं–

1. "अमोघपथ्यौषधि सेवनेन किं न यान्ति कान्तिं द्रुतमेव नीरूजः।।"[2]

   अमोघ पथ्य तथा औषधि के सेवन से क्या नीरोग व्यक्ति, वेगपूर्वक कान्ति (तेजस्विता) नहीं प्राप्त कर लेते?

2. "स्वकर्मपाकं भजते मनुष्यः।।"[3]

   मनुष्य अपने ही कर्म का परिणाम भोगता है।

3. "स्वसन्ततिः प्रीतिकरी न केषां।"[4]

   अपनी सन्तति किन्हें प्रीतिकर नहीं होती?

4. "ह्यचिन्तितं किन्तु विभातिभाग्यम्।।"[5]

   भाग्य का फल तो अतर्कित रूप से ही वैभव प्रदान करता है।

5. "भवेन्न कस्यात्मगुणेषु वासना।।"[6]

   अपने गुणों में भला किसका अनुराग नहीं होता।

6. कोलाचितं प्रकटयन्ति वचो विधिज्ञाः।।[7]

   व्यवहार वेत्ता लोग उचित अवसर पर ही वाणी प्रकट करते हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/56
2. वही–2/5
3. वही–1/24
4. वही–1/26
5. वही–1/46
6. वही–3/31
7. वही–4/27

7. "हरिदश्व समागमादृते प्रभवेत्कश्शतपत्रवैभवे।।"[1]

दिनमणि सूर्य के उदय के अतिरिक्त भला कमलों को विकसित करने में कौन समर्थ हो सकता है?

8. "न खलु जातु जहातु विधुम्मुदी न च शिखा शिखिनो विमुखायते।।"[2]

निश्चय ही चन्द्रिका कभी चन्द्रमा का परित्याग नहीं करती और न ही शिखा दीपक से मुँह मोड़ती है।

9. "सपदि को युवको न निबद्धयते चलदपांगतरंगितरंगणैः।।"[3]

चंचल नेत्रकोणों के रोमांचकारी विलास से भला कौन नवयुवक तत्काल नहीं बाँध लिया जाता है।

10. "व्यपोह्यते नो तमसां हि भारः खद्योतपुंजै रविभाऽपनेयः।।"[4]

सूर्य की प्रभा से दूर करने योग्य अन्धकार राशि जुगुनुओं की टोली से नहीं हटाई जाती।

11. "धनं भवत्येव सुताऽन्यदीयं।"[5]

बेटी तो पराया धन होती है।

12. "निसर्गं खलीकृत्य किंचिन्न लोके क्षणं शोभते जीवितं वा जडं वा।।"[6]

निसर्ग (प्रकृति) की अवमानना करके कोई भी वस्तु लोक में प्रतिष्ठित नहीं हो पाती है–चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन।

13. "न विग्रहः क्वचित् प्रजहाति प्रतियातनां निजाम्।।"[7]

भला शरीर भी कभी अपनी परछाई को त्यागता है?

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/28
2. वही–6/51
3. वही–6/43
4. वही–7/54
5. वही–8/68
6. वही–10/7
7. वही–12/24

14. "न दूनोति विशिष्य चन्द्रिकामुपरागो विधुमप्यमत्यलम्।।"[1]

ग्रहण केवल चन्द्रिका को ही कष्ट नहीं देता है, अपितु चन्द्रमा को भी अतिशय धर्षित करता है।

15. "निन्दितोऽपि शृगालकैः किं केसरी दैन्यमेति।"[2]

सियारों द्वारा निन्दित होने पर भी क्या सिंह दैन्य का अनुभव करता है।

16. "क इह जगति भुङ्क्ते सौख्यमत्यन्तमिद्धो।।"[3]

अतिशय ऐश्वर्यशाली होते हुए भी इस संसार में कौन जीवनभर सुख भोगता है?

17. "सम्भाव्यते नैव गुणप्रतीतिः स्फुटाऽपरेषां निजदोषदैर्घ्यात।।"[4]

अपने दोषों की दीर्घता के कारण, दूसरों के गुणों की असन्दिग्ध प्रतीति भी सम्भव नहीं हो पाती।

18. "अतिययुस्समयो दुरतिक्रमः।"[5]

समय दुरतिक्रम है।

19. "कोऽतिजवं जगति प्रवरोऽप्यवरोद्धुमिमं समयम्।।"[6]

अत्यन्त क्षिप्रगति वाले समय को रोक पाने में भला कौन श्रेष्ठ व्यक्ति इस संसार में समर्थ हुआ है।

महाकवि द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियाँ भी कवि की शैली में चमत्कार का आधान करने वाली हैं, यथा–

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–12/39
2. वही–17/50
3. वही–11/116
4. वही–18/59
5. वही–19/43
6. वही–21/28

"किमीहतेऽन्धो नयने ननुद्वे।।"[1]

अंधा क्या चाहे दो आखें।

तथा "विषस्य विषमौषधं।"[2]

विष की दवा विष होती है।

महाकाव्य में विविध अलंकारों का व्यापक प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। परन्तु अलंकार प्रयोग से कहीं भी भाषा में दुरुहता नहीं झलकती, सर्वत्र अलंकार कविता कामिनी के शोभातिशायक हैं। कवि काव्य में पदे–पदे अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त उपमा व उत्प्रेक्षा भी कवि को अतिशय प्रिय रहे हैं। दीपक, स्वभावोक्ति, यमक, विभावना आदि भी महाकाव्य के शोभावर्धक एवं कविता वनिता के स्वरूप को हृदयावर्जक बनाने वाले हैं।

छन्दप्रयोग की दृष्टि से भी मिश्रकाव्य अद्वितीय है। महाकवि ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है जिसका उल्लेख छन्द प्रकरण में किया जा चुका है। इसके साथ ही महाकवि ने स्वनिर्मित नूतन मैथिली व स्यन्दिका छन्द का प्रयोग कर शैली में नवीनता को जन्म दिया है। महाकवि के महाकाव्य में नाद का सौन्दर्य है। श्रुतिमधुर गायन में निष्णात महाकवि मिश्र रचित 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का अन्तिम सर्ग गेयात्मकता का सुन्दर निदर्शन है।

भाषा शैली की दृष्टि से महाकाव्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि कवि की भाषा सरल, सहज, कोमलकान्त पदावली से युक्त है, यथावसर छन्द, रीति गुण, अलंकारादि का कुशल निबन्धन महाकवि ने किया है, मौलिकता के साथ नवीन वर्ण्य विषय का अबाध गति से प्रयोग करना महाकवि की विशेषता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–13/70
2. वही–14/84

6. वर्णन कौशल –

किसी भी काव्य अथवा नाट्य का वर्णन कौशल कवि की कल्पनाशीलता, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तथा उसकी प्राचीन व अर्वाचीन विषय सम्बन्धित अनुभूतियों पर पूर्णतः आश्रित होता है। वर्णन कौशल का सम्बन्ध कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण तथा वस्तुजगत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन से जुड़ा होता है। इसी दृष्टि से महाकवि मिश्र ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति से नव–नवोद्भावनाओं को अत्यन्त सरलता व सहजता के साथ पाठकों के मानस पटल पर उकेरा है। महाकवि ने महाकाव्य में अनेक विषयों एवं प्रसंगों का उल्लेख किया है जो कवि की उत्कृष्ट कल्पना शक्ति व वर्णन कौशल के परिचायक हैं। प्रत्येक सर्ग में घटनाक्रम के संदर्भ में कवि कौशल के विविध आयाम उपलब्ध होते हैं। जिनका सुन्दर चित्र महाकवि ने चित्रित किया है। कवि की वर्णन कुशलता के कुछ उदाहरण यहाँ दर्शनीय हैं–

महाकवि ने अपनी कल्पनाशीलता से इच्छित वर प्राप्ति हेतु उत्तरप्रदेश में कन्याओं द्वारा किए जाने वाले हरतालिका व्रत का मनोरम चित्रण किया है। इस चित्रण में महाकवि ने कन्याओं द्वारा की जाने वाली विविध क्रियाओं यथा–मिट्टी के लौंदे में जौ बोना, जौ के पौधों को भाइयों की शिखा पर बाँधना, पार्वती की पूजा करना आदि का सुन्दर वर्णन किया है। इसी वर्णन से सम्बन्धित एक पद्य यहाँ द्रष्टव्य है जिसमें पार्वती पूजा के बाद सखियाँ सीता से मनोऽनुकूल वर मांगने को कहती हैं–

अपूपुजद्धैमवतीं सहालिभिः प्रदोषकाले स्वसृभिर्विमण्डिता।
वरन्नु याचस्व मनोरमं शुभे! सखीभिरुक्तेतिललास सुस्मिता।।[1]

कविवर्य ने फागुन मास में आने वाले होली उत्सव का भी सुन्दर वर्णन किया है। होली पर देवर अपनी भाभी के साथ विशेषरूप से नवविवाहिता भाभी के साथ हँसी–मजाक करते हैं। वास्तविक जीवन के इन्हीं खट्टे–मीठे अनुभवों को महाकवि ने अपनी कल्पना से उकेरा है। महाकवि ने अयोध्या में होली का रमणीय चित्रांकन किया है। एक पद्य दर्शनीय है जिसमें

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–2/41

लक्ष्मण अपनी भाभी को जबरन पकड़कर उजले गालों पर कालिख, कीचड़ और स्याही चुपड़ देते हैं, उद्यमी देवर को सबक सीखाने के मन से भाभियाँ भी नींद में बेखबर अपने लाड़ले देवर के मुख को टेढ़ी–मेढ़ी मूछों और दाढ़ी से सजा देती है एवं उनके जागने पर ठहाका मारकर उनकी हँसी उड़ाती है, उन पर अनेक प्रकार के हास्यमिश्रित व्यंग्य करती हैं, यथा–

यथा च माण्डवी सुप्तं लक्ष्मणं प्रीतदेवरम्।
श्मश्रुकूर्चादिभिर्वक्रैश्चित्रितवत्यनर्गलम्।।
दर्शं दर्शं तथा बोधे भण्डवेषं तदीयकम्।
अट्टाहासैश्च ताः सर्वाः प्रत्युज्जग्मुस्तमंजसा।।[1]

अन्तः सत्त्वा सीता के मनोविनोद प्रसंग में भी महाकवि ने इसी तरह के हँसी–ठिठोली से परिपूर्ण वर्णनों की अभिव्यंजना की है जो महाकवि के वर्णन कौशल की उत्कृष्टता के उदाहरण हैं। लक्ष्मण व अन्य देवर गर्भ के कारण मोटे पेट वाली सीता को छेड़ते हुए कहते हैं कि भाभी! आज बहुत ज्यादा खा लिया है क्या? तुम्हारा चिपका हुआ पेट भारी–भरकम दिख रहा है। बहुत मोटी मत बनो! नहीं तो बहुत जल्दी ही बूढ़ी दिखाई पड़ने लगोगी–

भक्षितं विपुलं किमार्ये? येन ते स्थूलमद्य हि लक्ष्यते नम्नोदरम्।
तुन्दिला भव माऽन्यथा सन्द्रक्ष्यसे सत्वरं स्थविरा ततोऽहं वेदये।।[2]

वाक्पटु सीता भी अपने देवरों को आड़े हाथ लेती हुई कहती है कि जब तुम्हारी पत्नियाँ गर्भभार से मोटी–मुटल्ली होंगी तब मैं तुम दोनों से मोटाई का कारण पूछूँगी, यथा–

सा क्वचिन्निजगाद सोल्लुण्ठं च तावुर्मिलां श्रुतकीर्तिमालक्ष्य द्रुतम्।
स्थूलतामनयोर्द्वयोः सम्प्राप्तयोः कोविदौ! निभृतं तदा प्रक्ष्याम्यहम्।।[3]

कवि पु›व डॉ. मिश्र ने सीता, लक्ष्मण, उर्मिला आदि की आपसी नोकझोंक तथा हास–परिहासपूर्ण सम्बन्धों द्वारा भारतीय समाज में प्रचलित देवर–भाभी, देवरानी–जेठानी तथा पति–पत्नी के पवित्र व विनोद प्रधान सम्बन्धों की मधुर अभिव्यक्ति की है, जो महाकवि के वर्णन चातुरी के परिचायक हैं।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/93,94
2. वही–17/15
3. वही–17/18

महाकवि के वर्णनों की यह विशेषता है कि इनके वर्णन लोक जीवन से सम्बन्धित हैं। राम–सीता के विवाह अवसर पर महाकवि कृत विविध परम्पराओं व रीति–रिवाजों का वर्णन कविवर्य के लौकिक जीवन से सम्बन्धित अनुभवों की परिपक्वता के सूचक हैं। बारात–स्वागत से लेकर नववधू की विदाई व श्वसुरालय में नववधू के स्वागत तक किए जाने वाले अनेक लोकाचारों का मनोहारी चित्रण महाकवि ने प्रस्तुत किया है।

विवाह प्रसंग में महाकवि ने विवाह में लिए जाने वाले सात फेरों का काव्यमय रोचक वर्णन किया है जो अद्वितीय कल्पना कौशल का परिचायक है। डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने भी 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में सप्तपदी का उल्लेख किया है जिसके अनुसार वर एवं वधू को साथ–साथ सात पग चलना होता है[1] महाकवि ने सप्तपदी के वर्णन में भी अपनी कल्पनाशक्ति से नवीनता का संचार किया है। महाकवि ने सात फेरों का संस्कृत तथा लोकभाषा दोनों में निबन्धन किया है, यथा–

सात फेरों का संस्कृत निबन्धन –

भ्रमिर्गतेयं प्रथमा समाप्तिं तवास्मि सम्प्रत्यपि तात! साऽहम्।
भ्रमिर्द्वितीयाऽपि मम व्यतीता तवैव सम्प्रत्यपि तात! साऽहम्।।
भ्रमिस्तृतीयाऽप्यधुनोपपन्ना भवामि सम्प्रत्यपि तात! तेऽहम्।
भ्रमिश्चतुर्थी विगताऽधुनाऽपि तवैव पाल्याननु तात! मान्या।।
भ्रमिर्व्यतीता खलु पंचमीयं तवैव कुक्षौ प्रभवामि तात।
इयंच षष्ठी भ्रमिरप्यतीता सुतां निजामेव कुरुष्वदीनाम्।।
प्रपूर्यते सम्प्रति सप्तमीयं भ्रमिर्मदीया सह दुर्लभेण।
बतास्मि तात! च्युतमातृसौख्या परस्य वित्तंत्वधुनैव जाता।।[2]

सात फेरों का लोकभाषा में निबन्धन –

पहिली भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!
दुसरी भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!।

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास–डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे–2 पृ.सं.–304
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8 / 37–40

तीसरी भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!
चउथी भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!!
पँचईं भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!
छठई भउँरिया पूरन भई बाबा! अजहूँ तोहारिनि हो!!
सतईं भउँरिया पूरन भई बाबा! भइलूँ पराइनि हो!![1]

सात फरों की पूर्ति के पश्चात् महाकवि ने राम द्वारा सीता की माँग को पवित्र सिन्दूर से अलंकृत करने का वर्णन किया है जो महाकवि के लोक जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है क्योंकि इस रीति का उल्लेख न तो रामायण में मिलता है और न ही 'धर्मशास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में पी.वी. काणे ने इसको विवाह विधियों के अन्तर्गत वर्णित किया है अतः यह लोक जीवन में प्रचलित रीति है जिसको महाकवि ने अपनी कल्पना कुशलता से यहाँ वर्णित किया है–

विवाहसप्त भ्रमिपूरणान्ते गुरोर्निर्देशः किल रामभद्रः।
पवित्रसिन्दूर भरैस्सहेलं बुभूष सीमन्तमथोर्विजायाः।।[2]

महाकवि ने महाकाव्य में अपनी वर्णन चातुरी से विविध रीति–रिवाजों के अनुसार ही लोकगीतों को स्थान–स्थान पर अनुस्यूत किया है, जो कविवर्य का अनूठा प्रयोग है।

'हरतालिका' व्रत के अवसर पर महाकवि ने 'कजली' गीतों का उल्लेख किया है। 'कजली' गीत प्रायः वर्षा ऋतु में शिव–पार्वती अथवा राधा–कृष्ण की पूजा के अवसर पर गाए जाते हैं। महाकवि ने मिथिला प्रदेश की कुँवारी कन्याओं द्वारा इस गीत के गाए जाने का वर्णन किया है, यथा–

विधाय युग्मं मिथिलाकुमारिका इतस्ततोऽन्वेषणरूपणान्विताः।
जगुर्मनोज्ञां कजरीमुपोषिताः परिभ्रमन्त्यो गृहतो गृहम्मुदा।।[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–पृ.सं.–103
2. वही–8/43
3. वही–2/39

लव–कुश जन्मोत्सव पर महाकवि ने महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले 'सोहर' गीतों का उल्लेख किया है। सोहर गीत सामान्यतया किसी भी मांगलिक अवसर (विशेषकर पुत्रजन्मोत्सव) पर लोक में महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं।[1]

महाकवि लोक चित्रणों में सिद्धहस्त हैं। मिथिला मार्ग में गाँव–गिराँवों के विविध दृश्यों तथा जन सामान्य के विविध क्रिया–कलापों के वर्णन में महाकवि की उच्च कल्पनाशक्ति के दर्शन होते हैं। कविवर्य ने मिथिला मार्ग के दोनों ओर किसानों द्वारा की जाती हुई बुआई, सिंचाई, जुताई व निराई का वास्तविक वर्णन किया है। इसी तरह मिथिला के घरों के भीतर से उठती हुई, मधुर गीतों से अनुप्राणित चक्की पीसने की ध्वनियों का स्वाभाविक वर्णन महाकवि ने किया है।[2]

मिथिला मार्ग में ही महाकवि ने घूंघट काढ़े हुए, दुल्हे के हाथ में विद्यमान साड़ी के आंचल वाली, कलाई में खनखनाते कंगन व चूड़ियों की मिठासभरी ध्वनि वाली, महिलाओं के झुण्ड से घिरी हुई तथा मनोहर गीतिकाओं में दबे हुए अस्फुट स्वर वाली नवोढा का अत्याकर्षक चित्रण किया है–

कृतरम्य शिरोऽवगुण्ठनां वरहस्ताहितशाटिकांचलां।
मणिबन्धविलोलकङ्कणां मृदुशिंजार वह्रष्टहंसकाम्।।
प्रमादिनिकुरम्बरमण्डितां कलगीताभिभवन्मितस्वराम्।
उपभूधर नन्दिनीगृहं ह्युपायन्तीं वधूकामश्यताम्।।[3]

राम व लक्ष्मण की मुख–माधुरी से ठगी हुई पनिहारिन व ग्वालिन का भी सुन्दर स्वाभाविक वर्णन महाकवि ने स्वकल्पना कौशल से किया है।[4]

महाकवि ने अपनी वर्णन प्रतिभा से महाकाव्य में प्रकृति के विविध उपादानों के अत्यन्त सुन्दर चित्र उकेरे हैं। एक पद्य दर्शनीय है जिसमें कविवर्य ने प्रयाग दर्शन में गंगा की समानता राजहंसी से तथा यमुना की समानता चितकबरी देह वाली मयूरी से की है–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–19 / 3
2. वही–5 / 6,7
3. वही–5 / 10,11
4. वही–5 / 13,14

"अमृतधवलतोया राजहंसीव गंगा शबलतनुमयूरीसन्निभा भानुकन्या।

सरभसमिह बद्ध्वा देवि! गाढोपगूढं चिरविरतिजखेदं साधु रिक्तः प्रगाढः।।"[1]

राम–रावण युद्ध प्रसंग में महाकवि ने अपनी कल्पनाशक्ति से अनेक रोमांचक वर्णन किए हैं। राम के शर–प्रहारों से निर्मित घावों से बहती हुई धारा वाले रावण की समानता महाकवि ने विकसित पलाश के पुष्प से की है, जो महाकवि की वर्णन चातुरी का परिचायक है, यथा– **रघूत्तमशरक्षतप्रवहमानरक्तश्रवैः।**

प्रफुल्लितपलाशतामुपगतो रणे रावणः।।[2]

अन्ततः कहा जा सकता है कि अभिराज जी ने कुशल ववर्णन, यथोचित चित्रण आदि के माध्यम से अपनी अप्रतिम प्रतिभा से सीता निर्वासन का सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है। पूरे महाकाव्य का यही प्राणतत्व है। 20वीं शताब्दी के कवि की शैली अनायास हमें संस्कृत के श्रेष्ठ कवियों का स्मरण करा देती है। यही महाकवि की सिद्धि का सबसे बड़ा प्रभाव है। महाकाव्यलक्षणानुसार 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का सूक्ष्मावलोकन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि यह महाकाव्य प्राचीन व अर्वाचीन सभी लक्षणों की कसौटी पर अक्षरशः खरा उतरता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में यह अप्रतिम सुन्दर रचना है, जो महाकाव्यत्व लक्षणों से परिपूर्ण है। यह रचना अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की एक महान् उपलब्धि है।

◈◈◈

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–16/45
2. वही–14/83

षष्ठ अध्याय

रामकथा को अभिराज राजेन्द्रमिश्र का योगदान

1. रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदानः

(सीता निर्वासन के विशेष सन्दर्भ में)

प्रस्तुत शोध प्रबंध के तृतीय अध्याय 'रामकथा आधृत महाकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण' में हमने ईसा पूर्व. प्रथम शती से लेकर 21वीं शताब्दी तक रामकथा आधृत महाकाव्यों का विवरण प्रस्तुत किया है। इन विवरणों से ज्ञात होता है कि रामकथा आधृत शताधिक महाकाव्य संस्कृत साहित्य में महाकवियों द्वारा प्रणीत किए गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकथा की सुदीर्घ परम्परा संस्कृत साहित्य जगत में उपलब्ध होती है। परन्तु मेरे द्वारा अधीत महाकाव्यों में से किसी भी महाकवि के महाकाव्य में 'सीता निर्वासन प्रसंग' का ईदृशी सुन्दर समाधान देखने को नहीं मिलता है जैसा कि महाकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में उपलब्ध होता है। यहाँ तक कि डॉ. दशरथ द्विवेदी जी ने भी 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य की रचना की है परन्तु इस महाकाव्य में भी सीता निर्वासन प्रसंग रामायण के उत्तरकाण्ड के समान ही वर्णित है। संस्कृत साहित्य जगत में डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी प्रथम महाकवि हैं जिन्होंने सदियों से अनुत्तरित सीता निर्वासन प्रसंग का उत्तमोत्तम समाधान अपने महाकाव्य में प्रस्तुत कर अभिनव प्रस्थान परम्परा का श्रीगणेश किया है। संस्कृत रामकाव्य परम्परा में नूतन प्रस्थान परम्परा का शुभारम्भ कर अपना अविस्मरणीय अवदान देने वाले महाकवि अभिराज जी का रामकथा को योगदान विषय पर चर्चा करने से पूर्व मेरे मन्तव्य में निम्न तथ्यों का विवेचन करना अत्यावश्यक है–

'**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता**'[1] तथा '**सती न देशेऽत्र विपद्यते यत्**'[2] प्रभृति सूक्तियाँ वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक भारतवर्ष में नारी की उन्नत स्थिति की सूचक हैं। उपरोक्त सूक्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस

---

1. मनुस्मृति–3/56
2. उत्तरसीताचरितम्–डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी–9/28

देश में वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री के प्रति सम्मान एवं पूजा की भावना हो, जहाँ नारी को शक्ति का रूप माना जाता हो, वहाँ सीता जैसी सती–सावित्री, पतिपरायणा, धर्मपरायणा, कर्त्तव्यपरायणा, परमपावनी स्त्री का उसी के पति द्वारा परित्याग एक अद्भुत घटना है। जिस स्त्री के लिए इतना बड़ा युद्ध हुआ, जिस तरह का दूसरा युद्ध किसी अन्य नारी के लिए विश्व में अन्यत्र कहीं हुआ हो, ऐसा सुनने या पढ़ने को नहीं मिलता अथवा किसी पति द्वारा अपनी पत्नी के चरित्र पर संशयापन्न हो चरित्र की विशुद्धता के प्रमाण स्वरूप अग्नि परीक्षा ली गई हो या किसी पत्नी ने अपने विशुद्ध चरित्र को प्रमाणित करने के लिए अग्निपरीक्षा दी हो, ऐसा उदाहरण भी रामायण के अतिरिक्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता, उसी स्त्री की पुनः प्राप्ति पर अपने पति द्वारा तिरस्कार, अवमानना एवं परित्याग एक विचित्र घटना है।

क्रौंची के आर्तक्रन्दन से द्रवीभूत हृदय वाल्मीकि क्या इस तरह की कथा का प्रणयन कर सकते हैं? मेरा अन्तर्मन निश्चय ही उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन की घटना को करुण चित्तवृत्ति वाले आदिकवि वाल्मीकि की रचना स्वीकारने के पक्ष में नहीं है। निश्चय ही यह घटना तत्कालीन समाज व राष्ट्र में बढ़ते आपसी साम्प्रदायिक व धार्मिक वैमनस्य का ही परिणाम है।

वाल्मीकि रामायण के प्रणयन के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में हिन्दू धर्म का वर्चस्व था, लोगों में रामभक्ति की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान थी। इस समय जैन, बौद्ध आदि विद्वेषी धर्म भारत में अपनी अंकुरावस्था में थे। लोगों में बड़ती रामनिष्ठता को खण्डित करने के लिए एवं अपने धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए विद्वेषी धर्मावलम्बियों ने विविध रामकथाओं का संयोजन कर राम के निराकार स्वरूप को विकृत करने का प्रयास किया। 'दशरथजातक कथा' तथा 'पउमचरित' इसी के उदाहरण हैं। दशरथजातक बौद्ध साहित्य की कथा है जिसमें राम, लक्ष्मण (लक्खण कुमार) तथा सीता को एक ही माता से जन्मे भाई–बहन बतलाया है तथा राम द्वारा अपनी सहोदरा से विवाह का वर्णन किया गया है। इसी तरह विमलसूरि के

'पउमचरित' में भी राम के अभिराम स्वरूप को खण्डित करने के लिए उन्हें एकपत्नीव्रत न मानकर उनकी आठ सहस्रानियों का उल्लेख मिलता है।

इस तरह जैन, बौद्ध आदि धर्मों ने रामगुणगान की प्रवृत्ति को विच्छिन्न करने के लिए मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के स्वरूप को विविध आक्षेपों द्वारा कलंकित कर दिया, जिससे श्रीराम एवं उनके गुणों की आकर रामकथा का स्वरूप विकृत हो गया। यही विकृत अंश कालान्तर में उत्तरकाण्ड के रूप में वाल्मीकि रामायण में परिशिष्ट रूप में जोड़ दिया गया। इस परिशिष्ट का विपरिणाम यह हुआ कि महाविष्णु राम पर सीता जैसी पतिपरायणा नारी के परित्याग का दोष मण्डित हो गया, उनके चरित्र में दया, करुणा, सद्भाव आदि के स्थान पर निष्ठुरता, क्रूरता एवं निर्ममता आदि का संचार हो गया, राम का निर्गुण, निराकार स्वरूप खण्डित हो गया एवं राम का स्वरूप व रामकथा भारत सहित अन्य राष्ट्रों में भी इसी रूप में प्रचलित होते चले गए। महाकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के आत्मकथ्य में स्वयं इस बात का उल्लेख किया है–

"भारतवर्ष में साम्प्रदायिक ईर्ष्या द्वेष से जन्मी रामकथा की यही विकृति परम्परा वृहत्तर भारत के भूखण्डों में भी धीरे–धीरे व्याप्त हो उठी जिसके सुस्पष्ट प्रमाण हमें रामकेति (कम्बोडिया), रामकियेन (थाईलैंड), फालाक–फालाम (लाओस), सिरत काण्ड (जावा) तथा हिकायत महाराज रावण (मलय) में आज भी मिलते हैं।"[1]

यदि हम रामायण का गहनाध्ययन करते हैं तो हमें रामायण में अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध होते हैं जिन्हें पढ़कर यह सुनिश्चित हो जाता है कि उत्तरकाण्ड प्राचेतस आदिकवि वाल्मीकि की रचना नहीं है। रामायण में उपलब्ध प्रमुख तथ्य निम्नवत् हैं–

- रामायण की रचना आदिकवि वाल्मीकि ने ब्रह्मा के निर्देश पर श्री नारद मुख से सुनी हुई कथा के आधार पर की है अतः रामायण के बालकाण्ड में उपलब्ध वर्णन के अनुसार महर्षि नारद अयोध्या प्रत्यागमन के पश्चात् रामराज्याभिषेक

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–आत्मकथ्य–पृ.सं.–10

तक की घटना ही महाकवि वाल्मीकि को सुनाते हैं[1] उसके पश्चात् की घटना न तो श्री नारद द्वारा वाल्मीकि को सुनाए जाने का वर्णन है और न ही वाल्मीकि द्वारा उसकी रचना का उल्लेख कहीं मिलता है।

- युद्धकाण्ड में रामराज्याभिषेक के पश्चात् उपलब्ध 'फलश्रुति' भी इसी ओर संकेत करती है कि वाल्मीकि ने युद्धकाण्ड तक की ही कथा की रचना की है, यथा–

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।।[2]

अर्थात् यह ऋषि प्रोक्त आदिकाव्य रामायण है जिसे पूर्वकाल में महर्षि वाल्मीकि ने बनाया था। यह धर्म, यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला एवं राजाओं को विजय देने वाला है। इस तरह युद्धकाण्ड के अन्तिम 19 पद्यों में फलश्रुति का वर्णन कर पुनः उत्तरकाण्ड में कथा योजना करना भी इसी बात को द्योतित करता है कि उत्तरकाण्ड वाल्मीकि कृत न होकर प्रक्षिप्त अंश मात्र है।

- उत्तरकाण्ड को वाल्मीकि की रचना न मानने के सम्बन्ध में एक ओर तथ्य रामायण में ही उपलब्ध होता है। रामायण के बालकाण्ड में उपलब्ध वर्णन के अनुसार रामायण का दूसरा नाम 'पौलस्त्यवध' अथवा 'दशाननवध' था। जिससे ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने जिस रामायण की रचना की उसकी समाप्ति 'रावणवध' के साथ थी।

- उत्तरकाण्ड में ही एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगत होता है। जब शत्रुघ्न प्रथम बार मथुरा प्रस्थान करते हैं तो उनका रात्रिविश्राम वाल्मीकि आश्रम में होता है, उसी रात सीता भी युगल पुत्रों को जन्म देती हैं, जिसे जानकर शत्रुघ्न देवी सीता का अभिनन्दन भी करते हैं, यथा–

---

1. रामायण–बालकाण्ड–1/6–97
2. रामायण–युद्धकाण्ड–128/107

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्।।
अर्धरात्रेः तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत् प्रियम्।
पर्णशालां ततो गत्वा मातरर्दिष्टयेति चाब्रवीत्।।[1]

मथुरा से बारह वर्ष पश्चात् पुनः अयोध्या लौटते समय शत्रुघ्न वाल्मीकि आश्रम में दोनों कुमारों के मुख से रामायण गान सुनते हैं, यथा–

स गत्वा गणितान् वासान् सप्ताष्टौ रघुनन्दनः।
वाल्मीकाश्रमागत्य वासं चक्रे महायशाः।।
स भुक्तवान् नरश्रेष्ठो गीतमाधुर्यमुत्तमम्।
शुश्राव रामचरितं तस्मिन् काले यथाक्रमम्।।[2]

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में आश्चर्यजनक बात यह है कि जब शत्रुघ्न सीता पुत्रों के विषय में सबकुछ जानते थे तो क्या उन्होंने अपने अग्रज राम को इस विषय में कुछ नहीं बताया होगा और यदि बताया होगा तो रामायण गान के अवसर पर राम द्वारा अपने पुत्रों को मुनिकुमार समझते रहना अद्भुत ही है।

- वाल्मीकि रामायण की युद्धकाण्ड तक की कथा का गहनाध्ययन करने पर हम पाते है कि आदिकवि ने रामायण में प्रत्येक कथा एवं उपकथाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। महाकवि के वर्णनों में सर्वत्र क्रमबद्धता है, किसी भी वर्णन में विश्रृंखलता नहीं है, छोटी से छोटी घटना का उल्लेख आदिकवि ने किया है परन्तु उत्तरकाण्ड की कथा को पढ़कर अनेक स्थलों पर कथा के प्रवाह में विच्छिन्नता दृष्टिगोचर होती है। रामायण के अन्य सभी काण्डों में कथा में क्रमबद्धता है परन्तु उत्तरकाण्ड में कथा में क्रमबद्धता नहीं है जो द्योतित करता है कि उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की रचना नहीं है।

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–66 / 1,2
2. वही–71 / 3,14

रामायण में उपलब्ध परस्पर अन्तर्विरोधी तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि ने रामायण के अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड में वर्णित फलश्रुति तक की कथा का ही प्रणयन किया है। उत्तरकाण्ड महर्षि वाल्मीकि की रचनाशैली के सर्वथा विपरीत है अतः निश्चय ही उत्तरकाण्ड के विश्रृंखलित, मूलकथा से असम्बद्ध तथा अन्तर्विरोधी अंश अवान्तर में किसी व्यक्ति द्वारा जोड़े गए हैं। इस तरह जब उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की सृष्टि नहीं है तो सीता निर्वासन का कर्तृत्व आदिकवि पर आरोपित करना उचित नहीं है।

इसी संदर्भ में महाकवि अभिराज जी ने महाकाव्य 'जानकीजीवनम्' की भूमिका में स्पष्टरूप से स्वमन्तव्य देते हुए लिखा है कि "मैं यह नहीं कहता कि सचमुच यह घटना (सीतानिर्वासन) घटी थी अथवा नहीं? परन्तु यह अवश्य मानता हूँ कि रामकथा के आदिस्रष्टा प्राचेतस वाल्मीकि ने न तो सीतानिर्वासन को स्वीकार किया था और न ही लिखा था। महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण अयोध्या वर्णन से प्रारम्भ होता है तथा युद्धकाण्ड की फलश्रुति से समाप्त हो जाता है। सारे विवादास्पद प्रसंग (सीतानिर्वासन, शम्बूक वध आदि) रामकथा की इस परिधि से बाहर ही है।"[1]

सीता निर्वासन के प्रसंग को वाल्मीकि कृत न मानने के पक्ष में अन्य अनेक प्रश्न हैं जो उत्तरकाण्ड का अध्ययन करने वाले मेरे समान पाठकों के मन में उपस्थित होते हैं, यथा–

- रामायण की रचना के कारणभूत क्रौंच वध की घटना को पढ़कर उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन प्रसंग के विषय में सर्वप्रथम यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्रौंच वध की घटना से मर्माहत करुण चित्तवृत्ति वाले वाल्मीकि क्या राम–सीता बिछौह रूपी उत्तरकाण्ड की रचना कर सकते हैं? जिनका हृदय क्रौंची के आर्तस्वर से द्रवीभूत हो उठा था क्या वे निर्जन वन में राम की प्राणवल्लभा सीता का परित्याग करवा सकते हैं, वह भी गर्भावस्था में?

---
1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–आत्मकथ्य, पृ.सं.–10

- यदि उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन की घटना वास्तविक है तो फिर राम द्वारा लोकनिन्दा के भय से ली गई सीता की अग्निपरीक्षा का क्या औचित्य है? ब्रह्मा द्वारा राम के महाविष्णुत्व का प्रतिपादन, अग्नि द्वारा स्वयं सीता का राम को समर्पण तथा महाराज दशरथ द्वारा उनका अभिनन्दन इन सारी दिव्य घटनाओं की क्या सार्थकता है?

- राम राज्य को आदर्श राज्य का प्रतीक माना जाता है। यह कैसी राजव्यवस्था थी जिसमें एक राजा अपनी रानी का, एक पति अपनी पत्नी का अथवा एक पुरुष एक स्त्री का परित्याग कर देता है और वहाँ की प्रजा इस सम्पूर्ण घटना से अनभिज्ञ रहती है अथवा जान–बूझकर मूक बनी रहती है? क्या यही उत्तम राजव्यवस्था का स्वरूप है? क्या राम के राज्य में सीता को राजमहिषी, पत्नी अथवा एक स्त्री के रूप में सामान्य अधिकार प्राप्त नहीं थे?

- जिस तरह सीता विषयक लोकापवाद की घटना कर्णपरम्परा का आश्रय लेकर सामान्य प्रजा से दुर्मुख के पास व दुर्मुख से राजाराम के पास तक पहुँची, उसी तरह से सीता परित्याग की घटना क्या राम के समीप रहने वाले अथवा राजमहल में रहने वाले दासी–दासियों, सामंतादि के माध्यम से प्रजाजनों के मध्य तक नहीं पहुँची होगी? क्या राम के दास–दासी, सेवकादि ने राजमहल से बाहर इस घटना की चर्चा किसी से भी नहीं की होगी? यह असंभव ही है कि कोई राजा अपनी रानी का परित्याग कर दे और वहाँ की प्रजा उस सम्पूर्ण घटना से अनभिज्ञ रहे? क्या कारण था कि अयोध्या की प्रजा इस विषय में मौन रही, क्यों किसी ने भी इस दुःखद घटना पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की? यह सम्पूर्ण घटना आश्चर्यजनक है क्योंकि आज भी हम देखते हैं कि नरेन्द्र मोदी द्वारा देश के प्रधानमंत्री का पदभार ग्रहण करते ही सबसे पहला प्रश्न उनकी पत्नी के सम्बन्ध में उपस्थित हुआ। विपक्ष ने इस विषय को उछालते हुए अनेक प्रश्नों द्वारा मोदी पर आक्षेप भी लगाए। मीडिया ने तरह–तरह के सवाल–जवाब किए। देश–भर में इस विषय पर भरपूर टीका–टिप्पणियाँ की गई। लोगों ने अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त की

और यह क्रम तब तक चलता रहा जब तक कि लोगों को इसका संतोषप्रद जवाब नहीं मिल गया, तो फिर क्या कारण रहा कि अयोध्या की प्रजा इतनी बड़ी घटना पर बिना प्रश्नोत्तर के, बिना किसी प्रतिक्रिया के ही संतुष्ट हो गई? क्या वह अपनी राजमहिषी को लेकर निष्ठुर थी, उसमें जागरूकता का अभाव था या वे अपने राजा के सामने कुछ भी बोलने में असमर्थ थी?

- जिस समय अयोध्या में सीता निर्वासन की घटना घटित हुई, उस समय रघुवंश के कुलगुरु वसिष्ठ, राम की माताएँ एवं अन्य वरिष्ठगण कहाँ थे? क्यों राम ने इन सबकी उपेक्षा करके एकाकी ही सीता के परित्याग का निर्णय कर लिया? यदि राम ने स्वनिर्णय द्वारा ही सीता का परित्याग कर दिया तो सीता के कई दिनों तक राजभवन में न दिखाई पड़ने पर क्या माताओं का यह कर्त्तव्य नहीं था कि वे अपने पुत्र से पूछती कि सीता कहाँ है? हमारी बहू कहाँ है अथवा राजमहिषी कहाँ है? जिस समय सीता का परित्याग हुआ उस समय सीता अन्तः सत्त्वा थी, क्या सास का यह उत्तरदायित्व नहीं था कि वे अपनी बहू का ध्यान रखे, रोज उसकी कुशल–क्षेम पूछे, फिर क्या कारण था कि कौसल्यादि माताएँ भी सीता के विषय में मौन रहीं? अन्य प्रश्न भी इस विषय में उभरते हैं कि राजा अपना प्रत्येक निर्णय गुरुओं की सलाह एवं सहमति से करते थे, क्या राम की राज्य सभा में गुरुपद की कोई गरिमा नहीं थी, क्यों राम ने इतने बड़े निर्णय में गुरु वसिष्ठ की भी उपेक्षा कर दी? और राजगुरु वसिष्ठ भी इस सम्पूर्ण घटनाक्रम पर कैसे मौन रहे?

- राम ने सीता को निर्जन वन में निर्वासित करने से पहले लक्ष्मण आदि अपने भाइयों को अपनी आज्ञापालन हेतु वचनबद्ध कर दिया था–

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन।।
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात्।
मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः।।[1]

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–45 / 21,22

लक्ष्मण आदि चारों भाई तो सीता के विषय में कुछ भी बोलने के लिए वचनबद्ध थे, विवश थे परन्तु सीता की बहिनें भी तो राजमहल में उपस्थित थी। कई दिनों तक अपनी बहन को राजमहल में न पाकर उन्होंने क्यों किसी से नहीं पूछा कि सीता कहाँ है? हमारी बहन कहाँ है अथवा जनकदुलारी कहाँ है?

- ♦ जिस समय लक्ष्मण, सीता को निर्जन वन में ले जाते हैं उसी क्षण सीता को अपने निर्वासन की सूचना ज्ञात होती है। लक्ष्मण, सीता को वन में छोड़कर वापस अयोध्या लौटते हैं उस समय अपने परित्याग से दुःखी सीता, लक्ष्मण द्वारा अपनी सासुओं एवं अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए सन्देश भेजती हैं, यथा –

श्वश्रूणामविशेषेण प्रा×जलिप्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम्।।
शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।[1]

लक्ष्मण ने अयोध्या लौटकर क्या सीता का संदेश माताओं एवं अन्तःपुर की स्त्रियों को नहीं सुनाया होगा? यदि सुनाया होगा तो फिर क्यों इस घटना पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई और यदि वचनबद्ध लक्ष्मण ने सीता का यह सन्देश ही राजमाताओं को नहीं सुनाया तो राम की आज्ञा को शिरोधार्य कर सीता को वन में छोड़कर आने वाले लक्ष्मण के लिए सीता की आज्ञा का पालन करना भी क्या आवश्यक नहीं था?

- ♦ रघुकुल अपनी वचनपरायणता के लिए प्राणों का भी उत्सर्ग करने वाला कुल है, क्या राम ने विवाह के अवसर पर सीता को सभी सुख–दुखों में साथ निभाने का वचन नहीं दिया था? सीता ने तो वनगमन के समय भी राम का साथ देकर अपने वचन की रक्षा की, क्या सीता पर लोकापवाद रूपी आँच आने के समय राम का सभी वचनों को भुलाकर सीता का परित्याग न्यायसंगत है?

- ♦ जिन महर्षि वाल्मीकि ने जनकदुलारी परमसुकुमारी सीता का परित्याग दुर्गम वन में राम के साथ गमन करते समय नहीं कराया, क्या वे राम द्वारा उसी सुख–दुःख की संगिनी, परम सहचरी सीता का तिरस्कार वर्णित कर उनका विरह वर्णन कर सकते हैं?

---

1. रामायण–उत्तरकाण्ड–48/10,11

रामायण में उपलब्ध अन्तर्विरोधी प्रसंगों एवं मन में उठने वाले विविध तर्कपूर्ण प्रश्नों के आधार पर यह तो सुनिश्चित है कि सीता निर्वासन भले ही वाल्मीकि की रचना न हो तथापि यह कथा इसी प्रक्षिप्त अंश के साथ प्रचलित तो है। पति परायणा, परम पावनी सीता का राम द्वारा निर्वासन इतना क्रूर एवं निर्मम है कि पच्चीस सौ वर्ष की लम्बी अवधि व्यतीत हो जाने पर भी उसके निर्वासन का प्रश्न दार्शनिकों, चिन्तकों, मनीषियों तथा रामानुरागियों के अन्तर्मन को सदा व्यथित करता है। अधुनातन नारीवादी चिन्तक इस विषय में नाना प्रकार के प्रश्न उपस्थापित करते हैं। आज भी सीता परित्याग का अनुत्तरित प्रश्न जनमानस को उद्वेलित करता है। अभी हाल ही में 2 फरवरी 2016 के राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित घटनाक्रम सामान्य जन की अन्तर्वेदना को प्रकट करने वाला उत्कृष्ट उदाहरण है जो यह प्रतिपादित करता है कि आज भी लोग निरपराधी सीता के निर्वासन से आहत हैं।

यह घटना बिहार के सीतामढ़ी की है। मेजरगंज थाना क्षेत्र के डुमरी कला गाँव निवासी ठाकुर चन्दन कुमार सिंह (अधिवक्ता) ने भगवान राम व लक्ष्मण पर त्रेतायुग में घटित सीता निर्वासन की घटना को लेकर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के कोर्ट में शनिवार को एक मुकदमा दाखिल किया। चंदन ने भगवान पर आरोप लगाया है कि माँ जानकी का कोई कसूर नहीं था, इसके बाद भी भगवान राम ने उन्हें जंगल में क्यों भेजा? कोई भी पुरुष इतना बड़ा जुर्म कैसे कर सकता है? हांलाकि चंदन सिंह के परिवाद को कोर्ट ने गवाह व अपराधी के उपलब्ध न होने से तथ्यहीन बताकर उसे खारिज कर दिया तथापि इस घटना ने प्रत्येक पाठक के अन्तर्मन को स्पर्श किया ही है। इस घटना से यह तो स्पष्ट है कि आज भी सीता निर्वासन का प्रसंग नारी अस्मिता के प्रति सजग प्रबुद्ध सामाजिकों, नारीवादी चिन्तकों के अन्तर्मन को शूल की भाँति भेदता है। अधुनातन लोग इसका समुचित समाधान ढूँढ रहे हैं।

सीता निर्वासन पर उठे नाना विप्रतिपत्तियों का समाधान पौरस्त्य महाकवियों ने अपनी दिव्य प्रतिभा से नहीं किया है। प्राच्य कवियों की दृष्टि नारीवादी चिन्तन, नारी अस्मिता के प्रति उदासीन रही है यद्यपि इनमें से कुछ महाकवियों ने विद्वेषी

धर्मावलम्बियों द्वारा विकृत रामकथा में परिवर्तन कर रामकथा के स्वरूप को पुनः अपनी रचनाओं में स्थापित करने का प्रयास किया है। रामकथा में वर्णित सीता निर्वासन रूपी घटना को भारत सहित अन्य राष्ट्रों में भी तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाने लगा, भारतीयों पर नारी अवमानना एवं तिरस्कार आदि का दोषारोपण होने लगा, राम का निराकार रूप खण्डित होने लगा तब इन सभी आरोप–प्रत्यारोपों से संत्रस्त हो परवर्ती युग में अनेक रामनिष्ठ कवियों ने इस विकृति के विरोध में अपना स्वर मुखर किया एवं अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों को पुनः रामभक्ति की धारा से जोड़ने का प्रयास किया। प्राच्य कविकृत इन प्रयासों में भवभूति व हिन्दी साहित्य के अमर कवि तुलसीदास का नाम प्रथमगण्य है।

सर्वप्रथम भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' नाटक के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को उदात्तता के साँचे में ढालने के लिए सीता निर्वासन प्रसंग में प्रजानुरंजन को स्थापित किया। महाकवि ने बारम्बार सीता परित्याग के पश्चात् राम की वियोगावस्था का कारुणिक चित्रण प्रस्तुत कर रामभद्र के चरित्र को महनीयता से परिपूर्ण कर दिया। नाटक के अन्त में भवभूति ने राम–सीता का पुनर्मिलन वर्णित कर सहृदय पाठकों के मन को तोष प्रदान करने का प्रयास भी किया है। इसी तरह तुलसी ने भी लोगों को पुनः रामभक्ति की धारा से सम्पृक्त करने के लिए अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुणगान में 'रामचरितमानस' की रचना की। तुलसी ने मानस में राम के धवलित चरित्र को कलुषित करने वाली विविध घटनाओं के निराकरण के लिए माया–सीता के हरण की कल्पना की। तुलसी को अपने धर्म व मर्यादा की भावना के कारण यह अभीष्ट नहीं था कि सीता राक्षस गृह में रहे और शायद इसका एक अन्य मुख्य कारण यह भी था कि यदि राम के रहते हुए वास्तविक सीता का हरण होता तो यह नरोत्तम राम के चरित्र के लिए बहुत बड़ा आघात होता। तुलसी ने मानस में बारम्बार राम के जिस विष्णु स्वरूप का प्रतिपादन किया है उस दृष्टि से भी वास्तविक सीता का हरण अनुचित ही प्रतीत होता है। माया सीता के हरण की योजना से अग्निपरीक्षा की दोष मुक्ति भी तुलसी के राम को मिल गई। इस

तरह तुलसी ने मानस द्वारा राम के निराकार स्वरूप को पुनः प्रतिष्ठापित कर जन–जन को पुनः रामगुणगान की भावना से ओत–प्रोत कर दिया। उत्तरकाण्ड की कथा का तुलसी ने स्पर्श ही नहीं किया। सम्भवतः तुलसी भी उत्तरकाण्ड को वाल्मीकि की रचना न मानते हों? जो भी कारण हो परन्तु 'उत्तररामचरितम्' व 'रामचरितमानस' दोनों ही ग्रन्थों में ग्रन्थकारों ने राम में दया, करुणा, प्रेम, सद्भाव आदि का चित्रण कर उन्हें तो आदर्श नायकत्व प्रदान कर दिया परन्तु सीता की वेदना तो दोनों ही ग्रन्थों में उपेक्षित रही। सीता निर्वासन की घटना का समाधान तो दोनों ही कवियों ने नहीं किया। भोली–भाली, निरपराधी सीता के निर्वासन से उठने वाला नारी अस्मिता का प्रश्न तो भवभूति सहित रामकथा आधृत अन्य परवर्ती ग्रन्थों में भी अनुत्तरित ही रहा है।

आधुनिक काल में जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में नारी का वर्चस्व है, वहीं सीता के समान तेजस्विनी, सती, पावयित्री नारी की अवमानना, नारी गरिमा के संरक्षक नारीवादी चिन्तकों, समाज सुधारकों, प्रबुद्ध पाठकों एवं सहृदय कवियों के लिए चिन्तनीय विषय है। 20वीं शताब्दी में यह गौरव का विषय है कि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, रामजी उपाध्याय प्रभृति कवियों ने अपने ग्रन्थों में सीता निर्वासन के प्रसंग को अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से दिव्य एवं नवीन कल्पनाओं से संजोकर सीता पर उठी नाना विप्रतिपत्तियों का समाधान किया है। इस प्रक्रम में रेवाप्रसाद द्विवेदी, रामजी उपाध्याय तथा अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अग्रगणनीय हैं।

रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'उत्तरसीताचरितम्' महाकाव्य की नायिका पद पर सीता को प्रतिष्ठापित करते हुए सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड के घटनाक्रम को नवीन रूप में वर्णित किया है। इस महाकाव्य में महाकवि ने सीता निर्वासन की घटना का वर्णन करते हुए इस प्रसंग में नवीन उद्भावनाओं का समोवश किया है। यहाँ सीता के विषय में लोकनिन्दा तो फैलती है परन्तु सीता का निर्वासन लोकनिन्दा के भय से पति राम द्वारा न होकर, श्रीराम की लोकमर्यादा की प्रतिष्ठा हेतु स्वयं वैदेही की इच्छा से होता है। सीता के प्रति लोकापवाद उठने पर राम कोई भी निर्णय लें उससे पहले ही

यहाँ सीता पति की गरिमा को प्रथमगण्य मानकर स्वयं ही वनगमन का निर्णय ले लेती हैं, यथा–

यामि मातर इतः स्वततोयामि, यामि विपिनं न मे व्यथा।
कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोऽपि न हि जातु बिभ्यति।।[1]

स्वेच्छा से वन में रहकर सीता गंगातट पर दो पुत्रों को जन्म देती हैं। समाधिस्थ वाल्मीकि दिव्यदृष्टि से सीता का गंगातट पर स्थित होना जानकर स्वयमेव ही वहाँ पहुँचते हैं तथा नवप्रसूता सिया को शिशुयुगल सहित आश्रम लाते हैं।[2] इसके पश्चात् का कथानक भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' नाटक से साम्य रखता है। भवभूति के समान ही रेवाप्रसाद जी ने भी महाकाव्य में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया है, यहाँ भी अश्वमेध के घोड़े को लव–कुश द्वारा रोके जाने तथा घोड़े के कारण लव–कुश एवं चन्द्रकेतु के मध्य युद्ध का वर्णन है। महाकाव्य में राम शम्बूक वध के पश्चात् अश्वमेध के अश्व को देखने के लिए वाल्मीकि आश्रम में आते हैं जहाँ राम को देखकर तीनों कुमार युद्ध से विरत हो जाते हैं। इसी बीच राम माताओं सहित लक्ष्मण, भरत, वसिष्ठ गुरु व महाराज जनक भी आश्रम पहुँचते हैं।

महाकवि द्विवेदी जी ने महाकाव्य में वाल्मीकि मुख से सीता की अस्मिता एवं दिव्यचरित को उद्भासित किया है। वाल्मीकि सभा का आयोजन करते हैं जिसमें अनेक तार्किक वचनों से महर्षि, राम द्वारा सीता रहित किए जाने वाले अश्वमेध यज्ञ की कठोर भर्त्सना करते हैं। वे सभी सभासदों के मध्य प्रश्न उठाते हैं कि– 'राम द्वारा बिना पत्नी के किया जाने वाला यज्ञानुष्ठान क्या कोरी विडम्बना नहीं हैं।[3] सीता के स्थान पर सुवर्ण प्रतिमा को स्थापित करना क्या उचित है जबकि सुवर्ण उसी का नाम है जो जलाने पर भी श्याम न पड़े? तो क्या अग्निपरीक्षा से सीता की शुद्धि सिद्ध नहीं हुई? वे सभी सभासदों के मध्य यह भी कहते हैं कि जिस गर्भिणी सीता को लोकापवाद के भय से गर्भावस्था में ही नष्ट कर दिया गया था तो आज उसकी

---

1. उत्तरसीताचरितम्–डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी–3/31
2. वही–5/70
3. वही–3/31

निर्जीव पुतली को अपनाने से भी क्या लाभ है क्योंकि मलिन प्राणी का चेहरा तो उसके चित्र में भी नहीं देखा जाना चाहिए–

तदद्य तस्यागतचेतनायाः किं शालभंजया अपि संग्रहेण।

अशुद्धसत्वस्य मुखं जनस्य न चित्रकर्मण्यपि वीक्षणीयम्।।[1]

अपने वचनों को विराम देते हुए वाल्मीकि सभी से सीता के अन्वेषण की बात कहते हैं। वाल्मीकि के अभिप्राय को जानकर वसिष्ठ आदि गुरु सीता के दर्शनार्थ उनसे निवेदन करते हैं, वाल्मीकि के निर्देश पर सीता का आगमन होता है, राम का पुत्रों से मिलन होता है परन्तु सीता सभी माताओं एवं गुरुजनों आदि को समक्ष उपस्थित देख स्वेच्छा से मुनि आश्रम में ही समाधि लगा लेती है।

रामजी उपाध्याय ने भी सीता निर्वासन पर उठे प्रश्नों का समाधान अपने नाटक में किया है। 'सीताभ्युदयम्' नाटक में रामजी उपाध्याय ने अपनी प्रातिभ प्रतिभा से सीता निर्वासन प्रसंग में नवीनता का संचार किया है। इस नाटक में कवि ने लंका विजय के पश्चात् सीता विषयक पूर्व कविकृत त्रुटियों को वक्रोक्ति द्वारा धवलित करने का प्रयास किया है। नाटक की कथा के अनुसार सीता वाल्मीकि आश्रम में रहीं परन्तु राम द्वारा परित्यक्त होकर नहीं, अपितु सीता के अभुक्तमूल नक्षत्र में पुत्र प्रसव जन्य महाविपत्तियों की आशंका थी, जिनसे बचने के लिए वसिष्ठ के निर्देशानुसार सीता को 16 वर्षों तक राजप्रासाद से दूर रहना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए राम स्वयं सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ने जाते हैं। महाकवि ने यहाँ सीता सम्बन्धी लोकापवाद की चर्चा नहीं की है, अभुक्तमूल ही वाल्मीकि आश्रम में सीता के निवास का एकमात्र कारण है। यही कारण है कि इस नाटक में रामायण की भाँति सीता का चुपचाप निर्वासन नहीं होता। राम, वाल्मीकि को सम्पूर्ण घटनाक्रम से अवगत करवाते हुए सीता को उनके सान्निध्य में छोड़ते हैं।

---

1. उत्तरसीताचरितम्–डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी–9/27

इस नाटक में रामजी उपाध्याय ने यह भी वर्णित किया है कि वाल्मीकि आश्रम में रहती हुई सीता आश्रम में ऋषियों व ऋषि कुमारों की रहन–सहन, अध्ययन व अध्यापन की व्यवस्था में लोकहित की भावना से सहायता करती थी साथ ही रामायण लिखने में प्रवृत्त वाल्मीकि को रामचरित का विवरण देने में भी वैदेही सहायता किया करती थी।

वाल्मीकि आश्रम में रहने की अवधि पूर्ण होने पर राम, सीता को पुनः अपने साथ रखना चाहते हैं परन्तु सीता अपनी माँ पृथिवी के साथ वापस धरातल में प्रवेश करती हैं। रामजी उपाध्याय के अनुसार धरातल में रहकर सीता ने अपनी प्रतिभा एवं कार्यकुशलता से समग्र पूर्वी द्वीप समूह, अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया महाद्वीपों तक रामकथा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार का कार्य किया।

इस तरह नाटक के माध्यम से रामजी उपाध्याय ने जहाँ राम पर लगने वाले सीता परित्याग के दोष का अत्यन्त चातुर्यपूर्ण ढंग से निराकरण किया है वहीं वाल्मीकि आश्रम में निवास के समय तथा रसातल में प्रवेश के पश्चात् सीता के विविध कार्यों का वर्णन कर सीता को परम सहयोगी, त्यागी, समाज व संस्कृति की रक्षा करने वाली विश्ववन्द्या व जगन्माता के रूप में चित्रित कर सीता को नारीवादी दृष्टि से सर्वथा नवीन स्वरूप प्रदान किया है। दोनों ग्रन्थों (उत्तरसीताचरितम्, सीताभ्युदयम्) का अध्ययन करने के पश्चात् एक बात जो दोनों ही कृतियों में समान दृष्टिगत होती है वह यह है कि यद्यपि दोनों ही कवियों ने अपने–अपने ग्रन्थों में सीता के नवीन स्वरूप को वर्णित करते हुए सीता निर्वासन के मूल में सीता की 'स्वेच्छा' एवं 'अभुक्तमूल' को स्थापित कर घटना को नवीनता प्रदान करने का प्रयास किया है तथापि मेरी दृष्टि में दोनों ही रचनाकारों को सीता से भी बढ़कर राम की लोकमर्यादा की रक्षा व प्रतिष्ठा अतिशय प्रिय रही है। दोनों ही ग्रन्थों में अन्तःसत्त्वा सीता को अपने सभी राजसी वैभव एवं सुख–सुविधाओं का परित्याग कर पुनर्वनवास के कष्टों से गुजरना पड़ता है, अपने पति से वियुक्त होकर एकाकी वनवासी जीवन जीना पड़ता है। अन्ततः पृथ्वी में समाना ही उसके कष्टों का समाधान होता है। दोनों ही

ग्रन्थों में सीता की व्यथाकथा तो उसी रूप में बनी रहती है। संभवतः सीता की अन्तर्व्यथा ने दोनों महाकवियों के अन्तर्मनों का स्पर्श नहीं किया यही कारण है कि इनके द्वारा प्रस्तुत सीता निर्वासन के समाधान के पश्चात भी सीता की अन्तर्वेदना यथावत् रही। अतः मेरे विचार से इन महाकवियों द्वारा प्रस्तुत समाधान भी मनः तोषदायक नहीं है।

सीता निर्वासन के असमाधेय प्रश्न का उत्तमोत्तम समाधान कवि पु›व डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र की रचना 'जानकीजीवनम्' में मिलता है। अभिराज जी ने अपने महाकाव्य में सदियों से अनुत्तरित प्रश्न का सर्वोत्तम समाधान प्रस्तुत किया है जिसमें महाकवि ने न तो रेवाप्रसाद द्विवेदी के समान वैदेही की इच्छा को निर्वासन में कारण बनाया है और न ही रामजी उपाध्याय के समान महाकवि ने लोकापवाद प्रसंग को नकारा है। महाकवि ने सीता निर्वासन प्रसंग में अभिनव प्रस्थान परम्परा की चर्चा की है। जिसमें महाकवि ने माँ जानकी की प्रेरणा को मुख्य कारण स्वीकार किया है। महाकवि ने महाकाव्य की भूमिका में स्वयं इस बात का उल्लेख किया है– "बालीद्वीप की राजधानी डेनपसार में रहते हुए ही अचानक माँ वैदेही अपना वृत्त लिखाने के लिए मुझ पर कृपालु हो उठीं और मैं एक विचित्र सारस्वत सम्मोहन में, निर्विघ्न सब कुछ लिख गया।"[1] यही कारण है कि महाकवि ने एकादश सर्ग के अन्त में स्वयं लिखा है कि– **"काव्यं यत्क्रियते विदेहतनयासत्प्रेरणाभिर्नवः"**[2] इस तरह द्वादश सर्ग से लेकर एकविंश सर्ग पर्यन्त तक नवीन घटनाओं व अभिनव कथा परम्परा वाला 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य जानकी की प्रेरणा से ही लिखा गया है। प्रत्येक सर्गान्त में उपलब्ध 'सीताप्रमाणैः कृतम्' इसी वास्तविकता की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

'सीताप्रमाणैः कृतम्' की सच्चाई के विषय में आक्षेप करते हुए कुछ कवि यह प्रश्न भी उठाते हैं कि क्या राजेन्द्र मिश्र जी त्रिकालदर्शी आदिकवि हैं कि उन्हें सीता स्वयं आकर अपना दिव्य चरित लिखने हेतु प्रेरणा प्रदान करती थी। इस प्रश्न के

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–आत्मकथ्य, पृ.सं.–9
2. वही–11/117

प्रत्युत्तर में मात्र इतना कहा जा सकता है कि हम अपने आस–पास के जीवन में कई बार लोगों से ऐसा कहते हुए सुनते है कि स्वप्न में आकर किसी देवी या देवता ने उसे मंदिर बनवाने या अन्य कोई कार्य करवाने के लिए बार–बार प्रेरित किया है और इस तरह की घटनाओं का परिणाम भी यह होता है कि व्यक्ति देवी या देवता की प्रेरणा के वशीभूत हो मन्दिर निर्माण आदि कार्य करवाते हैं। इसी तरह हो सकता है कि महाकवि के स्वाध्याय रूपी तप से प्रसन्न होकर माँ वैदेही ने भी महाकवि अभिराज जी को दर्शन दिए हों तथा अपने चरित्र को पुनः नवीन रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित भी किया हो। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् मेरा मन तो 'सीताप्रमाणैः कृतम्' की सत्यता को स्वीकारता है। इसका एक कारण यह भी है कि सीता निर्वासन की समस्या का जो समाधान महाकवि ने प्रस्तुत किया है वह अधुनातन किसी भी कवि ने नहीं किया है, क्या कारण है कि यह समाधान अन्य किसी भी कवि को नहीं सूझा, यह समाधान सर्वप्रथम राजेन्द्रमिश्र जी ने ही क्यों प्रस्तुत किया? निश्चय ही यह देवी वैदेही द्वारा महाकवि को प्रदत्त दिव्य दृष्टि का परिणाम है कि 'जानकीजीवनम्' के रूप में अभिनव प्रस्थान परम्परा महाकाव्य की रचना हुई। महाकवि ने सीता की अन्तर्व्यथा को स्वयं अनुभूत किया था। महाकवि ने डॉ. वाचस्पति शुक्ल को दिए साक्षात्कार में महाकाव्य रचना की प्रेरणा को ओर अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "जहाँ तक महाकाव्य–रचना की प्रेरणा का प्रश्न है उसके दो पक्ष हैं लौकिक तथा अलौकिक। राजीव जी नहीं रहे तो मैंने उसी रात 'भारती परिवेदनम्' लिखा। मुजफ्फरपुर (बिहार वि. वि.) गया तो 'वैशालीशतकम्' लिखा। उज्जयिनी से लौटा तो 'कालिदासमहोत्सवशतकम्' लिखा। प्राणप्रिय अग्रज डॉ. देवेन्द्र मिश्र जी नौका दुर्घटना में नहीं रहे तो 'वियोगव्याहारशतकम्' लिखा। काव्य रचना के ये तत्कालिक कारण है।"[1] 'जानकीजीवनम्' की लौकिक प्रेरणा का उल्लेख महाकवि ने ग्रन्थ के आत्मकथ्य में करते हुए लिखा है कि– "अपने ही भावनालोक में प्रत्यग्र अनुभूत किसी क्रौंचवध के कारण मेरा भी 'शोक' श्लोकत्व को प्राप्त हो उठा।"[2] यहाँ महाकवि ने अपने 'आत्मदाही क्लेश' का उल्लेख नहीं किया है परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि जिस तरह क्रौंचवध की घटना से महर्षि वाल्मीकि का 'शोक' श्लोकत्व

---

1. त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व–डॉ. राजेश कु. मिश्र–पृ.सं.–315
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र–आत्मकथ्य–पृ.सं.–7

को प्राप्त होकर रामायण की रचना का हेतु बना उसी प्रकार का आत्मदाही क्लेश श्लोकत्व रूप को प्राप्त कर 'जानकीजीवनम्' की रचना का लौकिक कारण बना है।

महाकाव्य रचना की प्रेरणा के अलौकिक हेतु को स्पष्ट करते हुए महाकवि लिखते हैं कि महाकाव्य की रचना का अलौकिक कारण होता है माँ सरस्वती की प्रेरणा जो कि लौकिक हेतु से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। कविवर्य का कथन है कि माँ शारदा की कृपा से ही सारा पूर्वार्द्ध एक ही साँस में लिख गया। भगवती सीता की जीवनकथा को जितना ही मैं सोचता था मेरा अन्तर्दाह उतना ही घनीभूत होता जाता था। एक राजपुत्री को जीवन भर इतना महान् कष्ट! राम जैसे महापराक्रमी पति के रहते हुए भी रावण द्वारा अपहरण? जीवन भर एक राक्षस की कामुक एवं भोगलम्पट दृष्टि से आतंकित? और फिर उसी महामहिम पति द्वारा लोक के समक्ष ही घोर अवमानना? देवी सीता ने कितना दुःख, कलंक, अपमान एवं तिरस्कार सहा? बस यही अनुभव कर मैं रो पड़ता था। मानो देवी सीता स्वयं मुझे प्रेरित करती थीं– 'वत्स! उठाओ लेखनी। अपना चरित मैं बोलती हूँ, तुम बस लिखते जाओ।' मैं इन वाक्यों को सचमुच सुनता था। फलतः मैंने लेखनी उठा ली। 'सीता प्रमाणैः कृतम्' का यही रहस्य है। यह कवि की वैयक्तिक अनुभूति है। आवश्यक नहीं कि उस पर पाठक विश्वास करें।"[1]

माँ वैदेही की प्रेरणा से महाकवि ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में रामचरित की नूतन परम्परा को स्थापित करते हुए, सीता चरित्र को प्रधानतया वर्णित किया है एवं सीता निर्वासन को स्वीकार न करते हुए अभिनव सीता चरित को पल्लवित पुष्पित किया है। कविवर्य ने महाकाव्य के 17वें व 18वें सर्ग में अपनी अनूठी कल्पना, अप्रतिम लेखन कुशलता, उत्कृष्ट तर्कबुद्धि से सदियों से अनुत्तरित सीता निर्वासन के आपत्तिजनक एवं चिरन्तन प्रश्न का सुन्दर उत्तमोत्तम, अलौकिक, चित्ताकर्षक समाकर्षक समाधान प्रस्तुत किया है।

1. त्रिवेणी कविः प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व–डॉ. राजेशकुमारी मिश्र–पृ.सं.–315

महाकाव्य में उपलब्ध वर्णनानुसार धोबी–धोबन के कलह से अयोध्या में सीता के चरित्र के विषय में लोकापवाद तो उठता है[1] परन्तु कवि यहाँ निरपराधी सीता पर निर्वासन रूपी अत्याचार नहीं होने देते हैं। सीता के विरुद्ध जनापवाद रूपी उक्ति जब गुप्तचर के माध्यम से राजा राम तक पहुँचती है तो करुणानिधान श्रीराम जनापवाद के भय से चिन्तित होकर अपने को प्रासाद में बन्द कर लेते हैं परन्तु लक्ष्मण राम की व्याकुलता का रहस्य जानकर सम्पूर्ण समाचार गुरु वसिष्ठ को निवेदित करते हैं–

लक्ष्मणोऽथ गवेषणैर्जज्ञे द्रुतं दुर्मुखागमनप्रवृत्तिं गोपिताम्।
आजुहाव स तं वरं गुप्तेचरं ज्ञातावानखिलन्नु वात्याकारणम्।।
द्रागुपेत्य गुरुं रघूणां समस्तं व्याजहार यथायथं वृत्तान्यसौ।
क्रोधरोषविलीनधैर्यालम्बनो निर्भयंच जगाद तं भीष्मं वचः।।[2]

लक्ष्मण के वचनों को सुनकर गुरु वसिष्ठ तत्काल ही प्रजानुरंजन के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले राम को कोई भी मनमाना निर्णय लेने की निषेधाज्ञा दिला देते हैं।[3] अगली सुबह नागरिकों की सभा बुलाकर वसिष्ठ सभी के समक्ष सीता के त्याग, शील, तप, पातिव्रत, सदाचार आदि की प्रशंसा करते हुए सभा के मध्य में सीता के दैव स्वरूप, वनवास के कष्टों, अग्निपरीक्षा आदि का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं। गुरु वसिष्ठ, राम व सीता का देवत्व प्रतिपादित करने के पश्चात् रजक को सभा में अपना मत प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित करते हैं, साथ ही गुरुवसिष्ठ यह भी उद्घोषणा करते हैं कि 'देवी सीता, न तो धोबी द्वारा की गई निन्दा के कारण दण्डनीय हैं और न ही (पत्नी होने के कारण अपने) पति के परुष (कठोर, निष्करुण) अधिकार मात्र से! राजमहिषी के भाग्य का निर्णय तो इसी जनसभा में बैठी प्रजाओं के मत से होगा'–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17/29–31
2. वही–17/38, 39
3. वही–17/55

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।
मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[1]

वसिष्ठ के उद्गारों को सुनकर सीता चरित पर पंकप्रक्षेपण करने वाले रजक को अपनी त्रुटि का आभास होता है। अपने अज्ञान, मोह, क्रोधादि अवगुणों को कोसता हुआ वह रजक जनसभा में माँ जानकी के प्रति कहे गए अपने ला×छन युक्त वचनों के लिए क्षमासागर राम से बारम्बार क्षमायाचना करता है। प्रजाहित को सर्वोपरि मानते हुए भगवान् राम विगलित मोह वाले धोबी को क्षमादान देते हैं। सीता के विषय में उठने वाले लोकापवाद का लक्ष्मण व गुरु वसिष्ठ की तत्परता व समवेत प्रयासों से अंकुरावस्था में ही शमन हो जाता है। यही महाकवि के महाकाव्य का अभिनव प्रस्थान है जिसका सर्वप्रथम उल्लेख कविवर्य अभिराज जी ने किया है।

प्रस्तुत महाकाव्य में भी सीता का राम से बिछौह होता है, सीता का वाल्मीकि आश्रम में गमन होता है, परन्तु इस बिछौह एवं आश्रम में गमन का कारण राम द्वारा सीता का परित्याग न होकर, जानकी का अपने पुत्रों के प्रति असीम वात्सल्य होता है। यहाँ वाल्मीकि आश्रम में सीता का निवास किंचित् काल के लिए होता है। सीता पुनः अयोध्या लौटकर राम के साथ अश्वमेध यज्ञ में सम्पूर्ण धार्मिक कृत्यों का निर्वहन करती है। अभिराज जी की सीता रेवाप्रसाद जी व रामजी उपाध्याय जी की सीता के समान धरती में प्रवेश न करके अपने पति एवं पुत्रों के साथ सम्पूर्ण ऐश्वर्य सुखों का उपभोग करती हुई अयोध्या में निवास करती है।

इस तरह सम्पूर्ण घटनाक्रम को नवीन दृष्टि से वर्णित कर महाकवि अभिराज जी ने सीता के लोकापवाद का जो प्रवाद सदियों से प्रसृत था, सदियों से जो असमाधेय व अनुत्तरित था उसका शमन कर समस्त जनमानस के मन, मस्तिष्क, हृदय, आत्मा एवं अन्तःकरण को अभिभूत कर देने वाला निराकरण उपस्थित कर सीता के द्वारा नारी अस्मिता को गौरवान्वित किया है।

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—18/69

रामकथा पर आधारित विविध महाकाव्यों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि कवि पु>व डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र रामकथा के अभिनव स्रष्टा हैं। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य अधुनातन उपलब्ध संस्कृत रामकाव्यों की परम्परा में अप्रतिम सुन्दर रचना है। अभी यह काव्य गुष्टिमेय हाथों में है। मेरा यह विश्वास है कि यह महाकाव्य जब संस्कृत साहित्यकारों की महान् विभूतियों से विभूषित, शारदातनयों के हस्तकमलों, मुखारविन्दों से निःसृत होकर भारतीय जनमानस के विस्तीर्ण वितान पर प्रसृत होगा तब रामायणोपजीव्य की भाँति नवयुग में जानकीजीवनोपजीव्य काव्य साहित्य मर्मज्ञों तथा साहित्य सर्जकों के सृजन का प्रेरणास्रोत होगा। भूत, भविष्य, वर्तमान में यही कथा जनसामान्य, मनीषियों, विद्वानों, तपस्वियों, साधु–सन्तों, मुनियों, दार्शनिकों, कवियों तथा कलाकारों द्वारा समादृत होगी। परमप्रीतिदायक 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को पढ़कर मेरे मन में सहसा ही यह विचार उपस्थित होता है कि संभवतः आने वाली पीढ़ी वाल्मीकि व तुलसी के पश्चात् अभिराज जी की कथा को ही प्रमाणिक माने एवं उसी का परायण घर–घर में होने लगे।

2. पूर्व कवियों का प्रभाव व उत्तरकाल को कवि की देन–

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।[1]

आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन हेतु बताए हैं– शक्ति, निपुणता व अभ्यास। तीनों को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है कि कवित्व बीजभूत संस्कार विशेष प्रतिभा 'शक्ति' कहलाती है जिसके बिना काव्य बनता ही नहीं है अथवा बन जाने पर उपहास के योग्य होता है। 'शक्ति' का अर्थ है प्रतिभा अथवा नित्यनवोन्मेषशालिनी बुद्धिप्रतिभामत्ता, कवि में एक सहज शक्ति होती है जिसके कारण कवि हृदय में कविता के भावों का प्रोद्भास होता है। 'निपुणता' का तात्पर्य है लोकशास्त्र तथा काव्यादि के निरीक्षण तथा अनुशीलन से जो निपुणता प्राप्त होती है वह भी काव्य के निर्माण तथा काव्य के उत्कर्ष के हेतु हैं। 'अभ्यास' का अभिप्राय है, जो काव्य की रचना करना एवं उसकी विवेचना करना जानते हैं उनके उपदेश के अनुसार रचना की प्रवृत्ति को अभ्यास कहते हैं। इस काव्य हेतु में मम्मट ने जो निपुणता व अभ्यास दो हेतुओं को प्रतिपादित किया है इन्हीं दो हेतुओं से प्रत्येक कवि अपने से पूर्ववर्ती काव्यादि के निरीक्षण, अनुशीलन एवं अभ्यासादि से प्रभावित होता है और उसका प्रभाव उसके काव्य पर भी दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि हर कवि अपने से पूर्व सूरयों से कुछ–न–कुछ सामग्री का अनुहरण करता है और आने वाले युग को भी नवीन सामग्री को उपलब्ध कराता है। जिस प्रकार एक ही शर्करा से माधुर्य (मिठास) का आहरण करते हुए नाना प्रकार के व्यंजन निर्मित होते हैं पर प्रत्येक का स्वाद अलग–अलग प्रकार का होता है उसी प्रकार प्राचीन साहित्य कवियों के लिए विषयवस्तु तथा रस आदि के आहरण की भूमि होता है और वे अपनी–अपनी कवित्व बीजभूत संस्कार विशेष प्रतिभा से विलक्षण साहित्य रूपी फल की सर्जना करते हैं। यह अनुकरण विश्व के सभी साहित्य में दृष्टिगत होता है। अतीत से वर्तमान तक का यह सम्बन्ध कवि कृतियों को एक ओर परम्परा से आबद्ध करता है

---

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट 1/3

और दूसरी ओर उसी परम्परा का अनुवर्तन करते हुए भविष्य की ओर प्रेरित करता है। अतः हम कवि को भूत व भविष्य के बीच में सम्बन्ध को सम्पृक्त करने वाली एक कड़ी के रूप में पाते हैं।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के ऊपर भी प्राचीन कवियों का प्रभाव है जिसका कि उन्होंने स्वयं प्रत्येक सर्गान्त में उल्लेख किया है–

मूलं श्री कवि कालिदास कविता श्रीहर्ष वाणी तनुः
पत्रं श्री जयदेवदेववचनं श्रीबिल्हणोक्तं सुमम्।
श्रीमत्पण्डिराजकाव्यगरिमा यस्यैकपुण्यं फलं
जीव्याद्धन्त निसर्गजोऽयमभिराड्राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।[1]

कवि श्री कालिदास की कविता जिसकी जड़ है, श्रीहर्ष की वाणी जिसका स्कन्ध प्रदेश (तना) है, श्री जयदेव के संस्कृत गीत जिसके पर्णसमूह हैं, श्री बिल्हण की सदुक्तियाँ जिसके फूल हैं तथा महामहिम पण्डितराज जगन्नाथ के काव्य की गरिमा ही जिसका एकमात्र पुण्य फल है, अभिराज राजेन्द्र का वह निसर्गजात काव्यद्रुम चिरस्थायी हो!

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि अभिराज जी, कालिदास, श्रीहर्ष, जयदेव, बिल्हण एवं पण्डितराज जगन्नाथ से सर्वाधिक प्रभावित है। महाकवि पर इन कवियों का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम हम कवि पर कालिदास के प्रभाव को सुचिह्नित करेगें–

महाकवि कालिदास ने 'रघुवंशम्' व 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' दोनों ही ग्रन्थों में दक्षिण भुजा फड़कने सम्बन्धी शकुन का वर्णन किया है। 'रघुवंश' महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में अज व इन्दुमती स्वयंवर प्रसंग में महाकवि ने इन्दुमती मुझे वरण करेगी या नहीं इस तरह संशयापन्न अज की शंका का निवारण दक्षिण भुजा फड़कने सम्बन्धी शकुन से किया है, यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/55

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत्।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद।।[1]

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में भी दुष्यन्त के सम्बन्ध में इसी तरह की शंका के निवारण में दक्षिण भुजा फड़कने सम्बन्धी वर्णन मिलता है यथा–

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतफलमिहास्य।
अथवाभवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।।[2]

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में भी यही सादृश्य दृष्टिगत होता है। सीता को देखकर राम की दक्षिण भुजा स्पन्दित होने लगती है जिसे राम अपने भाग्य के आगमन का सूचक बताते हैं–

सुभग! किन्नु विलोक्य तनीयसीं स्फुरति बाहुरयम्मम दक्षिणः।
शकुनसूचित भाग्यमहोदयो भवति नैव वृथेति विनिश्चितम्।।[3]

दोनों श्लोकों में भाषा व भाव में साम्यता है।

महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य में अज व इन्दुमती के स्वयंवर वर्णन में वरमाला पहनाने का वर्णन किया है–

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्याम् करभोपमोरुः।
आसंजयामास यथा प्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम्।।[4]

'जानकीजीवनम्' में अभिराज जी ने राम–सीता स्वयंवर प्रसंग में इसी प्रकार वरमाला पहनाने का उल्लेख किया है, यथा–

मुहुर्मुहुस्तुल्यवयस्यसखीभिः प्रणोदिताः भूमिसूताऽथ दीना।
आरोप्य कण्ठे वरमाल्यमाशु प्राणेश्वरस्याश्रुमुखीबभूब।।[5]

---

1. रघुवंशम्–महाकवि कालिदास–6/68
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–महाकवि कालिदास–1/14
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/24
4. रघुवंशम्–महाकवि कालिदास–6/83
5. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/84

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में अज व इन्दुमती विवाह प्रसंग में 'गठजोड़े' की रस्म का उल्लेख किया है यथा–

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये वधूवरौ संगमयांचकार।।[1]

तथैव अभिराज जी ने भी राम–सीता विवाह प्रसंग में लोकप्रचलित इसी रस्म का अनुकरण किया है जिसमें दुल्हन की साड़ी के छोर व दुल्हे के उत्तरीय की आपस में गाँठ लगाई जाती है, यथा–

वरोत्तरीय ग्रथितांशुकान्ता कृतावगुण्ठा परितोऽग्निवेदीम्।
चचाल सप्त भ्रमिपूरणाय विदेहाजन्ते सह राघवेण।।[2]

रामराज्याभिषेक प्रसंग में भी महाकवि मिश्र पर कालिदास का प्रभाव दिखाई पड़ता है। रघुवंश में महाकवि कालिदास ने वर्णन किया है कि सफेद बालों के बहाने वृद्धावस्था ने दशरथ को उपदेश दिया है कि 'रामचन्द्र जी के ऊपर राज्यलक्ष्मी को सौंप दीजिए' यथा–

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकयीशंङ्येवाह पलितछद्मना जरा।।[3]

इसी तरह के उपदेश का वर्णन 'जानकीजीवनम्' में भी मिलता है जहाँ महाराज दशरथ दर्पण में अपनी हिमश्वेत केशराशि को देखकर खिन्न हो उठते हैं तथा दर्पण को ही अपना सद्गुरु मानकर राम राज्याभिषेक का निर्णय लेते हैं, यथा–

अथायोध्यकोभूमिपालः कदाचिच्चिरं दर्पणे लोकयन्नानेन्दुम्।
स्फुरत्कर्णपालीश्रितं केशराशिं हिमश्वेतमालोक्य खिन्नो बभूव।।
कृपाजगदीशीयमाभाति यन्मे हितं प्रस्तुतं सत्वरं दर्पणेन।
अयं राज्यभारोऽधुनाऽऽरोपणीयो दृढ़स्कन्धयो रामचन्द्रस्य शीघ्रम्।।[4]

---

1. रघुवंशम्–महाकवि कालिदास–7 / 20
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8 / 35
3. रघुवंशम्–महाकवि कालिदास–12 / 2
4. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–10 / 2,9

रघुवंश महाकाव्य में राम–रावण युद्ध के समय क्रोधित रावण कहता है कि– आज संसार या तो रावणरहित हो जाएगा अथवा रामरहित हो जाएगा–

अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः।।[1]

इसी भाव को 'जानकीजीवनम्' में कविवर्य ने भी अभिव्यक्त किया है जिसमें राम प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि आज रावण के मारे जाने पर निश्चय ही वसुन्धरा या तो रावण विहीन हो जाएगी अथवा मेरे दिवंगत होने पर राघव विहीन। यथा–

भविष्यति वसुन्धरा नियतमद्य नीरावणा।
दशास्यनिधनेऽथवा मयि हते तु नीराघवा।।[2]

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में महाकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने दुर्भिक्ष के पश्चात् नील गगन में आच्छादित काले बादलों की तुलना महिष आकृति से की है। महाकवि के इस वर्णन पर भी कालिदास का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। 'मेघदूत' में महाकवि कालिदास ने मेघ का सुन्दर वर्णन करते हुए लिखा है कि श्वेत हिम युक्त हिमालय पर स्थित काला मेघ ऐसा लगता है जैसे शिव के नन्दी बैल ने अपने ऊपर उखाड़ी हुई कीचड़ डाल ली हो, यथा–

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैमृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्य ध्वश्रमविनयने तस्य शृंगे निषण्णः
शोभां शुभत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्।।[3]

इसी तरह का वर्णन करते हुए अभिराज जी ने लिखा है कि महिष शरीर के समान विस्तार वाले तथा विद्युल्लता रूपी सिंगों से गर्व प्रकट करने वाले बादल, द्रुतगति से गर्जना करते हुए एवं शीघ्रतापूर्वक धमाचौकड़ी मचाते हुए, नील गगन में स्थिर हो गए, यथा–

---

1. रघुवंशम्–महाकवि कालिदास–12/83
2. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–14/74
3. मेघदूतम्–महाकवि कालिदास–पूर्वमेघ/55

इतस्ततः सैरिभकायपीनाः क्षणप्रभाश्रृंगधृतावलेपाः।
द्रुतं ध्वनन्तस्त्वरितं प्लवन्तोऽसिताम्बरे रेजुरथाम्बुवाहाः।।[1]

मेघदूत में महाकवि कालिदास ने वियोगी यक्ष द्वारा धातुरागों से शिलाओं पर अपनी प्रिया की मनोहर आकृतियों को चित्रित करने का वर्णन किया है यथा–

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागै शिलाया–
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरूपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।[2]

अभिराजजी ने भी वियोगी राम की अवस्था के चित्रण में इस तरह का वर्णन किया है जो महाकवि पर कालिदास के प्रभाव का परिचायक है, यथा–

निर्माय रूपं क्वचिदश्मपट्टे मनश्शिलाभिर्न तुतोष कामम्।
च्युताश्रुभि प्रोंछितशैलतल्पे प्राणेश्वरीं स्वामसकृल्लिलेख।।[3]

महाकवि डॉ. मिश्र कृत अनेक वर्णन कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से प्रभावित हैं।

'जानकीजीवनम्' में महाकवि अभिराज जी ने सीता के नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसे वनदेवी की संज्ञा से अभिहित किया है। महाकवि की कल्पना है कि सीता के मुखमण्डल में कमल, हाथों में पल्लव, कपोलमंडल में बन्धुकपुष्प तथा अधरोष्ठ में बिम्बफल विन्यस्त करते हुए विधाता ने सीता को क्या अरण्य देवता बना दिया है–

कुवेलमास्ये करयोश्च पल्लवं जपासुम×चापि कपोलमण्डले।
रदच्छेदे बिम्बफलं दधद्विधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्।।[4]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/51
2. मेघदूतम्–कालिदास–उत्तरमेघ/45
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–13/22
4. वही–3/13

महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' व 'कुमारसंभवम्' में शकुन्तला एवं पार्वती के नैसर्गिक सौन्दर्य के वर्णन में भी इसी तरह के पद्य दृष्टिगत होते हैं, यथा–

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनम›षु सन्नद्धम्।।[1]

एवं–

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।[2]

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुष्यन्त लताकुंज में छिपकर काम संतप्त शकुन्तला व उसकी सखियों का परस्पर वार्तालाप सुनता है–

"यावद् विटपान्तरेणावलोकयामि। (परिक्रम्य, तथा कृत्वा, सहर्षम्) अयं लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। एषा मे मनोरथप्रियतमा सुकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयानां सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु, श्रोष्याम्यासांविश्रम्भकथितानि।"[3]

इसी तरह का वर्णन 'जानकीजीवनम्' में महाकवि अभिराज जी ने भी किया है। विलासवनिका में राम व लक्ष्मण स्वर्णचम्पा के कुंज रूपी गृहाजिर में स्थित होकर सीता व उसकी सखियों को देखते हैं, यथा–

कनकचम्पकगुल्मगृहाजिरे शरणमेत्य समेत्य रघूद्वहौ।
अथ निपानसमीपवनालये ददृशतुर्युवतिव्रजमेधितम्।।[4]

महाकवि मिश्र द्वारा किया गया सीता की विदाई का वर्णन तो कालिदास कृत शकुन्तला की विदाई के वर्णन की प्रभावान्विति से परिपूर्ण है। 'जानकीजीवनम्' में जनक विदाई के अवसर पर अपनी पुत्री सीता को लोक व्यवहार का सामान्य ज्ञान

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–महाकवि कालिदास–1/18
2. कुमारसंभवम्–महाकवि कालिदास–1/49
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–महाकवि कालिदास–3/पृ.स. 161
4. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/14

देते हुए कहते हैं कि हे पुत्री! आज से न मैं तुम्हारा पिता हूँ, न राजरानी तुम्हारी माँ हैं और न ही कुशध्वज तुम्हारे चाचा! बस इसके बाद वह कौसलनरेश दशरथ ही तुम्हारे पिता हैं, उनकी तीनों राजरानियाँ ही तुम्हारी माँ के समान है, पति को ही सर्वस्व मानने का उपदेश देते हुए आगे जनक अपनी पुत्री से कहते हैं कि तीनों देवरों को ही अपना सगा भाई समझना, अन्तःपुर में विद्यमान सखियों की टोली को सदैव बहिनों की दृष्टि से देखना, अपनी सेवावृत्ति, बड़े–बूढ़ों के प्रति आदर भावादि तथा स्नेहपगी मधुर बातों से स्वामी को प्रसन्न करती हुई तुम गृहणियों के सौभाग्य को प्राप्त करोगी, यथा–

पिता न तेऽहं महिषी न माता कुशध्वजश्चापि न ते पितृव्यः।
स कोशलेन्द्रोऽस्ति पिता तदीया इतः परं मातृसमा महिष्यः।।
धनुर्धरो नीलबलाहकाभः पयोदमन्द्रध्वनिमण्डितास्यः।
कुवेलदृष्टिः प्रतिपन्नशौर्यस्तवास्ति सर्वस्वमसौ हि रामः।।
विदेहि देवृत्रयमेव वत्से! सहोदरान् मार्दवजातहार्दान्।
तथावरोधस्सखीनिकायं विपश्य शीलेन सदा स्वसॄणाम्।।
स्वसेवया वृद्धजनादराद्यैर्मधूकमाधुर्यलसद्वचोभिः।
प्रियोचितप्रीणनया च नूनं प्रियासि सौभाग्यमथा›नानाम्।।[1]

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में महर्षि कण्व भी अपनी पुत्री को विदाई वेला पर इसी तरह का उपदेश देते हैं यथा–

शुश्रुषस्व गुरुप्रियसखीवृत्तिः सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं तव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनीः
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः।।[2]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8/70–73
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास–4/18

महाकवि कालिदास के समान ही कविप्रवर राजेन्द्र मिश्र ने भी कन्या रूपी धन की वास्तविकता अपने महाकाव्य में प्रतिपादित की है कि बेटी तो पराया धन होती है और बेचारा पिता तो निश्चय ही उसका रक्षक मात्र होता है, इसी भाव को मन में रखकर जनक अपनी पुत्री सीता से कहते हैं कि 'बेटी! ऐसी ही पराई सम्पत्ति तुम्हें आज तुम्हारे स्वामी को समर्पित करके मुझे निष्कण्टक सुख–शान्ति प्राप्त हो गई है, यथा–

धनं भवत्येव सुतान्दीयं पिताऽवितामात्रमसौ नु तस्याः।
समर्प्य जातेऽधिकृतेऽद्य तां त्वां विभाति निर्मक्षिकमेव मच्छम्।।[1]

'अभिज्ञानशाकुन्तलं' में भी इसी भावबोध का साम्य परिलक्षित होता है, यथा–

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामम्।
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।[2]

'कुमारसंभव' में भी यही भाव पार्वती के विषय में प्रतिपादित करते हैं यथा–

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तुप्रतिपादिता।।[3]

कालिदास की शकुन्तला विदाई वेला में अपने पिता से वियुक्त होते समय करुण विलाप करते हुए अपने प्राणधारण के विषय में संशयापन्न होकर कहती है कि–'पिता की गोद से बिछुड़ी हुई मैं अब मलय पर्वत की उपत्यका से उखाड़ी हुई चन्दनलता की भाँति, दूसरे देश में कैसे जीवन धारण करुँगी', यथा–

कथमिदानीं तातस्याङात् परिभ्रष्टा मलयतरुन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।।[4]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8/68
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास–4/22
3. कुमारसंभवम्–महाकवि कालिदास–6/79
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–महाकवि कालिदास–4/पृ.सं.–241

अभिराज जी की सीता भी इसी तरह करुण विलाप करती हुई अपनी माँ से कहती है कि 'मैं बचपन में ही विधाता द्वारा क्यों नहीं उठा ली गई? बताओ माँ! इस संसार में मैं क्यों जीवित हूँ? तुम्हारी यह बेटी (तुमसे) अलग करने योग्य नहीं है। किसी ओर घर में सीता नहीं जी पायेगी' यथा–

कथं न दैवेन हृतास्मि बाल्ये भणाम्ब! कस्मादिह जीविताऽस्मि।
पृथङ् न कार्या तव नन्दिनीयं गृहान्तरे जीवति नैव सीता।।[1]

कालिदास कृत 'कुमारसंभव' महाकाव्य के अनेक वर्णनों का अभिराजजी पर प्रभाव है। 'जानकीजीवन' महाकाव्य में महाकवि ने जन्म के पश्चात् निरन्तर बढ़ती हुई सीता की तुलना चन्द्रकला से करते हुए लिखा है कि विदेहनन्दिनी सीता चन्द्रकला के समान क्रमशः किन्तु अतर्कित रूप से वयः क्रम को पार करने लगीं, यथा–

कलेव चान्द्री शनकैर्वयःक्रमं क्षणं व्यतीयाय विदेहनन्दिनी।।[2]

'कुमारसंभव' में कालिदास ने भी पार्वती के जन्म के पश्चात् इसी तरह का वर्णन किया है–

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमासीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषांज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।।[3]

सीता के नवयौवन के वर्णन में भी महाकवि पर कालिदास की पार्वती के नवयौवन सम्बन्धी वर्णन का प्रभाव परिलक्षित होता है। पार्वती की यौवनप्रभा का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है कि पार्वती के नवयौवन में उगे हुए नये रोमों की नाभि तक पहुँचने वाली रेखा ऐसी दीख पड़ती थी, मानो नीवी को पार करके मेखला के बीच की नीलमणि चमक रही हो। उसकी कटि अत्यन्त पतली थी और पेट पर त्रिवली सुशोभित थी। प्रतीत होता था जैसे नवयौवन ने कामदेव के चढ़ने के लिए सीढ़ी बना दी हो–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8/57
2. वही–2/8
3. कुमारसंभवम्–कालिदास–1/25

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्।।[1]

'जानकीजीवनम्' में भी सीता के प्रसंग में महाकवि मिश्र ने इसी तरह का वर्णन किया है–

अन›लक्ष्मी मृदुतल्पसन्निभां ललामरोमौघहरिन्मणिप्रभाम्।

बभार सीता त्रिवलीमनुत्तमां रतेस्सपर्यास्थलिकामिवैव किम्।।[2]

अर्थात् अन› लक्ष्मी के लिए कोमल शय्या के समान, कमनीय रोमावलि रूपी हरिन्मणि की प्रभावली उत्तमोत्तम त्रिवली को सीता ने क्या कामप्रिया रति की समर्चनास्थली के ही रूप में धारण कर लिया?

जिस तरह 'कुमारसंभव' में पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव अपना वास्तविक रूप धारण कर पार्वती का हाथ पकड़ लेते हैं, उस समय पार्वती एकाएक अपने इच्छित वर को सामने पाकर न तो चल सकी और न ही खड़ी रह सकी–

तं वीक्ष्य त्रेपथुमती सारसा›यष्टिर्निक्षेपणाय पदमुदृधृतमुद्वहन्ती।

मार्गचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्यौ।।[3]

अभिराज जी की सीता की भी यही स्थिति होती है। जब सीता, राम को वाटिका में देखती है तो न वह आगे बढ़ पाती है और न पीछे, न दाहिने खिसक पाती है और न बायें, न ऊपर देख पाती है और न ही नीचे! सीता एकदम स्थिर मूर्ति ही बन गई–

न च ससार पुरो न च पृष्ठतो न खलु दक्षिणतो न च वामतः।

उपरि नैव ददर्श न वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवाजनि जानकी।।[4]

---

1. कुमारसंभवम्–महाकवि कालिदास–1/39
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–3/11
3. कुमारसंभवम्–महाकवि कालिदास–5/85
4. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–6/57

दोनों श्लोकों के भावों में सादृश्य लक्षित होता है। महाकवि ने इतिवृत्त के संयोजन में स्थल–स्थल पर कालिदास का अनुकरण किया है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र पर श्रीहर्ष का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में वर्णित नल–दमयन्ती स्वयंवर वर्णन के अनेक प्रसंगों की झलक 'जानकीजीवनम्' में राम–सीता स्वयंवर प्रस› में दिखलाई पड़ती है। श्रीहर्ष ने स्वयंवर में दमयन्ती द्वारा नल के कण्ठ में वरमाला पहनाने का वर्णन किया है, यथा–

अथाभिलिख्येव समर्प्यमाणां राजिं निजस्वीकरणाक्षराणाम्।
दूर्वाङ्कुराढयां नलकण्ठनाले वधूर्मधूकस्रजमुत्ससर्ज।।[1]

'जानकीजीवनम्' के वरमाला प्रसंग का उल्लेख कालिदास प्रभाव के अन्तर्गत अज–इन्दुमती स्वयंवर में किया जा चुका है।

श्रीहर्ष ने नल–दमयन्ती के विवाह के वर्णन के अवसर पर 'उलूलु' ध्वनि मिश्रित मंगल गीतों के गायन का उल्लेख किया है, यथा–

काऽपि प्रमोदास्फुटनिर्जिहानवर्णैव या मंगलगीतिरासाम्।
सैवाननेभ्यः पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलूलुध्वनिरुच्चचार।।[2]

अभिराज जी ने भी राम–सीता विवाह के अवसर पर उलूलु ध्वनि मिश्रित पारम्परिक विवाह गीतों के गायन का वर्णन किया है, यथा–

क्षणे च तस्मिन् कलकण्ठवत्यो जगुस्सुवासिन्य उलूलुमिश्रम्।
विवाहकालोचितवल्गुगीतं चराचराश्च्योतनकं प्रसिद्धम्।।[3]

महाकवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती के प्रथम दर्शन में इन्द्र के विविध रूपों की उत्सुकता के वर्णन के अन्तर्गत 'मैं पहिले–मैं पहिले' की भावना का वर्णन किया है–

---

1. नैषधीयचरितम्–श्रीहर्ष 14/45
2. वही–14/49
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8/31

मायानलत्वं त्यजतो निलीनैः पूर्वैरहम्पूर्विकया मघोनः।

भीमोद्भवासात्विकभावशोभादिदृक्षयेवाऽऽविरभावि नेत्रैः।।[1]

इसी तरह के भावों की अभिव्यक्ति महाकवि राजेन्द्र मिश्र जी के महाकाव्य में दृष्टिगोचर होती है। सीता आदि नववधुओं के दर्शनार्थ पौरवधुओं की उत्सुकताओं में महाकवि ने 'मैं पहिले, मैं पहिले' की अवस्था का चित्रण किया है–

मार्गयन्त्यश्च पन्थानं समुत्सारणकौशलैः।

अहमहमिकाग्रस्ता ययुरग्रे च काश्चन।।[2]

महाकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी पर जयदेव का प्रभाव सुनिश्चित करने से पूर्व यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि महाकवि पर किस जयदेव का प्रभाव है क्योंकि संस्कृत साहित्य जगत् में जयदेव नाम के अनेक कवि हुए हैं। सम्पूर्ण 'जानकीजीवनम्' का गहन अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि अभिराज जी गीतगोविन्दकार एवं प्रसन्नराघवकार दोनों जयदेव से प्रभावित हैं।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के सभी श्लोक छन्दोबद्ध है अतः गेयात्मक हैं। डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी स्वयं सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य जगत में सस्वर श्रुतिमधुर गायन के लिए लोकप्रिय हैं। इस दृष्टि से महाकवि पर गीतगोविन्दकार जयदेव का प्रभाव सुनिश्चित होता है क्योंकि 'गीतगोविन्द' समूचे साहित्य जगत में अपनी गेयता के कारण प्रसिद्ध है।

महाकवि अभिराज जी पर 'प्रसन्नराघव' नाटक के रचयिता जयदेव का प्रभाव अनेक वर्णनों में दिखलाई पड़ता है। सर्वप्रथम तो अभिराज जी द्वारा प्रत्येक सर्ग के अन्त में उल्लेखित श्लोक जयदेव कृत श्लोक से पर्याप्त साम्य रखने वाला है–

मूलं श्री कवि कालिदास कविता श्रीहर्ष वाणी तनुः

पत्रं श्री जयदेवदेववचनं श्रीबिल्हणोक्तं सुमम्।

---

1. नैषधीयचरितम्–श्रीहर्ष–14/58
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–9/37

श्रीमत्पण्डिराजकाव्यगरिमा यस्यैकपुण्यं फलं

जीव्याद्वन्त निसर्गजोऽयमभिराड्राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।[1]

जयदेव ने अपने नाटक के प्रथम अंक में लिखा है कि– अनेक जन्मों का संचित पुण्य, जिसका बीज (है), प्रज्ञा (नव–नववोन्मेषशालिनी प्रतिभा) जिसका अंकुर (है), काव्य–मर्मज्ञ विद्वत्समूह का संसर्ग जिसका स्कन्ध (है), काव्य नूतन किसलय है, कीर्ति पुष्पसमृद्धि है, सर्वथा समृद्ध वह यह कवित्व– (कविकर्म) रूपी तरु रामचन्द्र जी के गुणवर्णनरूप फल के बिना क्या निष्फल किया जाता है–

बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितं, प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः,

काण्डः पण्डित मण्डलीपरिचयः, काव्यं नवः पल्लवः।

कीर्तिः पुष्पपरम्परा, परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः

किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम्।।[2]

महाकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के पंचम व षष्ठ सर्ग में राजा जनक की विलास वनिका में राम–सीता के पूर्वराग का जो इतिवृत्त प्रस्तुत किया है वह जयदेव कृत 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के द्वितीयांक में उपलब्ध इतिवृत्त से साम्य रखने वाला है। कुछ उदाहरण यहाँ दर्शनीय हैं–

जयदेव ने अपने नाटक में पुष्प चयन हेतु राम–लक्ष्मण का जनक के विलास वन में प्रवेश का वर्णन किया है यथा–

रामः – वत्स लक्ष्मण! पश्य पश्यारामरामणीयकम्।

लक्ष्मण – आर्य! निसर्गरमणीयोऽयमारामः। अधुना तु मधुमासावतारेण नितान्त रमणीयः।[3]

'जानकीजीवनम्' में भी इसी तरह विलास वाटिका में राम–लक्ष्मण के प्रवेश का वर्णन करते हुए अभिराज जी ने लिखा है कि रतिलोलुपविटों से घिरी, शाटिकालंकृत (किसी) रजस्वला वारा›ना के समान आम्रमंजरियों की साड़ी पहने, रतिलम्पटमधुकरों

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–1/55
2. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–1/13
3. वही–2/पृ.सं. 106

से ओत–प्रोत तथा पुष्पों के परागचूर्णों से विभूषित राजा जनक की फूलवारी को दोनों भाइयों ने देखा–

अवनीपवनीमश्यतां धृतमाकन्दकपुष्पशाटिकाम्।
रतिलम्पटरोदरैर्विटैरनुयातां रजसा विभूषिताम्।।[1]

'प्रसन्नराघवम्' में उपलब्ध वर्णन के अनुसार विलासवनिका में पुष्प चयन करते समय राम व लक्ष्मण नूपुर की झङ्कार सुनकर गिरिजा मन्दिर की ओर प्रस्थित किसी सुन्दर स्त्री के उपवन में आगमन का अनुमान करते हैं–

अये! क एष मदकलकरिकनक श्रृंखला मणिरणितानुकारी मनोहारी कोऽपि कलकलः समुल्लसति? नूनं राजहंसशिंजितहारि मंजीरगुंजितमेतत्। तदवश्यमिह सलीलचलच्चरणन्मणिनूपुरया पुराऽङ्नया कयाचन चण्डिकायतनममागच्छन्त्या भवितव्यम्।।[2]

'जानकीजीवनम्' में भी इसी तरह का प्रसंग वर्णित है जो महाकवि पर जयदेव के प्रभाव का सूचक है। अभिराज जी ने वर्णन किया है कि राघव उपवन में अकस्मात् सुनाई पड़ने वाली ध्वनि को सुनकर विकल हो उठते हैं। लक्ष्मण को आदेशित करते हुए राम कहते हैं कि प्रिय भाई लक्ष्मण! शीघ्र पता लगाओ कि करधनी में गुँथी हुई किङ्किणी ध्वनि कहाँ से (मेरे) कानों तक आ रही है? इस विलासवन में कहाँ मधुर गीत गाए जा रहे हैं, यथा–

क्व नु सारसनावलम्बिनी श्रवणान्तं समुपैति किङ्किणी।
प्रिय लक्ष्मण मार्गयाचिरं विजनेऽस्मिन्क्व नु गीयते कलम्।।[3]

अभिराज जी ने जयदेव के ही समान गिरिजा मन्दिर की ओर प्रस्थित सखियों की टोली सहित सीता का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में जयदेव के समान ही महाकवि ने सीता व राम के परस्पर अनुराग का वर्णन किया है।

---

1. जानकीजीवनम्–अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/49
2. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–2/पृ.सं.–111
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र– 5/61

जयदेव ने नाटक के द्वितीयांक में ही सीता के नैसर्गिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन करते हुए लिखा है कि–

बन्धूकबन्धुरधरः, सितकेतकाभं
चक्षुर्मधुकलिकामधुरः कपोलः।
दन्तावली विजितदाडिमबीज राजि–
रास्यं पुनर्विकचपङ्जदत्तदास्यम्।।

पादाभ्यामुन्निद्रामधरयति शोणाम्बुजरूचिं,
कराभ्यामादत्ते नवकिसलयानामरूणताम्।
प्रवालस्यच्छायां दुशनवसनाग्रेण पिबति,
स्मितज्योत्स्नापूरैरुपहसति कान्तिं हिमरुचेः।।[1]

इसका अधर बन्धूक (गुलदुपहरिया) के समान, नेत्र श्वेत केतकी पुष्प के समान, कपोल महुआ की पुष्प कली के समान मनोहर, दाँतों की श्रेणी दाडिम को (भी) दास बनाने वाला (अर्थात् कमल से भी सुन्दरतर) है। और भी पैरों से, प्रफुल्ल रक्तकमलों की कान्ति को पराजित करती है, करों से नूतन किसलयों की लालिमा को ग्रहण करती है, होठों के अग्रभाग से मूँगे की कान्ति को पी जाती है तथा मन्दमुस्कान के कान्तिप्रवाहों से चन्द्रमा की कान्ति का उपहास करती है–

कविवर्य अभिराज जी ने भी सीता के नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन में इस तरह के पद्य की सर्जना की है जिसका उल्लेख कालिदास के प्रभावान्तर्गत किया जा चुका है अतः उपर्युक्त वर्णन महाकवि कालिदास और जयदेव से प्रभावित हैं।

जयदेव कवि ने सीता की अवस्था को बाल्य व यौवन की सन्धि बतलाते हुए कहा है कि बचपन के बीत जाने पर, युवावस्था के आने की इच्छा करने पर, भोलेपन के जाने पर, चातुर्य के आलिंगन में रसिक होने पर (इस समय) जिसे किसी भी अवस्था ने नहीं छुआ है, कमलनयनी (सीता) का वह शरीर कामदेव का तत्वभूत (होता हुआ) इस जगत् में सर्वोत्कृष्ट है, यथा–

1. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–2/8,9

वयस्सन्धौ खल्वियं वर्तते। तथाहि–

अपक्रान्ते बाल्ये, तरुणिमनि चागन्तुमनसि,

प्रयाते मुग्धत्वे चतुरिमणि चाश्लेषरसिके।

न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं

तदेतत्पंचेषोर्जयति वपुरिन्दीवरसदृशः।।[1]

इसी तरह का वर्णन सीता की अवस्था के विषय में करते हुए अभिराज जी ने लिखा है कि नवयौवन के कारण विकसित शरीर वाली होने पर भी सीता का बचपना अभी गया नहीं था। स्वभाव गंभीर हो चला था फिर भी बिना सोचे–समझे (शिशु जनोचित) सीता बोल देती थी। इस प्रकार वह कामिनी यौवन तथा शैशव के आमोद–प्रमोद की क्रीड़ास्थली सी सुशोभित हो रही थी, यथा–

प्रवृद्धगात्राऽप्यनुबिद्धशैशवा गंभीरभावाऽप्यविचार्यजल्पिनी।

बभौ द्वयोर्यौवनबाल्ययोरियं विनोदखेलास्थलिकेव कामिनी।।[2]

राम–सीता स्वयंवर वर्णन के अनेक प्रसंगों में कविवर्य पर महाकवि जयदेव का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'प्रसन्नराघव' में जयदेव ने वर्णन किया है कि स्वयंवर में विश्वामित्र के साथ पधारे हुए राम–लक्ष्मण के प्रति उत्सुकता व्यक्त करते हुए जनक पूछते हैं कि 'भगवान् सकलजनों का आश्रयभूत यह सामने (स्थित) कुमार कौन है? जो मरकतमणि की किरण के समान मनोहर कल्पवृक्ष के अंकुर की शोभा को धारण कर रहा है, और यह कुमार कौन है? जो नीलकमल पत्र के समान रम्य कान्ति वाले इसी (कुमार) के समीप सुवर्ण के समान गौर, सुन्दरी के (नीलवर्ण) नेत्र के (समीप) कान के अग्रभाग में धारण किए गए चम्पा के गुच्छे के समान शोभित हो रहा है, यथा– **सकलजनविलोकनोत्सवानामयमयं कतरः पुरः कुमारः।**

हरितमणिमयूखहारिणो यः कलयति कल्पतरोः प्ररोहलीलाम्।।

नीलनीरजदलोज्ज्वलकान्तेरन्तिके स्फुरति कांचनगौरः।

लोचनस्य सुदृशः श्रवणाग्रे सन्निविष्ट इव चम्पक–गुच्छः।।[3]

---

1. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–2/11
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–3/17
3. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–3/17, 18

जनक की इसी उत्सुकतायुक्त वाणी के दर्शन 'जानकीजीवनम्' में भी होते हैं जो कवि पर जयदेव के प्रभाव को द्योतित करने वाले हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में दोनों राजकुमारों की मुख माधुरी से ठगे हुए जनक विश्वामित्र से पूछते हैं कि–

नवनीलबलाहकप्रभं शरदभ्रद्युति दारकद्वयम्।
हृतचित्तमन›मन्दिरं स दृशोः प्राघुणिकीचकार तत्।।

तदलभ्यललाममार्दवं पृथिवीलोकनित्यत्यभावितम्।
हृतचेतन आत्मवंचितो जनको वीक्ष्य बभाण कौशिकं।।
बटुकौ गुरुवर्य काविमौ स्मरशोभौ सरसीरुहेक्षणौ।
कृतिनो ननु कस्य भूपतेहृदयानन्दकरौ यशोधरौ।।[1]

विश्वामित्र द्वारा जनक को दिए गए प्रत्युत्तर में भी अभिराज जी के वर्णन पर जयदेव का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'प्रसन्नराघवम्' में विश्वामित्र जनक से कहते हैं कि सूर्य वंश के सिर पर स्थित मुकुट के अग्रभाग में खिलते हुए रक्तकमल के मुकुल–सदृश (अर्थात् रविकुल श्रेष्ठ) उन (विश्वविश्रुत) राजा दशरथ के, चन्द्र के समान सुन्दर मुखकमल वाले ये दोनों कुमार हैं–

तपनकुलशिरः किरीटकोटि स्फुरदरुणोत्पलकुङ्मलस्य तस्य।
दशरथनृपतेरिमौ मृगाङ्क प्रतिमसुरेखमुखाम्बुजौ कुमारौ।।[2]

इसी तरह का वर्णन अभिराज जी ने किया है यथा–

शममेत्य शृणु प्रजापते! रघुवीरौ भुजशौर्यदर्पितौ।
निजवंश कुवेलभास्करौ प्रतिभातौ किल रामलक्ष्मणौ।।[3]

धनुषभंजन के सन्दर्भ में भी महाकवि अभिराज जी कवि जयदेव के वर्णनों से प्रभावित हैं। 'प्रसन्नराघवम्' में विश्वामित्र धनुष उठाने के लिए राम को उत्साहित करते हुए कहते हैं कि 'बेटा! उठो। कुमुदिनीपति (चन्द्र) की कला को मुकुट में धारण करने वाले (भगवान् शंकर) के धनुष को चढ़ाने के नैपुण्य से हम सबको प्रसन्न करो–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/31–33
2. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–3/28
3. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/36

"वत्स! उत्तिष्ठ। कुमुदनीकान्तकलाकीरीटकार्मुकरोपणप्रवीणतया सम्प्रीणयास्मान्।"[1]

अभिराज जी ने भी इस संदर्भ में इसी तरह का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'हे रघुनन्दन श्रीराम! उठो। निश्चय ही यह महाराजाधिराज जनक विपन्न हो रहे हैं। हे पुरुष श्रेष्ठ! तुम्हारा यह गुरु आदेश दे रहा है इस दुर्धर्ष शम्भु चाप को उठा लो, इस पर डोरी चढ़ा दो। उस (बेचारी) विदेहनन्दिनी तथा विदेह को आह्लादित कर दो, यथा–

उत्तिष्ठ भो राघव रामभद्र! विपद्यते न्वेष महीमहेन्द्रः।
उत्थापयेमं शिवचापमुग्रं मौर्वीं समारोपय मानवेन्द्र।
समादिशत्येष गुरुस्त्वदीयो विदेहजां ह्लादय तां विदेहम्।।[2]

इस तरह पूर्वराग एवं स्वयंवर वर्णन प्रसंग में भी अभिराज जी कवि जयदेव से अत्यधिक प्रभावित हैं।

महाकवि अभिराज जी पर बिल्हण की उक्तियों का प्रभाव है। 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में महाकवि बिल्हण ने पदे–पदे सारगर्भित सूक्तियों को अनुस्यूत किया है इसी से आकृष्ट हृदय महाकवि अभिराज जी ने भी अपने महाकाव्य में अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है। महाकवि पर बिल्हण की सदुक्तियों के प्रभाव को दर्शाने वाली एक उक्ति उदाहरणस्वरूप दर्शनीय है–

बिल्हण ने अपने 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में लिखा है कि 'मोतियों में छिद्र करने वाली श्लाघ्यतम सूक्ष्मशलाका, पत्थर फोड़ने वाली टॉकी का काम करने में असमर्थ ही रहती है–

न मौक्तिकच्छिद्रकरी श्लाका प्रगल्भतेकर्मणि टङ्कायाः।।[3]

---

1. प्रसन्नराघवम्–जयदेव–3/पृसं.–195
2. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/56, 57
3. विक्रमांकदेवचरितम्–बिल्हण–1/16

इसी तरह के भाव अभिव्यक्त करते हुए अभिराज जी ने लिखा है कि रेशम का महीन कपड़ा टॉकी (छेनी) से नहीं सिला जाता है। वह तो महीन सुई से ही सिला जा सकता है–

न सीव्यते टङ्‌कया दुकूलं स्यूतं भवेद्यत्किल सूक्ष्मसूच्या।।[1]

सूक्तियों के अतिरिक्त भी महाकवि पर बिल्हण के वर्णनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। बिल्हण ने अपने 'कर्णसुन्दरी' नाटक के अन्त में **'सद्यो यः पथि कालिदासवचसाम्'** कहकर कालिदास को अपना आदर्श बताया है। 'विक्रमाङ्‌कदेवचरितम्' महाकाव्य में वर्णित विक्रमाङ्‌कदेव व चंदेलदेवी के स्वयंवर वर्णन में महाकवि बिल्हण कालिदास से पूर्णतः प्रभावित हैं और महाकवि अभिराज जी भी राम–सीता स्वयंवर वर्णन में कालिदास की प्रभावान्विति से युक्त हैं जिसका वर्णन कालिदास के प्रभाव के अन्तर्गत किया जा चुका है। अतः हम कह सकते हैं कि अभिराज जी राम–सीता स्वयंवर वर्णन प्रसंग में कवि कालिदास के समान ही बिल्हण से प्रभावित हैं।

महाकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र पर कालिदास व पण्डितराज जगन्नाथ का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। कालिदास की प्रभान्विति को हम वर्णित कर चुके हैं लेकिन पण्डितराज जगन्नाथ का प्रभाव महाकाव्य के इतिवृत्त पर स्पष्टतया दृष्टिगत नहीं होता है किन्तु शब्द परिवृत्य सहत्व दोनों ही महाकवियों (कालिदास व पण्डितराज जगन्नाथ) में दृष्टिगोचर होता है। इसी शब्द परिवृत्य सहत्व को महाकवि ने दोनों ही महाकवियों से ग्रहण किया है। यदि हम यह कहें कि शब्द परिवृत्य सहत्व कालिदास के अनन्तर मात्र पण्डितराज जगन्नाथ की कविता में ही दिखलाई पड़ता है और इसे ही महाकवि ने ग्रहण किया है तो कोई अतियुक्ति नहीं होगी।

डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र पर कालिदास, श्रीहर्ष, जयदेव, बिल्हण व पण्डितराज जगन्नाथ के अतिरिक्त भारवि, भट्टि, कुमारदास आदि पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव भी

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/60

परिलक्षित होते हैं। इस विषय में समुल्लेखनीय है कि कालिदास अपने से पूर्ववर्ती ग्रन्थ रामायण से प्रभावित हैं अतः उनकी कृतियों पर रामायण का प्रभाव परिलक्षित होता है तथा संस्कृत साहित्य में कालिदास के पश्चात् जितने भी कवि हुए हैं वे सब कालिदास से प्रभावित हैं एवं उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए किसी न किसी रूप में कालिदास से सामग्री का अनुहरण किया है, यही कारण है कि अभिराज जी पर परिलक्षित होने वाला अन्य कवियों का प्रभाव कालिदास के प्रभाव से साम्यता रखने वाला है। अभिराज जी पर अन्य कवियों के प्रभाव को दर्शाने वाले कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं–

भारवि ने अमरा›नाओं का सौन्दर्य वर्णन करते हुए लिखा है कि– जब ब्रह्मदेव आप लोगों का निर्माण करने के लिए उद्यत हुए तब उन्होंने संसार भर की कमनीयता, जो इधर–उधर बिखरी हुई, कहीं चन्द्रमा में थी, कहीं कमलों में थी अथवा ऐसी ही बहुत सी जगह थीं, उसे पहले एकत्र करके आप लोगों की रचना की है, यही कारण है कि जनता स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिए ललायित रहती है।[1]

इसी तरह का वर्णन महाकवि अभिराज जी ने सीता के सौन्दर्य वर्णन प्रसंग में किया है जिसका उल्लेख हम कालिदास के प्रभाव के अन्तर्गत कर चुके हैं।

महाकवि भट्टि ने अपने 'रावणवध' महाकाव्य में दही मथने वाली गोपियों का सुन्दर चित्रण किया है जिसे देखकर राम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, यथा–

विवृत्तपार्श्वे रूचिरांगहारं ममुद्वहच्चारुनितम्बरम्यम्।
आमन्द्रमन्यध्वनिदत्ततालं गोपा›नानृत्यमनन्दयत्तम्।।[2]

अर्थात् राम दही मथती हुई गोपियों के उस नृत्य को देखकर प्रसन्न हुए जिसमें अंग के दोनों पार्श्व, इधर–उधर संचालित होते थे, उनका अंग सुन्दर दिखाई पड़ रहा था। उनके सुन्दर नितम्ब इधर–उधर हिलने से रमणीय लग रहे थे तथा उनके नृत्य में मन्द एवं गम्भीर गतिवाला दही मथने का शब्द ताल दे रहा था।

---

1. किरातार्जुनीयम्, भारवि 6/42
2. रावणवध–भट्टि 2/16

अभिराज जी ने भी इसी वर्णन से साम्यता रखने वाला ग्वालिन का सुन्दर चित्र उकेरा हैं जिसके अनुसार रेशमी घाघरे से श्रीमण्डित तथा कटिविराजित करधनी से मनोहर झंकार उत्पन्न करने वाली कोई ग्वालिन (श्रीराम के रूप–सौन्दर्य को देखकर) उत्कण्ठित होकर, माखन खिलाकर (उनका) मंगल–शकुन करने लगी, यथा–

प्रपदीनदुकूलमण्डिता काटिकांची कृत चारु झंकृतिः।
शकुनं नु चकार बल्लवी नवनीतैः पथि काचिदुन्मनाः।।[1]

कुमारदास ने 'जानकीहरण' महाकाव्य के सप्तम सर्ग में राम व सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया है। इसी तरह के पूर्वराग का प्रसंग राम–सीता के सम्बन्ध में अभिराज जी ने भी प्रस्तुत किया है जिसका उल्लेख जयदेव के प्रभाव के अन्तर्गत किया जा चुका है।

'जानकीहरण' में राम–सीता विवाहोपरान्त जनक द्वारा सीता को उपदेश दिए जाने का वर्णन है[2] इसी तरह का वर्णन अभिराज जी ने सीता की विदाई वेला में किया है जिसका उल्लेख कालिदास के प्रभाव के अन्तर्गत पूर्वमेव किया जा चुका है।

इस प्रकार महाकवि मिश्र पर विविध कवियों के प्रभाव का अंकन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि यद्यपि अभिराज जी अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों से प्रभावित हैं परन्तु महाकवि पर सर्वाधिक प्रभाव कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास का है जो महाकवि के वक्तव्य **'मूलं श्री कवि कालिदास कविता'** की सत्यता को अक्षरशः पुष्ट करने वाला है। अपने इसी गुण के कारण अभिराज जी आधुनिक साहित्यजगत में 'अभिनव कालिदास' की उपाधि को चरितार्थ कर रहे हैं। इस सादृश्य समुच्चयों को आलोक में लाने का उद्देश्य यह नहीं है कि महाकवि ने केवल पूर्ववर्ती कवियों के पदचिह्नों का अनुकरण किया है। महाकवि केवल पूर्ववर्ती कवियों के पुच्छभूत हैं। मूर्धाभिषिक्त महाकवियों का प्रभाव परवर्ती कवियों की रचनाधर्मिता से होते हुए ही साहित्यिक परम्परा का सृजन करता है। इसी परम्परा में वाल्मीकि को कालिदास में,

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–5/13,14
2. जानकीहरणम्–कुमारदास–9/4–9

कालिदास को भवभूति में, भास को श्रीहर्ष में तथा अन्यान्य कवियों को एक–दूसरे में प्रतिबिम्बित होते देखते हैं। उत्तम कवि प्राचीन साहित्य से इसका आहरण करता है और अपनी कृति को सहृदयाह्लादक बनाकर भविष्य को प्रत्यर्पित करता है। यही साहित्य के अभ्युदय का पथ है। महाकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी ने भी अत्यन्त सहज ढंग से अपने पूर्व सूर्यों से भाव–भाषाओं, दृश्यों के चित्रण की संयोजना का आवश्यकता के अनुरूप समाहरण किया है और अपने महाकाव्य को समाकर्षक बनाने का श्लाघनीय प्रयास किया है। उनके द्वारा स्थापित अभिनव रामकथा की परम्परा, वर्तमान तथा आने वाले कवियों को अवश्य ही प्रभावित करेगी।

प्रत्येक कवि अपने से पूर्ववर्ती सूरयों से अपनी साहित्य सर्जना हेतु विविध सामग्रियों का आहरण करता है तथा अपनी अभिनव रचना द्वारा आने वाले युग को नवीन सामग्री उपलब्ध कराता है। डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने भी अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से विविध सामग्री का अनुहरण करते हुए अपनी नव–नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से अभिनव रामकथा की परम्परा का सूत्रपात किया है जो उत्तरवर्ती कवियों के लिए ग्रंथ प्रणयन का उपजीव्य होगा। महाकवि अभिनव रामकथा के स्रष्टा हैं। यही महाकवि की उत्तरकाल को विशिष्ट देन है। इसके साथ ही महाकवि ने अपने महाकाव्य में स्यन्दिका व मैथिली नामक दो नूतन छन्दों की भी सर्जना की है जो उत्तरकाल के कवियों द्वारा प्रयुक्त किए जाएँगे। महाकवि के इन नवीन प्रयोगों को देखकर हम कह सकते हैं कि जिस तरह प्राचीनकाल से लेकर अधुनातन रामायण को ही आधार बनाकर, अपनी नवीन उद्भावनाओं से संजोकर साहित्यकारों द्वारा अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है, उसी तरह आगे आने वाली पीढ़ी अभिराज जी कृत 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के इतिवृत्त को ग्रहण कर आने वाले युगों में रामकथा आधृत ग्रन्थों का प्रणयन करेगी, ऐसी सम्भावना की जा सकती है। हो सकता है ग्रन्थकारों के मध्य में रामायणोपजीव्य कथा के स्थान पर जानकीजीवनोपजीव्य कथा अधिक लोकप्रिय हो जाए।

3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के नारी अस्मिता विषयक विचार –

महाकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के नारी अस्मिता विषयक विचारों पर प्रकाश डालने से पूर्व 'अस्मिता' शब्द के स्वरूप व अवधारणा पर प्रकाश डालना समीचीन होगा–

'अस्मिता' शब्द 'अस्मि+तल्+टाप्' के संयोग से बना है जिसका अर्थ है 'अहंकार।'[1] इसके अतिरिक्त भी 'अस्मिता' के अन्य अर्थ हैं– अभिमान, आत्मश्लाघा, घमंड, स्वाभिमान, गर्व तथा अपनी सत्ता या स्व का बोध होना।

इस तरह 'अस्मिता' का अर्थ है 'स्व' की पहचान, 'निजत्व' की भावना। मानवीय जीवन का उद्देश्य चाहे कुछ भी हो परन्तु उसका एक अस्तित्व होना अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या धनी, निम्न कोटि का हो अथवा उच्च कोटि का सभी का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, अपनी स्वयं की सत्ता होती है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग पहचान बनाने के लिए प्रयासरत है यही कारण है कि अस्मिता का प्रश्न वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में मुखर हो उठा है।

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है जहाँ पुरुष की अस्मिता तो निर्विवाद रूप से सभी युगों में अक्षुण्ण बनी रही है परन्तु स्त्री आज भी अपने अस्तित्व की विद्यमानता के लिए अनवरत संघर्षरत है। विभिन्न युगों में नारी अस्मिता के प्रश्न परिमित ही परिलक्षित होते हैं। यदि हम वैदिककाल से आधुनिक काल तक नारी की सत्ता का एक सूक्ष्म अध्ययन करते हैं तो नारी की दशा में अनेक तरह के उतार–चढ़ाव हमें दृष्टिगत होते हैं।

भारत में वैदिककाल को नारी स्वतंत्रता का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'[2] जैसी उक्तियाँ स्मृतिकाल में नारी के प्रति

---

1. संस्कृत हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे–पृ.सं.–133
2. मनुस्मृति–3/56

सम्मान को प्रदर्शित करने वाली हैं। इस काल में नारी को स्तुत्य स्थान तो प्राप्त था परन्तु उसकी अवधारणा पुरुष की सहयोगिनी के रूप में ही थी।

वैदिकोत्तरकाल में स्त्री व पुरुष के पृथक्–पृथक् कार्य विभाजित कर दिए गए। इस पृथक् कार्य विभाजन द्वारा स्त्री की स्वतंत्रता व अधिकारों पर धीरे–धीरे अंकुश लगने लगा। जिसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक व धार्मिक क्रियाकलापों में पुरुषों का वर्चस्व बढ़ने लगा एवं स्त्रियों की भागीदारी उपेक्षित होने लगी।

उपनिषद् काल में भी नारी का अस्तित्व संकटापन्न होता गया। इस काल में संकट से घिरी हुई स्त्री की अस्मिता मध्य युग तक पूर्णतया लुप्त हो गई। यह वही युग था जिसमें बाह्य आक्रमणकारियों के भय एवं अनादर के कारण कन्या जन्म को भी भारत में अभिशाप माना जाने लगा। इसी काल में नारी को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। प्रत्येक क्षेत्र में नारी का शोषण होने लगा। यही कारण है कि मध्यकाल को नारी अस्मिता के ह्रास का युग कहा जाए तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। नारी अस्मिता के इसी ह्रास के विरोध में 19वीं शती में नारी सशक्तिकरण के लिए नारी सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात समाज सुधारकों द्वारा किया गया। यही वह काल था जिसमें अनेक समाज सेवी सुधारकों तथा संगठनों ने नारी सशक्तिकरण पर बल देते हुए समाज में नारी दशा को सुधारने एवं उसकी अस्मिता को पुनः प्रतिष्ठित पद पर स्थापित करने में अप्रतिम सहयोग दिया। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, केशवचन्द्र प्रभृति समाज सुधारकों ने सती प्रथा, बाल विवाह एवं बहु विवाह प्रथा के विरोध में आवाज उठाई एवं नारी शिक्षा एवं विधवा पुनर्विवाह का समर्थन भी किया।

19वीं शताब्दी से लेकर अधुनातन स्त्री जागरण को लेकर अनेक संगठनों की स्थापना जननायकों, समाजसुधारकों द्वारा की गई है। इन संगठनों के कारण समाज में स्त्री की दशा में सुधार भी हुआ है। नारी शिक्षा के कारण स्त्रियाँ अपने सामान्य अधिकारों के प्रति सचेत भी हुई हैं। हम देखते हैं कि 21वीं शती में नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हुई है एवं कई क्षेत्रों में अपना परचम लहरा

रही है। नारी का वर्चस्व दिनों–दिन बढ़ रहा है, परन्तु आज भी भारतीय समाज का गहनता से अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि वर्तमान युग में भी समाज में पुरुष सत्ता ही प्रधान है। आज भी नारी अपनी अस्मिता की प्राप्ति एवं रक्षा के लिए छटपटा रही है, अपने अस्तित्व की तलाश कर रही है। अपनी सत्ता की इसी छटपटाहटपूर्ण तलाश के कारण 'नारी अस्मिता' का प्रश्न नारी मुक्ति आन्दोलन के वर्तमान युग में अत्यन्त मुखर है। स्त्री जीवन की इसी विडम्बना को प्रत्येक युग के कवियों ने अपने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्यायित किया है। अद्यापि नारी अस्मिता के प्रति जागरूक अनेक कविगण नारी को अपने काव्य अथवा नाट्य ग्रन्थों की नायिका बनाकर विपुल साहित्य की सर्जना कर रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में भी अनेक ग्रन्थकार हैं जिन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में नारी अस्तित्व को गौरवान्वित करने का प्रयास किया है। आधुनिक युग के इन कवियों में पं. नारायण शुक्ल, परीक्षित शर्मा, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, श्री भवानीदत्त शर्मा, ब्रह्मदेव शास्त्री, विष्णुदत्त शर्मा, आत्मारामशास्त्री, आगेटि परीक्षित शर्मा, सुबोधचन्द्रपंत, कालिका प्रसाद शुक्ल, बलभद्र शास्त्री, श्रीकृष्णलाल, चन्द्रभानु त्रिपाठी, वेदकुमारी घई, कृष्णमणि त्रिपाठी, बलभद्र प्रसाद गोस्वामी, लीलाराव, रामजी उपाध्याय, डॉ. एम.एल. शर्मा व हरिनारायण दीक्षित आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन महाकवियों द्वारा विरचित उर्मिलीयम्, सावित्री, उत्तरसीताचरितम्, सौमित्रिसुन्दरीचरितम्, सावित्री, सौलोचनीयम्, सावित्रीचरितम्, यशोधराचरितम्, झाँसीश्वरीचरितम्, राधाचरितम्, इन्दिराजीवनम्, मैत्रेयी, उर्वशी, मदालसा व मेनकावात्सल्यम्, सावित्री, सैरन्ध्री, मीराचरित, कैकेयीविजयम्, सीताभ्युदयम्, सावित्रीचरितम्, राधाचरितम् आदि ग्रन्थ स्त्री पात्रों को नायिकात्व प्रदान कर प्रणीत किए गए हैं जो इन महाकवियों की आधुनिक नारीवादी दृष्टि के परिचायक हैं। डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने भी इसी आधुनिक नारीवादी दृष्टि के अनुसार ही प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा से हटकर विदेहनन्दिनी, रामदुलारी, परम–पावनी जानकी को अपने महाकाव्य की नायिका के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। महाकवि ने अपने महाकाव्य की नायिका 'जानकी' के दिव्य

चरित के चित्रांकन द्वारा भारतीय समाज में नारी अस्मिता सम्बन्धी प्रश्न को उपस्थापित कर अपनी मौलिक, जनतांत्रिक तथा आधुनिक दृष्टि से नारी स्वाभिमान की रक्षा करते हुए उससे सम्बन्धित समस्याओं के समुचित स्पष्टीकरण एवं निराकरण का श्लाघनीय प्रयास किया है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर महाकवि के नारी अस्मिता संरक्षण सम्बन्धी विचार दृष्टिगत होते हैं परन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य के सत्रहवें व अठाहरवें सर्ग इस दृष्टि से अन्यतम हैं। इन दोनों सर्गों में महाकवि नारीवादी चिन्तक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं।

रामायण से लेकर अधुनातन वर्णित अग्निपरीक्षिता सीता का उसके पति द्वारा परित्याग, वह भी छलपूर्वक, नारी के प्रति युगों से चली आ रही पुरुष की नृशंस बर्बरता, क्रूरता एवं निरंकुश मनमानी का परिचायक है। रामकथा में यह सर्वाधिक निर्मम एवं निष्ठुर प्रसंग है, जो सदियों से नारी अस्मिता के पतन की दुःखद कहानी वर्णित करता आ रहा है। यदि इस प्रसंग को वाल्मीकि रामायण का अंश न मानकर परिशिष्ट माना जाए तो भी यह घटना तत्कालीन युग में नारी अस्मिता के पतन को सूचित करती है।

भगवती सीता भारतीय संस्कृति की आदर्शमयी देवी हैं। उनका पावन एवं सशक्त चरित्र प्रत्येक युग की नारी के लिए अनुकरणीय है। माँ वैदेही का चरित्र न केवल भारतीय नारी अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय है। इसी मत को दृढ़तापूर्वक अपने ग्रन्थ में प्रतिपादित करते हुए मालाश्रीलाल एवं नमिता गोखले ने लिखा है कि–

"If sita's character was a weak one why people so diverse as Indian and East Asians adore her as the greatest icon of their lives? From Thailand to laos, Janki's characterization in literature and in temples has inspired

generations. Her strength and inner integrity have led great poets to admire her and write poems to her glory."[1]

सम्पूर्ण जगत के लिए वन्दनीय, अनुकरणीय माँ सीता का अपने पति द्वारा बिना सूचना के परित्याग एक अद्भुत एवं नारी मुक्ति आन्दोलन के वर्तमान युग में विचारणीय घटना है, जो नारी स्वातंत्र्य के पोषक प्रत्येक सहृदय पाठक, चिन्तक, समाज सुधारक एवं कवि को अधुनातन उद्वेलित करने वाली है। महाकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने रामायण से विभिन्न सन्दर्भों को ग्रहण करते हुए अपने नारी अस्मिता विषयक विचारों को निम्नवत् प्रस्तुत किया है—

रामायण के उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत घटनाक्रम के अनुसार राज्याभिषेक के पश्चात् सीता के चरित्र की शुद्धता के विषय में लोकापवाद उठने पर राम लोकभय से सीता परित्याग का त्वरित निर्णय करते हैं, यथा—

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः।।
अपवाद्भयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।।[2]

अंतःसत्वा सीता के राम द्वारा परित्याग की यह घटना निश्चय ही नारी अस्मिता पर प्रश्न चिह्न है। यह घटना स्त्री के ऊपर पुरुष सहित तत्कालीन समाज के अत्याचार, उपेक्षा, अवमानना व तिरस्कार की परिचायक है, पुरुष की स्वार्थपरता की चरम सीमा यहाँ दृष्टिगत होती है। यह सम्पूर्ण वृत्त पुरुष प्रधान भारतीय समाज में स्त्री की उपेक्षित एवं शोषित अवस्था का सजीव चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। त्याग, समर्पण एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति सम्पूर्ण स्त्री जाति के लिए रत्नस्वरूपा वैदेही की यह अवमानना आधुनिक नारीवादी चिन्तक कवियों को अभिप्रेत नहीं है। यही कारण है कि आधुनिक कवि डॉ. अभिराज जी ने अपने महाकाव्य की नायिका सीता के स्वाभिमान एवं गरिमा की रक्षा द्वारा प्रत्येक भारतीय नारी की अस्मिता को महनीय पद पर प्रतिष्ठित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

---

1. In search of sita, Rivisiting mythology-Malashrilal & Namita Goghle P.N.-25
2. रामायण—उत्तरकाण्ड—45/14, 15

महाकवि ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में रामायण में वर्णित सीता निर्वासन प्रसंग को अपनी तार्किक एवं बौद्धिक दृष्टि से नवीन स्वरूप प्रदान करते हुए अपने नारी अस्मिता विषयक विचारों की सुषमा को चहुँ ओर प्रसारित किया है। महाकाव्य में सीता विषयक जनापवाद उठने पर लक्ष्मण व गुरु वसिष्ठ के वचनों, रोषपूर्ण उद्गारों में महाकवि के नारी अस्मिता संरक्षण सम्बन्धी विचारों व भावनाओं का चरमोत्कर्ष दर्शनीय है–

सीता विषयक प्रवाद फैलने पर लक्ष्मण पुनः राम द्वारा होने वाले सीता परित्याग से आशंकित हैं। अपनी पूजनीय भाभी के अस्तित्व व सम्मान की रक्षा के लिए वे सम्पूर्ण घटना को वसिष्ठ के समक्ष निवेदित करते हैं। अपने रोषपूर्ण उद्गारों को व्यक्त करते हुए लक्ष्मण कहते हैं कि–

यत्पुना राजकाभिधेयोन्मादितो मैथिलीं जनरंजने बद्धादरः।
निश्चुकोष जिघाय वाऽयोध्यापतिस्तद् भविष्यति दारुणं निश्चप्रचम्।।[1]

यदि राम द्वारा रजक के वचनों से उन्मादित होकर पुनः देवी मैथिली को निर्वासित किया गया अथवा त्याग दिया गया तो वह महान् अनर्थ होगा। नारी अस्मिता के पोषक महाकवि की नारी के प्रति आस्था उस समय ओर अधिक उद्भूत होती है जब सीता पर होने वाले अत्याचार की आशंका से कवि (लक्ष्मण के वक्तव्य द्वारा) सम्पूर्ण नगरी सहित स्वयं को भी नष्ट करने का प्रण लेते हैं, यथा–

सत्यमेव वदामि देवेमां पुरीमित्वरैर्निमिषे शरैर्धक्ष्याम्यहम्।
मज्जितस्सरयूजले पश्चात्स्वयमात्मदेहमपि प्रभो! नंक्षाम्यमुम्।।[2]

कविवर्य ने लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण वचनों द्वारा नारी को कठपुतली समझने वाले पुरुष समाज पर कटु आक्षेप किया है, साथ ही महाकवि ने कन्या, वधू, पत्नी, पुत्री आदि अनेक रूपों में नारी सत्ता को आदर्श स्वरूप प्रदान किया है। लक्ष्मण के ही माध्यम से महाकवि ने यह भी प्रतिपादित किया है कि समाज में विविध भूमिकाओं का

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17/41
2. वही–17/42

निर्वहन करने वाली नारी प्रताड़ना की अधिकारिणी नहीं है, वरन् पूजा एवं सम्मान की भागी है, यथा–

मैथिली ननु मैथिली दिव्योद्भवा सूर्यवंशमहीयसी सा देवता।
साऽत्मजा जनकस्य राजर्षेः स्नुषा स्वर्गिणोऽपि च तातपादस्यांजिता।।
राघवस्य करे न सा क्रीडाशुकी सा प्रभो! जनपट्टराज्ञी सम्मता।
नोऽधिकार इहावमन्तुं कस्यचित् तां यशोविमलां तिरस्कर्तुं ततः।।[1]

महाकवि ने सीता के वनवासों के कष्टों, अग्निपरीक्षा की वेदना आदि का उल्लेख कर प्रत्येक भारतीय अ›ना का अपने पति के प्रति समर्पण भाव दर्शाया है। इन वर्णनों द्वारा नारी अस्मिता के संरक्षक कवि यह संदेश देना चाहते हैं कि पति की प्रतिष्ठा के लिए अपना सर्वस्व परित्याग करने वाली नारी हमारे लिए गौरव का विषय है। उपर्युक्त संदर्भ में महाकवि ने लक्ष्मण के वचनों द्वारा अपने नारी अस्मिता विषयक विचारों को निम्न प्रकार मुखर किया है–

मल्लिकाक्ष सुतेव सा हित्वा समो मानसं वनवाकष्टान्यादधे।
सन्ततं निजसेवया स्नेहैश्च सा काननेऽपि सुखानि कान्तायाददात्।।
नीचरावणधर्षिता सीता सती वल्लभस्य कृते दुरन्तां वेदनां।
साऽन्वभून्निहता प्रविद्धा पीडिता रामजीवितजीविता पतिदेवता।।
शत्रुधाम्नि तिरस्कृता सा निर्दयं सर्वलोकसमक्षमेवानादृता।
प्राणलोभमपोह्य सरुढां चित्तां मत्करै रचितां न दग्धा पावकैः।।
मैथिलीमभिनन्द्य धाता धूर्जटिः पावको भम तातपादोऽपि स्वयम्।
ग्राहयां किल चक्रतुः श्रीराघवं वेद्म्यहं किमतः परः तद्गौरवम्।।[2]

लक्ष्मण अपनी माँ समान भाभी के चरित्र पर आक्षेप करने वाले धोबी के प्रति आक्रोशित हो क्षुद्र कीट, दुर्बुद्धि आदि शब्दों द्वारा उसकी भर्त्सना करते हैं एवं कुपित हो यहाँ तक कहते हैं कि 'उस धोबी ने जिन्दगी भर केवल कपड़े ही धोए हैं परन्तु वह आज तक अपने मन का अन्धकार (मल) नहीं धो सका', यथा–

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17/43,44
2. वही–17/45–48

एष नीचकृमिश्चरित्रं शङ्कते नारको रजकः प्रकृत्या दुर्मतिः।
क्षालितं वसनं तु तेनाऽजीवनं मानसं न तमोऽद्य यावत्क्षालितं।।[1]

लक्ष्मण के इन वचनों द्वारा महाकवि ने उस समस्त पुरुष समाज की गर्हणा की है जो आवेश में आकर नारी के चरित्र पर पंकप्रेक्षण करते हैं।

लक्ष्मण के ही समान गुरु वसिष्ठ भी महाकाव्य में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व के प्रबल संरक्षक व समर्थक के रूप में समक्ष आते हैं। सीता की रक्षा के लिए वसिष्ठ सर्वप्रथम गुरु पद की गरिमा के अनुरूप राम के आशंकित निरंकुश व्यवहार पर अंकुश लगाने के लिए राम को यह निषेधाज्ञा दिलवाते हैं कि 'मेरी उपेक्षा करके तुम्हें कोई भी निर्णय नहीं लेना है', यथा–

गच्छ वत्स! कवाटरन्ध्रोद्घोषितैः श्रावय द्रुतमेव रामं मद्वचः।
मामुपेक्ष्य न निर्णयो ग्राह्यस्त्वया कोऽपि राघव! सन्दिशत्येवं गुरुः।।[2]

नारी अस्मिता की रक्षा के लिए सतत सचेष्ट महाकवि का यह सर्वाधिक स्तुत्य प्रयास है, जिसके द्वारा महाकवि ने पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की स्वेच्छाचारिता पर लगाम कसी है।

राम के पास त्वरित निर्णय न लेने का सन्देश भिजवाने के पश्चात् वसिष्ठ एक सभा का आयोजन करते हैं जिसमें धोबी सहित समस्त पौरजनों को आमंत्रित किया जाता है। सभा का आयोजन करने के पीछे भी महाकवि का नारीवादी चिन्तन दर्शनीय है। अभिराज जी ने वसिष्ठ के शब्दों में आगे व्यक्त किया है कि जिस समाज में सीता समान सती–सावित्री नारी की अस्मिता तिरस्कृत की जाती है वह समाज व राष्ट्र निश्चय ही समूल नष्ट हो जाता है। वसिष्ठ इसे ही सभा आयोजन का हेतु बतलाते हुए कहते हैं कि–

अयोध्यकाः पौरजनाः समग्राः। मया वसिष्ठेव निवेद्य यूयम्।
आकारिता राजभये नृशंसे ह्युपस्थिते द्रागिह जीवने वः।।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–17 / 49
2. वही–17 / 55

आभ्यन्तरं मानसिकं करालं भयं भयानां प्रमुखं तदूर्ध्वम्।
आतङ्कमुत्पादयदात्मसृष्टं लुनाति भव्यं ननु कोसलानाम्।।[1]

इसके पश्चात् वसिष्ठ सम्पूर्ण सभासदों के समक्ष स्वयं का कालजयी स्वरूप एवं राम के महाविष्णुत्व रूप का प्रतिपादन करते हुए, सीता विषयक जनापवाद से समस्त सभाजनों को परिचित करवाते है। सीता विषयक अपवाद से उद्वेलित वसिष्ठ लोकतंत्र तथा बहुमत के अभिमत के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए रजक सहित प्रत्येक सभासद को अपना मत एवं विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं परन्तु इससे पूर्व वसिष्ठ सभी के समक्ष सीता की उत्पत्ति, लोकोत्तर दिव्य चरित आदि को प्रतिपादित करते हुए अनेक तर्कपूर्ण प्रश्न उपस्थापित करते हैं। यही वह प्रसंग है जहाँ कवि ने सीता के माध्यम से प्रत्येक नारी के गौरव, मान–मर्यादा, प्रतिष्ठा एवं समाज में उसकी स्वतंत्र पहचान से सम्बन्धित अनेक तर्कपूर्ण प्रश्नों को जन–जन के समक्ष प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम वसिष्ठ सीता की दिव्य उत्पत्ति को सभासदों के सामने वर्णित करते हुए प्रश्न उठाते हैं कि–

किमस्ति राजर्षिरिह क्षमायामन्योऽपि सीरध्वजतुल्यशीलः।
यस्यात्मजेयं खलु पट्टराज्ञी रामप्रियाऽस्माकमधीश्वरी च??[2]

क्या भूतल पर सीरध्वज के समान दिव्य आचरण वाला और भी कोई राजर्षि है, जिसकी दुहिता राघव की अर्धांगिनी यह सीता, हम सबकी पट्टमहिषी एवं साम्राज्ञी हैं। आगे वसिष्ठ कहते हैं कि–

पितुर्महिम्नैव विदेहजेयं ख्याता पृथिव्यामपि जानकी सा।
क्वचिच्च वैदेह्यपि बोध्यते सा सा मैथिली मैथिलभूपकन्या।।
अयोनिजां क्षेत्रकृषिप्रजातामन्यामपि त्वं श्रुतवानसि प्राक्।
कन्यामुदारां गुणरूपयुक्तां सीतासदृक्षीं यदि तद् वदेथाः।।[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/12, 14
2. वही–18/50
3. वही–18/51, 52

विदेहराज की यह कन्या अपने तातश्री की महिमा के कारण ही संसार में 'जानकी' के नाम से विख्यात है। कभी–कभी वह 'वैदेही' भी कही जाती है और मिथिला नरेश की कन्या होने के कारण 'मैथिली' भी। क्षेत्र कर्षण से उत्पन्न होने वाली, रूप एवं गुण से श्रीमण्डित, उदार प्रकृति वाली सीता–सरीखी किसी दूसरी अयोनिजा (देवी उत्पत्ति वाली) कन्या के विषय में यदि तुमने अब से पहले सुन रखा हो तो बताओ! सीता के अयोनिजा स्वरूप का प्रतिपादन करने के पश्चात् वसिष्ठ उसके लोकोत्तर दिव्य स्वरूप को प्रकाश में लाते हुए रजक सहित सभी पुरवासियों के समक्ष अनेक तर्कपूर्ण प्रश्नों को उपस्थापित करते हैं। सीता के विषय में वसिष्ठ कहते हैं कि–

प्रदीप्तवैश्वानरवेदिकायां स्थिताऽपि या कांचनतामवाप।

तां देववन्द्यामपि मैथिलीं त्वं जानासि सत्यं चरितावलीढाम्।।[1]

धधकती आग की चिता पर आरुढ़ होकर भी जिसने सुवर्णता (चरित्र की शुद्धि एवं तेजस्विता) प्राप्त की, देवताओं द्वारा भी संस्तवन करने योग्य, मैथिली को क्या तुम सचमुच कलंकित चरित्र वाली समझते हो।

यन्नेत्रदीप्ताग्निभयाऽभिभूतश्शशाक नो स्प्रष्टुमसौ दशास्यः।
स्वपापपश्चात्तपनप्रविद्धः सा जानकी किं चरितैर्विलुप्ता??[2]

जिसकी आँखों में दहकती (पातिव्रत–तेज की) आग के भय से सहमा हुआ महाबली दशानन उसे छू तक नहीं सका और (मन ही मन) अपने पापों के पश्चाताप से निरन्तर बिंधा रहा–वह देवी जानकी क्या चरित्रहीन है?

पतिव्रता सौम्यसतीत्वमूर्तिः सकृन्न या रावणमालुलोके।
सा राघवप्राणगतिर्द्वितीया सीता चरित्रैर्विकला विभाति??[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र– 18/53
2. वही–18/54
3. वही–18/55

सौम्य सतीत्व की साकार मूर्ति जिस पतिव्रता ने रावण को एक बार भी नहीं देखा, अपने वल्लभ राघव की दूसरी प्राणगति (हृदयस्पन्दन) वह सीता, तुम्हें अपने आचरणों से कलंकित प्रतीत हो रही है।

स्वयं समेषामपि जीवभाजां चरित्रमारक्षति या महिम्ना।

तस्याश्चरित्रं ननु शङ्से त्वं स्वबुद्धि मेधाऽहितगर्वभारः।।[1]

अपनी महिमा से जो (वैदेही) स्वयं समस्त प्राणधारियों के चरित्र की पूर्णतः रक्षा करती है, तुम भला उसके चरित्र पर आशंका कर रहे हो? अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा का इतना घमण्ड है तुम्हें!

अग्निर्भवेदन्यपदार्थतापमात्राप्रमाणं ज्वलनप्रभावात्।

परन्तु तवोच्चयशक्तिभाजो भवेत्प्रमाणं किमहो कृशानुः।।[2]

ज्वलनधर्मिता के प्रभाववश, अग्नि भले ही अन्य (अग्नीतर) पदार्थों की तापमात्रा का प्रमाण बने परन्तु तपोच्चयरूपी शक्ति से सम्पन्न स्वयमेव अग्नि (की तापमात्रा) का प्रमाण दूसरा भला कौन हो सकता है—

शक्तिर्भवेच्छक्तिमतः प्रमाणं प्रमाणमन्यन्न परन्तु शक्तेः।

स्वयं सृजत्यात्मगतं प्रमाणं ह्यनेहसि प्रार्थितपंचतत्वम्।।[3]

शक्ति शक्तिमान का प्रमाण बन सकती है परन्तु स्वयं शक्ति का प्रमाण, कोई दूसरा नहीं बन सकता। इस संसार में सर्वजनकाम्य पंचतत्व (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश) अपना प्रमाण स्वयं होते हैं (उनके लिए परतः प्रामाण्य की आवश्यकता नहीं)। इस तरह वसिष्ठ के उक्त वचनों द्वारा महाकवि ने सर्वदेववन्दनीय, शक्तिस्वरूपा, सीता को शुद्ध चारित्र्यवती, परमतेजस्विनी, अग्निस्वरूपा नारी के रूप में चित्रित करते हुए नारी अस्मिता को सुप्रतिष्ठित किया है। सीता के दिव्य चरित को उद्भासित करते हुए वसिष्ठ तुच्छ मति धोबी को अपने कटाक्षपूर्ण वचनों से आरोपित करते हुए कहते हैं कि—

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—18/56
2. वही—18/57
3. वही—18/58

एकोऽहमस्म्याहिततत्वबोधः सीतां विजानामिजगत्प्रवन्द्याम्।

यश्शंकते तच्चरितं प्रपूतं स चापरस्त्वं रजक! प्रमादिन्।।

प्रक्षालितं वस्त्रमलं त्वया भो मया स्वबुद्धिर्विमलीकृतेयम्।

क आवयोः श्रेष्ठतरः प्रशस्तः प्रश्नो ह्ययं निर्णयनीय एव।।[1]

'तत्वबोध (आत्मज्ञान) सम्पन्न एक मैं (वसिष्ठ) हूँ जो देवी सीता को त्रिभुवन वन्दनीय समझता हूँ। विक्षिप्त रजक! और दूसरे वह तुम हो जो कि वैदेही के सर्वथा पवित्र चरित्र को कलंकित कर रहे हो, अरे भाई! तुमने (केवल) कपड़ों की मैल धोई, परन्तु मैं अपनी इस बुद्धि का मल धोता रहा। अब दोनों (धोबियों) में कौन अधिक श्रेष्ठ है, अधिक प्रशंसनीय है– इस प्रश्न का निर्णय (इस संसद में) हो ही जाना चाहिए।' गुरु वसिष्ठ सीता का जगत् वन्द्या स्वरूप प्रतिपादित कर निर्णय लोकमत पर छोड़ देते हैं परन्तु सभासद किसी भी निर्णय पर पहुँचे उससे पूर्व वसिष्ठ सीता के स्वतंत्र अस्तित्व की चर्चा करते हैं। नारी के सामान्य अधिकारों को सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए वसिष्ठ कहते हैं कि–

भार्यैव सीता नहि राघवस्य प्रजाऽपि सा प्राप्तसमाधिकारा।

सौभाग्यलक्ष्मी रघुवंशिनां सा पौरप्रजानामपि पट्टराज्ञी।।[2]

सीता राघव की भार्यामात्र नहीं हैं, वह औरों के ही समान अधिकार प्राप्त (कौसल की) प्रजा भी हैं। वही रघुवंशीय नरपतियों की सौभाग्यलक्ष्मी हैं तथा नागरिकों एवं प्रजाजनों की साम्राज्ञी भी हैं।

एकं मतं नैव मतं समेषां निरर्थकं तत्खलु लोकतन्त्रे।

मतं बहूनां यदि पट्टराज्ञीं क्षिपेत्तदा लोक इह प्रमाणम्।।[3]

मात्र एक व्यक्ति का मत जनसमूह का मत नहीं माना जा सकता। लोकतंत्र में निश्चित रूप से निरर्थक है। हाँ यदि बहुमत, पट्टमहिषी देवी सीता को कलंकित करता है तो उसका प्रमाण, इस संसद में जनता स्वयं है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/62, 63
2. वही–18/67
3. वही–18/68

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।
मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[1]

देवी सीता, न तो (एक) धोबी द्वारा की गई निन्दा के कारण दण्डनीय है और न ही (पत्नी होने के कारण अपने) पति के परुष (कठोर निष्करुण) अधिकार मात्र से! राजमहिषी के भाग्य का निर्णय तो इसी जनसभा में बैठी प्रजाओं के (बहु) मत से होगा।

वसिष्ठ के वचनों से महाकवि के नारी अस्मिता विषयक विचारों की पुष्टि होती है। महाकवि ने यहाँ सीता के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि आधुनिक जनतांत्रिक युग में सभी का स्वतंत्र अस्तित्व है, चाहे वह नर हो या नारी, प्रत्येक की अपनी सत्ता है। वर्तमान समाज में पति भी अपने परुष अधिकार से पत्नी को प्रताड़ित नहीं कर सकता। महाकवि के प्रकृत विषयक विचार और भी पुष्ट होते हैं जब वसिष्ठ राघव का प्रबोधन करते हैं एवं 'दाम्पत्य' का गहन अर्थ समझाते हुए कहते हैं कि–

रागेऽक्षते वल्लभसम्पदस्तु प्रिया›ना तत्र न मे विरोधः।
परन्त्वसिद्धे खलु रागबन्धे न साऽप्रिया पत्युरुपार्जितां स्वम्।।[2]

पति और पत्नी के बीच यदि अनुराग (प्रेम) अक्षत हो तो पत्नीभूता महिला को, पति की सम्पत्ति (उसके अधिकार की वस्तु) मान लिया जाए। उस स्थिति का मैं विरोध नहीं करता। परन्तु यदि दोनों के बीच प्रेम का बन्धन अन्तिम रूप से टूट चुका हो तो वह प्रिया (पत्नी अथवा अप्रिया–पति को न मानने वाली महिला) अपने पति की उपार्जित सम्पत्ति नहीं रह जाती।

दाम्पत्यमस्ति प्रणयैकमूलंविपर्यये तन्न बिभर्ति संज्ञाम्।
रागानुबन्धे त्रुटिते न काऽपि कस्यापि भार्या न च कोऽपि भर्ता।।[3]

'दाम्पत्य' कहते ही उसे हैं जिसके मूल में एकमात्र प्रणय (प्रेम) हो, परन्तु विपरीत स्थिति में (अर्थात् पति–पत्नी के बीच प्रेम न रह जाने पर) दाम्पत्य संज्ञा ही

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/69
2. वही–18/70
3. वही–18/71

नहीं रह जाती। प्रेम का अनुबन्ध सर्वथा टूट जाने पर न कोई महिला किसी पुरुष की पत्नी रह जाती है और न ही कोई पुरुष (किसी महिला का) पति रह जाता है।

रामो यदि द्वेष्टि विदेहजातां नासौ तदा वल्लभतामुपैति।
पत्नीं स्वकीयां दयिताधिकारैर्नासौ बहिष्कर्तुमपि क्षमोऽस्ति।।[1]

राम (कारण कुछ भी हो) यदि विदेहनन्दिनी से द्वेष करते हैं प्रेम नहीं करते हैं तो फिर उस स्थिति में सीता उनकी वल्लभा (पत्नी) ही नहीं रह जाती है। अब उस स्थिति में अपनी पत्नी मानकर, पति के अधिकार से, राघव वैदेही को निर्वासित करने में समर्थ नहीं रह जाते। सीता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुए आगे वसिष्ठ कहते हैं कि–

दण्ड्योपराद्धः खलु धर्मशास्त्रे न साधुता शीलगुणार्जवानि।
न वेद्मि वेदेहसुतापराधं कस्माद्धि दण्ड्या खलु पट्टराज्ञी।।[2]

'धर्मशास्त्र की व्यवस्था यह है कि अपराध करने वाला व्यक्ति ही दण्डनीय होता है। परन्तु साधुता, सच्चरित्रता, गुणवत्ता तथा ऋजुता के दण्डित होने का कोई विधान नहीं है (देवी सीता जिसकी साकार मूर्ति हैं) मैं तो विदेहनन्दिनी का (कोई) अपराध जानता ही नहीं। तो फिर कोसल साम्राज्य की साम्राज्ञी दण्डनीय कैसे हो सकती हैं।

करोतु पापं मनसोऽपराधं कोऽप्यन्य एव प्रतिरोष बुद्ध्या।
भुनक्तु दण्डं ह्यकृतापराधश्चान्यो जनो हन्त हतं प्रभुत्वम्।।[3]

प्रतिरोष (मन की गुबार निकालने) की दुर्भावना से मन का पाप अथवा (जघन्य) अपराध तो कोई और (एक धोबी) करे और उसका दण्ड भोगे अपराध न करने वाला कोई और व्यक्ति (सीता) आह! मर चुकी ऐसी सम्प्रभुता।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/72
2. वही–18/73
3. वही–18/74

यहाँ महाकवि ने जनतांत्रिक शासन पद्धति के अनुरूप यह प्रतिपादित किया है कि लोकतंत्र में वास्तविक अपराधी को ही दण्डित करने का प्रावधान है। निरपराधी को दण्डित करने का न तो कहीं प्रावधान है और न ही यह लोकतांत्रिक शासन पद्धति के अनुरूप ही है। कवि का मानना है कि सीता निर्दोष है। अपहरण के समय वह विवश थी, पराधीन थी, विवशता के कारण ही रावण ने उसके शरीर का बलात् स्पर्श किया था, इसमें वैदेही की इच्छा नहीं थी अतः वह निर्दोष है। निर्दोष सीता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने के पश्चात् कवि कहते हैं कि मेरी दृष्टि में तो रजक सहित सम्पूर्ण लोक (जो सीता के शुद्ध चरित्र पर आक्षेप लगा रहा है) अपराधी है, दण्डनीय है।

निरपराधी सीता के धवल चरित्र पर लगने वाले कलंक से महाकवि अभिराज जी मर्माहत हैं, संत्रस्त हैं। महाकवि की छटपटाहट वसिष्ठ गुरु के वचनों में संदर्शनीय है, जहाँ गुरु वसिष्ठ सीता की अग्निपरीक्षा को ढाल बनाकर सभी सभासदों को ललकारते हुए कहते हैं कि–

चरित्रमास्कन्दति पट्टराज्ञ्याः प्रजाजनो यो हि विरुद्धबुद्धिः।
चितां समारुह्य निजं चरित्रं प्रदर्शयेत्सोऽपि सकृत् पवित्रम्।।[1]

"विरुद्ध बुद्धि रखने वाला जो कोई भी प्रजाजन राजमहिषी देवी सीता के चरित्र को लांछित कर रहा है, वह स्वयं भी केवल एक बार, चिता पर चढ़कर अपने चरित्र की पवित्रता का प्रदर्शन करे।"

इस प्रकार सीता के विशुद्ध चरित्र के विषय में विविध तर्कपूर्ण प्रश्नों, प्रमाणों को प्रस्तुत करने के पश्चात् वसिष्ठ देवी वैदेही के भाग्य का निर्णय जनता–जनार्दन के निर्णय पर छोड़ देते हैं। वसिष्ठ के उपरत होते ही सम्पूर्ण सभासद ग्लानि एवं विषाद से अवनत हो जाते हैं। रजक को भी अपने वचनों पर पश्चाताप होता है। वह श्रीराम से अपने तुच्छ कृत्य के विषय में बारम्बार क्षमायाचना करता है। करुणानिधान श्रीराम धोबी को क्षमादान देते हैं एवं सीता के विषय में उठने वाला प्रवाद शान्त हो जाता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–18/78

इस तरह महाकाव्य के सत्रहवें व अठारहवें सर्ग में महाकवि ने सीता के माध्यम से भारतीय समाज में नारी अस्मिता पर उठने वाले प्रश्नों का समाधान कर नारी अस्मिता की समुपस्थापना की है एवं सदियों से प्रश्नों की परिघा से आवेष्टित जानकी की अस्मिता की पुनः प्रतिष्ठापना द्वारा प्रत्येक भारतीय नारी की अस्मिता को गौरवान्वित किया है। इसके साथ ही महाकाव्य में महाकवि ने अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की स्वर्णमयी मूर्ति के स्थान पर स्वयं सीता को ही यज्ञ सम्बन्धी धार्मिक कार्यों के सम्पादन में राम की सहयोगिनी निरुपित किया है। यह प्रसंग भी महाकवि के नारी सम्मान का सूचक है क्योंकि एक स्त्री के जीवित होने पर भी उसकी उपेक्षा करके, उसे मृत–प्रायः मानकर उसके स्थान पर स्वर्णमयी मूर्ति की स्थापना, निश्चय ही नारी गरिमा की अवमानना है, उसके मौलिक अधिकारों का हनन है। महाकवि ने अपने महाकाव्य में सीता को पुनः गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित करवाकर उसके रूप में सम्पूर्ण स्त्री जाति के इतिकर्त्तव्यता (उपकारिता) की सिद्धि की है।

अन्ततः नारी के स्वतंत्र अस्तित्व के पोषक अभिराज जी की नारीवादी दृष्टि इस श्लोक में संदर्शनीय है–

सुतेयं पत्नीयं भवनवधुकेयं च भगिनी
ननान्देयं श्वश्रूस्तनयदयितेयं च जननी।
सखी नप्त्री पौत्री किमधिकमहो गौरवपदं
न किं धत्ते कन्या द्रुहिणरचनायामनुपमा।।[1]

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–8 / 80

4. महाकाव्य में तेजस्विनी नारी के रूप में सीता –

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[1]

काव्य जगत का प्रजापति कवि होता है और वह अपने युग की माँग के अनुसार ही स्वरूचि से इस जगत में परिवर्तन करता है। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए आचार्य मम्मट ने भी लिखा है कि–**नियतिकृत नियमरहितां।।**[2]

अर्थात् सम्पूर्ण मानव सृष्टि तो विधाता के नियमों से बद्ध है परन्तु काव्य जगत की सृष्टि तो नियति के अटल नियमों से बद्ध न होकर स्वतंत्र है। इस काव्य जगत् में कवि की सत्ता ही प्रधान है। प्रत्येक कवि अपने युग की माँग के अनुसार ही अपनी काव्य सृष्टि में अभिनव विषयों का समावेश करता है एवं उसे नवीन परिवेश के अनुरूप परिवर्तित कर वर्णित करता है। यही कारण है कि प्रत्येक कवि के काव्य में तत्कालीन परिवेश की (सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं आर्थिक) झलक दिखलाई पड़ती है एवं इसी के आधार पर विभिन्न युगों के कवियों की कृतियों में पार्थक्यता का समावेश होता है।

कवियों की इसी काव्य सृष्टि में वाल्मीकि कृत रामकथा पर आधारित सीता का चरित्र सहस्राब्दियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य प्रणेताओं की नित–नूतन उद्‌भावनाओं द्वारा उन्मीलित किया जाता रहा है तथा साहित्य मर्मज्ञों, सामाजिकों, मनीषियों, धार्मिकों तथा रामकथानुरागियों द्वारा अधीत एवं अध्यापित किया जाता रहा है। रामकाव्य परम्परा में सीता आदर्श भारतीय नारी का उज्ज्वल निदर्शन है। नारी पात्रों में सीता ही सर्वाधिक विनयशीला, लज्जाशीला, सहिष्णु और पातिव्रत्य की दीप्ति से दैदीप्यमान तेजस्विनी नारी है। समूचा रामकाव्य उसके तेज, तप, त्याग, बलिदान, पातिव्रत्य के मंगल कुमकुम से शोभायमान है।

---

1. ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन–पृ.सं.–312
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–1/1

सीता चरित का सबसे बड़ा आकर्षण है– उसकी तेजस्विता। वाल्मीकि रामायण की सीता परम तेजस्विनी नारी है, रामायण में कहीं भी सीता का दीन–हीन एवं कातर स्वरूप समक्ष नहीं आता है। वह सर्वत्र परम ओजस्विनी पातिव्रत्य तेज से परिपूर्ण क्षत्राणि के रूप में ही वाल्मीकि द्वारा चित्रित की गई है परन्तु वाल्मीकि के पश्चात् परवर्ती साहित्य में बदलते सामाजिक परिवेश के अनुसार ही सीता के चरित को साहित्यकारों द्वारा चित्रित किया गया जिसका प्रभाव हमें भास, कालिदास एवं भवभूति आदि की सीता में देखने को मिलता है। भास की सीता शान्त एवं गंभीर है, वहीं कालिदास की सीता एकदम मौन है तथा भवभूति के समय में तो वाल्मीकि की तेजस्विनी सीता एकदम दीन–हीन, करुणा की प्रतिमूर्ति बन गई है। परवर्ती साहित्य में भी अधिकांश कवियों ने समाज में स्थित नारी दशा के अनुरूप ही सीता का चरित्र–चित्रण करते हुए उसे दीन–हीन, अबला एवं करुणा की प्रतिमूर्ति के रूप में उकेरा है परन्तु वर्तमान समाज में जबकि नारी दशा में परिवर्तन हुआ है, साहित्यकारों की दृष्टि भी नारी के दीन–हीन स्वरूप के चित्रण से हटकर उसके सशक्त स्वरूप के चित्रण की ओर आकृष्ट हुई है– डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र एवं डॉ. रेवाप्रसाद जी की सीता इसका उत्तम निदर्शन है।

अभिराज जी ने अपने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में सीता को दीन–हीन करुणा की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित न करते हुए उसे परम तेजस्विनी नारी के रूप में चित्रित किया है। कविवर्य डॉ. अभिराज जी की सीता का चरित्र आधुनिक युग में प्रत्येक नारी के लिए अनुकरणीय है।

महाकवि का मत है कि वर्तमान समय में चारित्रिक दुर्बलता अपने पैर अत्यन्त विस्तृत रूप में पसार रही है, नर–नारी सभी चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार होते जा रहे हैं अतः सीता सम तेजस्विनी नारी का चरित्र ही आधुनिक समाज के लिए आदर्श, अनुकरणीय एवं पथ–प्रदर्शक है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में अनेक स्थल हैं जहाँ हमें सीता के तेजस्विनी रूप के दर्शन होते हैं। कुछ प्रमुख स्थल निम्नवत् हैं–

जानकी का तेजोमय रूप सर्वप्रथम उस समय प्रकट होता है जब पिनाक धनुष उठाने में असफल विविध राजाओं को अपनी पुत्री द्वारा अनायास ही उपासना के लिए धनुष उठाने की बात जनक कहते हैं, यथा–

सीरध्वजोऽहं मम सोदरश्च कुशध्वजाख्यस्स्वयमात्मजा मे।
यच्छांकरं कार्मुकमर्चनायै संस्थापयामासुरितस्ततोऽलम्।।[1]

पाँच हजार व्यक्तियों द्वारा खींचकर लाने वाले[2] (महाकाव्य में उपलब्ध वर्णनानुसार) धनुष को सीता द्वारा फूल के समान उठाकर इधर–उधर रखना सीता के शारीरिक व मानसिक बलिष्ठता का सूचक है।

प्रणययाचना करने वाले रावण के साथ व्यवहार में भी सीता का तेज प्रकट हुआ है, जब छलपूर्वक यतिवेशधारी रावण अपना वास्तविक रूप प्रकट कर आत्मप्रशंसा द्वारा सीता के प्रति प्रणयनिवेदन करता है तब दैन्य, क्रोध, रोष एवं भय से संत्रस्त सीता यथाकथञ्चित् धैर्य धारण कर रावण को आत्मप्रशंसा व प्रवंचना प्रवण व्यवहार के लिए फटकारती हुई कहती है कि–

सा कथंचिदुपेत्य धैर्यमुवाच दैन्यक्रोधरोषभयार्दिता श्रृणु भो दशास्य!
धिक् छलं हतपौरुषं विबुधाधिपत्यं धिक् च ते मलिनायितंह्रदयंनिकृष्टम्।।
इन्द्रियं न जितं किमिन्द्रजयेन तत्ते ह्रत्तमो न गतं ततस्तरणोशिता का?
निष्कले त्वयि का नु चन्द्रकलासमीक्षा वर्जिता मरूता त्वयैव धृताऽस्ति वात्या।।[3]

"हे दशानन सुनो! देवताओं पर हुए तुम्हारे आधिपत्य तथा तुम्हारे निर्वीर्य पौरुष को धिक्कार है और धिक्कार है मलिनता–भरे तुम्हारे निकृष्ट ह्रदय को! यदि तुम अपनी इन्द्रियों को नहीं जीत सके तो इन्द्र पर विजय प्राप्त करने का क्या लाभ? यदि तुम्हारे मन का गहन अंधकार ही नष्ट नहीं हुआ तो सूर्य पर प्रभुता प्राप्त करने का

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–7/50
2. वही–7/37
3. वही–11/98, 99

क्या अर्थ है? जब तुम स्वयं निष्कल (गुणहीन) हो तो चन्द्रकला की समीक्षा व्यर्थ है? आश्चर्य है कि मरुत द्वारा वर्जित की गयी वात्या (आँधी) को अब तुम्हीं उठा रहे हो।"

पतिपरायणा सीता अपने पति में ही अपनी एकमात्र आस्था प्रकट करती है एवं अपने पति के पौरुष की प्रशंसा करती हुई पुनः रावण के गर्हित व्यवहार की आलोचना करती है कि–

सांप्रतम् खलु ते छलं निखिलं प्रवेद्मि राघवो मम देवरश्च यथोपनीतौ।
आगतोऽसि निरन्तरायमवेत्य सर्वं पाप! पापमयीमिमां विनतिं प्रयोक्तम्।
वल्लभा रघुवंशभानुनिभस्य चाहं राघवस्य विदेहजा च कुलप्रसूता।
स्वप्नजाऽपि न मे रतिः पुरुषान्तरेषु स्वामिजीवितजीविताऽस्मि तदर्पिताऽहम्।।
गच्छ यावदुपैति नो ह्यनुजद्वितीयो राघवः खरदूषणादिपिशाचहन्ता।
कार्मुके दयितस्यमे सशरे ह्यधिज्ये क्रन्दितुं क्षमसे न रावण! विक्षता›ः।।[1]

अब मैं तुम्हारी सारी की सारी छल–वंचना को भलिभाँति समझ गयी हूँ, जिस तरह से तुम मेरे प्राणवल्लभ राघव तथा देवर लक्ष्मण को यहाँ से दूर ले गए हो! आश्रम को विघ्नबाधा से रहित देखकर हे पाप! अब तुम अपनी पापमयी अभ्यर्थना का प्रयोग करने के लिए यहाँ आए हो।

मैं सद्वंश में उत्पन्न महाराज जनक की पुत्री तथा रघुवंश–भानु राम की प्राणवल्लभा हूँ। पर–पुरुष के प्रति स्वप्न में भी मेरा अनुराग नहीं रहा है। अपने स्वामी के जीवन से ही मैं जीवित हूँ, सर्वात्मना उन्हीं पर अर्पित हूँ।

खर–दूषण आदि निशाचरों के विनाशक राघव अपने भाई के साथ जब तक यहाँ लौट नहीं आते (उससे पूर्व ही) भाग जाओ यहाँ से! अन्यथा मेरे प्राणवल्लभ द्वारा चढ़ी प्रत्यंचा एवं संधानित शर वाले धनुष को उठा लेने पर, हे रावण! क्षत–विक्षत अंग वाले तुम चिल्ला भी नहीं पाओगे।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–11/100, 111, 112

विलासवन में रावण के बारम्बार प्रणययाचना करने पर सीता लम्पट रावण के अनुराग को ठुकरा देती है एवं कटु उक्तियों से उसके इस आचरण की कठोर भर्त्सना करती है, अशोकवन में एकाकी होने पर भी सीता अपने शील का परित्याग नहीं करती वह अनेक तर्क–वितर्कों से रावण को निरुत्तर एवं हताश कर देती है। किसी साधारण स्त्री से इस तरह के साहसपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सीता के पातिव्रत्य तेज की दीप्ति ही है कि सम्पूर्ण लंकानगरी में राक्षसों से घिरी होने पर भी वह भयवश अपने पातिव्रत्य का त्याग नहीं करती बल्कि इसके विपरीत वह अपनी तेजस्विता का परिचय देती हुई रावण को निर्भीकतापूर्वक फटकारती है। महाकवि ने स्वयं इस बात का उल्लेख महाकाव्य में किया है कि–

स विलोक्य विदेहजां ज्वलन्मणिभूषामिव हृद्यभीषणाम्।
भुजगस्य भिया शशाक नो सहसा स्वीयवचांसि जल्पितुम्।।
अवलम्ब्य विपन्नसाहसं निजगादाथ वचो यथायथम्।
श्रुणु मैथिलि! यन्मयोद्यते निभृतं देहि यथोचितोत्तरम्।।[1]

विषधर सर्प की ज्वलन्त मणिभूषा के समान रमणीय एवं भीषण वैदेही को देखकर अकस्मात् रावण अपने उद्‌गारों को प्रकट करने में भय के मारे समर्थ नहीं हो सका, तदनन्तर अपने बचे–खुचे साहस का सहारा लेकर उसने जैसे तैसे अपनी बात कहनी प्रारंभ की– हे मैथिली! मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे चुपचाप सुनो और मुझे उसका समुचित उत्तर दो।

रावण द्वारा पुनः पुनः विविध प्रलोभन को देकर प्रणययाचना करने पर भी वैदेही अपने सतीत्व का परित्याग नहीं करती। वैदेही रावण को अनेक कटुवचनों द्वारा धिक्कारती है। उसकी उक्ति समर्चनीय एवं संदर्शनीय है–

अयि रावण! धिक् पराक्रमं विजयं धिक् तव पाण्डितीमपि।
चरितं खलु ते प्रमाणयेत् तव शौर्य विभवं यशस्करम्।।[2]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–12/51, 53
2. वही–12/60

हे रावण! धिक्कार है तेरे विजय और पराक्रम को। तेरे पाण्डित्य को भी धिक्कार है। तेरा दुश्चरित्र ही प्रमाणित कर रहा है कि तू कितना पराक्रमी ऐश्वर्यशाली एवं यशस्वी है।

रघुनाथपादाब्जमाधुरीं मनसाऽप्यन्यजनं न चिन्वतीम्।
इह पञ्जरबन्धनाश्रितामबलां मां वदितुं न लज्जसे।।[1]

रघुनाथ के चरण कमलों की माधुरीभूता, मन से भी परपुरुष का चिंतन न करने वाली और इस लंकापुरी में एक राजमहल में बलपूर्वक नियन्त्रित कर दी गई मुझ अबला से बात करते तुझे लाज नहीं आ रही है।

शिवभक्तिरियं नु कीदृशी प्रणयश्च व्यभिचारस›तः।
गरिमाणमहो न रक्षति प्रमदाया धिगिदं विलोचनम्।।[2]

यह तेरी कैसी शिव भक्ति है? और कैसा है तेरा यह प्रेम जो व्यभिचार से संगत है? जो एक नारी की गरिमा की रक्षा नहीं करते आह! धिक्कार है तेरे इन नेत्रों को।

अयि रावण! ते नु पौरुषं क्व गतं शम्भुपिनाकतोलने।
परिणीय कथं न मां तथाऽनलसाक्ष्यैरुपनीतवानसि।।[3]

रावण मैं पूछती हूँ भगवान शिव का पिनाक धनुष उठाते समय तेरा पौरुष कहाँ चला गया था (यदि तुझमें सामर्थ्य थी तो) यज्ञमण्डप में ही धनुष तोड़कर, अग्नि को साक्षी मानकर तू मुझे विवाहकर क्यों नहीं ले आया।

बहु जल्पसि मूढ! किं मुधा ननु ते मृत्युरुपैति तेऽन्तिकम्।
उपस्यास्यसि तामधोगतिं प्रगता यां खरदूषणादिकाः।।[4]

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—12/61
2. वही—12/62
3. वही—12/63
4. वही—12/64

जड़बुद्धि! तू व्यर्थ ही इतनी बकवास क्यों करता है? निश्चय ही तेरी मृत्यु तेरे सिर पर मँडरा रही है। तेरी वही अधोगति होने वाली है जो खर और दूषण आदि की हुई।

कुलिशादपि घोरघस्मरो रघुनाथस्य शरोऽग्निसन्निभः।

तव तूलतनुं रणा›णे ज्वलयिष्यत्यथ नाऽत्र संशयः।।[1]

दहकती अग्नि के समान रघुनन्दन का बाण वज्र से भी कहीं अधिक भीषण एवं विनाशकारी है। समरभूमि में रुई जैसे तेरे शरीर को जलाकर भस्म कर देगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

दनुजाधम! मां न ते रतिः प्रणयो वाऽथ समाहरत् किल।

नियतं शृणु जानकी त्वयाऽन्वयनाशाय बलादिहाहृता।।[2]

हे राक्षसाधम! निश्चय ही तेरी आसक्ति अथवा तेरा प्रेम मुझे लंका में नहीं ले आया है। इस बात को कान खोलकर सुन ले कि अपने वंश का समूल नाश कराने के लिए ही तूने सीता का बलपूर्वक हरण किया है।

न भयं मम चन्द्रहासतः शृणु कामान्ध! मुमूर्षुरस्म्यहम्।

रघुनाथदिदृक्षया परं वपुरद्यावधि रक्ष्यते मया।।[3]

हे कामान्ध! तू यह भी सुन ले कि मुझे तेरे चन्द्रहास (खड्ग) से भय नहीं है। मैं तो स्वयं मरने को इच्छुक हूँ, परन्तु मात्र रघुनाथ के दर्शन की आकांक्षा से आज तक अपने शरीर की रक्षा करती चली आ रही हूँ।

इयदेव न ते विभासितं नलिनी भास्कररागरंजिता।

अमृतांशुमपि प्रभोज्ज्वलं निशि दृष्ट्वा न विकासमश्नुते।।[4]

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—12/65
2. वही—12/66
3. वही—12/67
4. वही— 12/68

इतनी छोटी सी बात तेरी समझ में नहीं आयी कि कमलिनी केवल भास्कर के अनुराग से रंजित होती है? शीतल रात्रि में प्रभापटल से उज्ज्वल अमृतांशु चन्द्रमा को भी देखकर वह विकसित नहीं होती है।

अहमस्मि रघूत्तमप्रिया रघुनाथानन चन्द्र चन्द्रिका।
इतरेषु जनेषु का स्पृहा पुरुहूँऽस्त्वथवाऽस्तु रावणः।।[1]

मैं भी रघूत्तम श्रीराम की भार्या हूँ। केवल (अपने स्वामी) रघुनाथ के मुखचन्द्र की चन्द्रिका हूँ, और व्यक्तियों के प्रति मेरी स्पृहा कैसी? चाहे वह देवराज इन्द्र हो चाहे लंकापति रावण।

गणय स्वदिनानि रावण! दयितो मे न भविष्यति श्लथः।
त्वमवाप्स्यसि निश्चितं फलं द्रुतमेवाचरितस्य स›रे।।[2]

हे रावण! अब तेरे जीवन के गिने चुने दिन ही रह गए हैं। मेरे स्वामी निष्क्रिय नहीं बैठे होंगे। समर भूमि में बहुत शीघ्र ही तू अपने आचरण का सुनिश्चित फल प्राप्त करेगा।

इस तरह शत्रुकुल से आक्रान्त होकर भी तेजस्विनी सीता रावण की प्रत्येक बात का अत्यन्त निर्भीकता से प्रत्युत्तर देती है। सीता का प्रत्येक कटु उत्तर काममोहित रावण को मर्माहत कर देता है। रावण सीता को विषवल्लरी आदि सम्बोधनों से सम्बोधित कर मारने के लिए उद्यत होता है। यहाँ भी सीता की निर्भीकता एवं तेजोमय दीप्ति दर्शनीय है। सीता रावण से डरकर उसके समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करती अपितु रावण के बलात् स्पर्श से दूषित अपने शरीर को अग्नि में भस्म करना श्रेयस्कर मानती है। महाकाव्य में अपने चरित्र की पवित्रता को प्रथमगण्य मानकर वैदेही त्रिजटा से कहती है कि–

नेदं वपुः श्रयति मे शुचितां पुराणीं स्पर्शेण दूषितमहोऽधमरावणस्य।
अद्यैव नाथ! विदहामि चिताग्नितल्पे स्याद्येन जन्मनि नवे पुनरेवपूतम्।।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र– 12/69
2. वही–12/70

मद्दुखसंगिनि! सखि त्रिजटे! दयस्व आनीय काष्ठदहनादि चितां विधेहि।
सह्यो न सम्प्रतिमयाऽयमवद्यभारस्तज्जीवितं सपदि भस्मचयं करिष्ये।।[1]

सीता का निर्भीक, साहसी एवं तेजोमय रूप एवं सतीत्व की पराकाष्ठा उस समय दृष्टिगत होती है जब रावण सीता को प्रवंचित करने के लिए रघुपति का माया निर्मित छिन्न मस्तक वैदेही को दिखाकर उससे कहता है कि–

प्रदर्श्य किल मस्तकं रघुपतेरसौ मैथिली–
मुवाच श्रृणु जानकी! प्रहतराघवं विस्मरेः।
मदीक्षणसुधे! प्रिये! जनकजेऽधुना रावणं
भजस्व भव भामिनि! प्रथितपट्टराज्ञी च मे।।[2]

हे सीते! मेरी बात सुन! दिवंगत राघव को अब भूल जा! मेरी आँखों के लिए अमृतस्वरूपे, हे जनकजे! तू मेरी पट्टमहिषी बन जा।

अपने पति एवं देवर का छिन्न मस्तक देखकर भी सीता अपने सतीत्व का परित्याग नहीं करती। उस विकट परिस्थिति में असहाय एवं विवश होने पर भी वैदेही, पति रहित अपने जीवन को निरर्थक मानती हुई रावण को कठोर शब्दों में कहती है कि–

प्रसीद दशकन्धर! श्रितमनोरथ! प्रार्थये।
ममापि किल मस्तकं सपदि छिन्धि खड्गाहतैः।।[3]

परिपूर्ण मनोरथ वाले हे दशानन! तू प्रसन्न हो! मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ। खड्ग के आघातों से मेरा भी मस्तक छिन्न कर दे।

कल्पित वैधव्य में भी अपने प्रियतम राघव के प्रति उस सीता की अव्यभिचारिणी निष्ठा को देख एवं उसके सतीत्व के तेज से रावण का हृदय विशीर्ण हो जाता है, वह तत्काल ही अपने प्रयासों की विफलताओं से हताश हो वहाँ से लौट जाता है।

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–12/81, 82
2. वही–14/27
3. वही–14/29

निश्चय ही यह सीता के सतीत्व एवं तेज की दीप्तिमयी गरिमा का ही परिणाम है कि रावण जैसा महाबली भी उसके (नारी) समक्ष परास्त हो जाता है, अनन्य आसक्ति होने पर भी परम तेजस्विनी सीता को रावण अपनी पट्टमहिषी नहीं बना पाता। सीता का यही परम पातिव्रत्य एवं तेजोमय स्वरूप अन्ततः रावण के विनाश का कारण बनता है।

राम के प्रति व्यवहार में भी सीता का तेजस्विनी रूप महाकाव्य में दृष्टिगोचर होता है। सीता यद्यपि विनय, लज्जा, संयम, सहिष्णु और पातिव्रत्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। किन्तु अपनी अवमानना व तिरस्कार होने पर वह अधीर एवं उग्र हो उठती है। वह स्वाभिमानिनी स्त्री है, उसे अपना अपमान तनिक भी सह्य नहीं है यही कारण है कि अग्नि परीक्षा के समय अपने पति के मुख से अपनी उपेक्षा, अवमानना एवं तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर वह मौन नहीं रहती। राघव के यह कहने पर कि—

रणान्तमासीत्तव मे समन्वितिर्न मेऽधुना किञ्चिदपि प्रयोजनम्।

प्रयाहि तत्सम्प्रति यत्र कुत्रचित् इहैव वा तिष्ठ मया न रोत्स्यसे।।[1]

हमारी—तुम्हारी समन्विति (सम्मिलन) संग्राम की समाप्ति का परिणाम मात्र थी। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन (सम्बन्ध) नहीं है। इसलिए, अब तुम जहाँ कहीं भी जाना चाहो—जाओ! अथवा तुम यहीं (लंका में) रहो, मैं अवरोध उपस्थित नहीं करूँगा।

भरी सभा में अपने गुण, शील तथा गौरव को विनष्ट कर देने वाली अपने प्रियतम की परुष वाणी एवं रौद्र स्वरूप को देखकर तेजस्विनी सीता का रोष उमड़ पड़ता है। वह तत्क्षण ही अपनी तर्कपूर्ण बुद्धि से विविध युक्तियों द्वारा राम का प्रतीकार करती है। वह राम के निष्ठुर व्यवहार की कड़ी भर्त्सना करती है। महाकाव्य में राम के प्रति सीता द्वारा कहे गए कठोर वचन निम्नवत् हैं—

प्रभोऽद्य विज्ञातमिदं मयापि यन्न मे पतिस्त्वम् न च वल्लभाऽस्मिते।[2]

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—15/31
2. वही—15/38

स्वामी! मैंने भी आज यह बात जान ली कि न आप मेरे पति (रक्षक) हैं और न ही मैं आपकी वल्लभा (आपको प्रिय लगने वाली)।

न रावणाद् वानरराजबालिनः खरात्कबन्धाद् वरुणाच्च यद्भयम्।
विभेत्यसौ लोकमतात्कियत्पुनः ध्रुवं मयाऽद्यैव तदत्र लोकितम्।।[1]

जो रावण से, वानरराज बाली से, खर एवं कबन्ध से तथा (जलदेवता) वरुण से भी नहीं डरा—वही राम लोकमत से कितना भयभीत है? निश्चित रूप से वह रहस्य मैंने आज यहीं अनुभव किया है।

लोकभय से डरे हुए राघव के व्यवहार की गर्हणा करते हुए सीता वनवासकाल के अपने त्याग, समर्पण व कष्टों को राम के समक्ष पुनर्व्याख्यायित कर प्रश्न उपस्थित करती है कि—

तृणाय मत्वा विभवान् सह त्वया वनं मया स्वीकृतमार्तिसङ्कुलम्।
मनोऽरतिर्मे परिलक्षितातदा शरीरशुद्धिः पुनरद्य लक्ष्यते।।[2]

'ऐश्वर्य—वैभव को तिनका समझ कर मैंने आपके साथ, विपत्तियों से ओतप्रोत, वन में रहना स्वीकार किया। तब तो आपने मेरे मन के अनुराग (प्रेम) को महनीय समझा और आज आप (मेरे आत्मिक प्रेम को व्यर्थ मानकर) मेरे शरीर की पवित्रता पर विचार कर रहे हैं?

रावण द्वारा बलात् स्पर्श किए जाने को अपने विपरीत भाग्य एवं विवशता का परिणाम बताते हुए सीता स्वयं के प्रति राम की पराङ्मुखता को अनुचित बताती हुई कहती है कि—

अनायुधा हीनबलाऽसहायिनी हृता दशास्येन शरीरदुर्ग्रहैः।
न कामकारो मम तत्र राघव! प्रतीपदैवं ननु मेऽपराध्यति।।

---

1. जानकीजीवनम्—डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र—15/29
2. वही—15/41

न गात्रमासीन्मदधीनमर्दितं ततो न वैवश्यमसोढुमर्हसि।
कथं न मे त्वं हृदयं वशानुगं त्वदाश्रयं पश्यसि वीर! पावनम्??[1]

मेरे पास अस्त्र–शस्त्र नहीं थे। मैं बलहीन तथा असहाय थी। उस दशा में रावण ने मेरी देह को दृढ़ता से पकड़ कर अपहरण कर लिया। हे राघव! उस अपहरण (जन्य शरीर–संस्पर्श) में मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं थी। यह अपराध तो मेरे विपरीत भाग्य का था।

पीड़ा से संत्रस्त शरीर पर (उस समय) मेरा अधिकार (वश) नहीं था। अतएव मेरी विवशता को न सह पाना आपके लिए उचित नहीं! हे वीर! आप मेरे उस पावन हृदय को क्यों नहीं देखते जिसके एकमात्र अवलम्ब आप हैं, जो मात्र आपका वशंवद है।

अपने तेज के अनुरुप रोषपूर्ण उद्गारों को अभिव्यक्त करती हुई सीता श्रीराम से अत्यन्त निर्भीकता के साथ यह प्रश्न पूछती है कि–

विमन्यसे वल्लभ! मां प्रदूषितां दशास्य संस्पर्शवशाद्यदि ध्रुवम्।
कथं न तत्यक्थ विराधधर्षितां विदेहजां प्राग्विपिने नु दण्डके।।[2]

वनवास काल में विराध द्वारा अपहृत किए जाने पर भी तो मैं परपुरुष के स्पर्श से दूषित थी, उस समय आपने मुझे क्यों नहीं त्यागा? अपनी अवमानना से आहत सीता राम से उग्रतापूर्वक कहती है कि–

श्रमोऽथवा नाथ! वृथैव किं कृतो हतोऽपि वाली क्रमितश्च सागरः।
अभीप्सितस्त्यागविधिर्यदि प्रभो! मुधा समुद्धर्तुमयाति मैथिलीम्।।[3]

यदि आप मुझे दूषित चरित्र वाली ही मानते हैं तो आपने मेरे उद्धार के लिए व्यर्थ परिश्रम क्यों किया? यदि मेरे परित्याग का विधान ही आपको अभीष्ट था तो क्यों बाली को मारा? क्यों सागर को पार किया?

---

1. जनकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/42, 43
2. वही–15/44
3. वही– 15/45

शत्रु की नगरी में भी अनवरत एकमात्र पति में ही अनुरक्त हृदया सीता, राम के प्राकृत व्यवहार पर कटाक्ष करते हुए कहती है कि–

खलीकृता राक्षसपापकर्मणा स्वजीविततत्यागपरापि केवलम्।
दिदृक्षया प्राणचयं ववार यत् त्वयाऽद्य तन्मे तपनं पुरस्कृतम्।।[1]

एक राक्षस के पापकर्म (अपहरण) से अपमानित की गई, अपने प्राणों को त्याग देने के लिए प्रयत्नशील होती हुई भी मैं, मात्र आपके दर्शन की आकांक्षा से जो प्राणों को संजोए रही (मरी नहीं) मेरी वह सारी तपस्या आज आपने पुरस्कृत कर दी।

सीता के परम तेजस्विनी स्वरूप का चरमोत्कर्ष उस समय देखने को मिलता है जब अपनी गरिमा धर्षित होने पर सीता राम व रावण को 'तुल्य विक्रम' तक कह देती है यथा–

स्वकान्तसंसर्गसुखप्रहारिणावुभौ मदर्थं किल तुल्यविक्रमौ।
पुरन्ध्रि पण्यक्रयविक्रयार्थिनौ निमज्जितावात्मानि राम–रावणौ।।[2]

सीता राम के व्यवहार की निन्दा करती हुई तेज एवं तप की मूर्ति को भोग्या समझने वाले पुरुष समाज की गर्हणा करते हुए अत्यन्त युक्तिपूर्ण वचन अपने पति से कहती है कि–

जिता समर्प्येत धराऽथवा स्वयं नृपेण भुज्येत चिराय राघव!
न किन्तु भार्या रिपुहस्तमोचिता वितीर्यते ह्यत्र परत्रसंगिनी।।[3]

'हे राघव! शत्रु से जीती गई पृथ्वी (विजयी) नरेश द्वारा पुनः शत्रु को लौटाई जा सकती है। परन्तु लोक–परलोक की (अनन्य) संगिनी तथा शत्रु के हाथ से मुक्त कराई गई भार्या किसी को बाँटी नहीं जा सकती।

---

1. जनकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/48
2. वही–15/50
3. वही–15/46

सीता ने अपने इन कटु वचनों से न केवल अपने साथ होने वाले अन्याय एवं प्रताड़ना का भान राम को कराया बल्कि वह अपने पति व रावण के आचरण की तुलना करते हुए राम को रावण से भी भयावह बताती है, यथा–

अभद्रवाचो निजगाद रावणो ह्यलूलुभच्चापि महार्घ वैभवैः।
मदुत्तरैः संक्षुभितः कदर्थनामपि क्वचिन्मे कृतवाननादरात्।।
तथापि दूये न तथा तिरस्कृता निशाचरीणां सविधे रहोगृहे।
स लम्पटो राक्षस इत्यपेक्षया पतिं पुनर्वीक्ष्य न तत्स्मृतिं दधे।।[1]

भले ही रावण ने मुझसे अभद्र बातें कहीं अपने महान् ऐश्वर्य वैभव से (भले ही) प्रलोभित करने का यत्न भी किया, मेरे (कठोर) उत्तरों से संक्षुब्ध होकर किन्हीं अवसरों पर (भले ही) उसने मेरी कदर्थना की। फिर भी, निशाचरियों से घिरी हुई मैं उस एकान्तवास में, रावण द्वारा उस प्रकार तिरस्कृत की जाने पर भी, बुरा नहीं मानती। क्योंकि वह लम्पट (कामान्ध) था, राक्षस था।

अपने प्राण वल्लभ द्वारा किए जाने वाले घोर अपमान से आक्रोशित सीता आगे कहती है कि–

कूले रघूणामुदितः पतिर्मम त्वमार्यसंस्काररतोगुणाग्रणीः।
परन्तु लोकस्य पुरः कदर्ययन् विपन्न भार्यां ननु भासि दारुणः।।[2]

यह सीता के तेजस्विनी रूप का ही परिणाम है कि वह अपने प्रति होने वाले अन्याय को सामान्य नारी की भाँति चुपचाप सहन न करती हुई, अपने पति का भरी सभा के बीच में भी विरोध करने में नहीं सकुचाती है। सीता सामाजिक यश के लिए अपनी पत्नी का हवन करने वाले राम से आवेशपूर्ण वाणी में कहती है कि–

अपने सामाजिक यश के लिए इतनी आसक्ति? और (पत्नी भूत) मेरे उदात्त चरित्र की ऐसी अमर्यादित ला×छना! हे राघव! किस कारण से आप ऐसा कर रहे हैं? आप तो तत्वज्ञ हैं! निश्चय ही पति होने की ऐंठ (दुरभिमान) से आप पत्नी का (साधिकार) हवन कर रहे हैं।[3]

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15/56, 57
2. वही–15/58
3. वही–15/61

अन्ततः अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए सीता बारम्बार अग्निदेव का स्मरण करती हुई झमाके के साथ अग्नि में कूद जाती है। इसके पश्चात् ब्रह्मा व अग्निदेव स्वयं सीता के तेजस्विनी रूप को प्रतिपादित करते हैं। ब्रह्मा सीता के तेज को, अग्नि को भी पवित्र करने वाला बताते हुए कहते हैं कि–

स्ववल्लभां स्वीकुरु भद्र! राघव! कृशानुशक्तिः क्व तदीयदाहने?
स्वयं प्रपूतो›चयाभिमर्शतो न पावयित्रीं प्रपुनाति पावकः।।[1]

'हे राघव आप अपनी वल्लभा को स्वीकार करें! उसे दग्ध कर पाने की शक्ति भला कृशानु (अग्नि) में कहाँ है? जो देवी सीता के अंग प्रत्यंग के संस्पर्शमात्र से स्वयं पवित्र हो उठा हो, वह पावक भला पावयित्री (पवित्रकर्त्री) सीता को क्या पवित्र करेगा?

अग्निदेव भी तेजस्विनी सीता के इसी रूप को प्रकट करते हुए राम से कहते हैं कि–

वैदेहीं सुरसिन्धुपूतचरितां गृह्णीष्व दत्ताम्मया
त्वत्प्राणां मनसा गिरा च कृतिभिः शुद्धामनन्याश्रयाम्।
कः शक्तोऽक्षततेजसैव नितरां स्वेनैव संरक्षितां
संस्प्रष्टुः मनसाऽपि दूषितमनाः सूर्यप्रभां राघव।।[2]

हे राघव! देवनदी गंगा के समान पवित्र चरित्र वाली, मनसा–वाचा–कर्मणा सर्वथा शुद्ध, हृदयमन्दिर में एकमात्र आपको अधिष्ठित करने वाली, आपके ही जीवन से जीवित तथा मेरे द्वारा समर्पित की गई वैदेही को आप स्वीकार करें। अपने ही अक्षत तेज से निरन्तर संरक्षित सूर्यप्रभा–सरीखी इसको, दूषित मनोवृत्ति वाला कौन; भला मन से भी छू पाने में समर्थ है?

---

1. जानकीजीवनम्–डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–15 / 80
2. वही–15 / 84

अन्ततः हम कह सकते हैं कि महाकवि अभिराज जी की सीता निश्चय ही परम तेजस्विनी नारी है। जो अशोकवन में अनेक निशाचरों के समूह से आक्रान्त होने पर भी निडर बनी रहती है एवं रावण सरीखे लम्पट से भी अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकी है। सीता का दृढ़ आत्मविश्वास, अपने प्रति सम्मान की भावना तथा असीम निष्ठा उसके तेजस्विनी स्वरूप के परिचायक हैं। राम द्वारा सीता का तिरस्कार करने पर सीता जिन तर्कपूर्ण वचनों से राम का प्रतिकार करती है, हम कह सकते हैं कि उस स्थल पर सीता के तेजस्विता, दीप्ति, गरिमा, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, आदि गुणों का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। वह ऊर्जस्वित नारी होने के साथ–साथ भूतल की अतीव सुन्दर, परम उज्ज्वल, परम पवित्र स्त्री रत्न हैं।

◈◈◈

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत विषय "**रामकथा को अभिराज राजेन्द्र मिश्र का योगदान**" के अन्त में शोध की उपलब्धि के रूप में हमारे अध्ययन का जो निष्कर्ष निकलता है उसे इस प्रकार निरुपित किया जा सकता है–

पुरातन काल से लेकर अधुनातन वाल्मीकि प्रणीत रामायण, रामकथा आधृत ग्रन्थों का उपजीव्य रहा है। रामायण की इन्द्रधनुषी आभा से आकर्षित होकर प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक काव्य तथा नाट्य ग्रन्थों का प्रणयन, देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य सर्जकों द्वारा अपनी नित्य–नूतन कल्पनाओं व उद्भावनाओं द्वारा उन्मीलित किया जाता रहा है; प्राचीन व अर्वाचीन सभी साहित्यकारों ने स्व–स्व चिन्तनानुसार रामकथा को देखा एवं युगबोध के अनुरूप स्व मन्तव्य द्वारा इसके विविध आयामों की प्रस्तुति का प्रयास किया, यही कारण है कि रामकथा पुरातन होते हुए भी चिर–नवीन, शाश्वत, सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है।

चिर–अभिनव सियाराम की कथा भारत की साहित्यिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक यात्रा का महत्त्वपूर्ण पाथेय रही है। वाल्मीकि के पश्चात् भास, कालिदास, भट्टि, भवभूति, कुमारदास, प्रवरसेन, क्षेमेन्द्र, भोज, राजशेखर, शक्तिभद्र, जयदेव, मुरारि, मायूराज, दिङ्नाग आदि प्राच्य कवियों से लेकर वर्तमान समय तक न जाने कितने साहित्यकारों ने विविध विधाओं में रामकथा आधारित अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर वाल्मीकि पाथेय के पथिक हुए हैं। चूँकि मेरा विषय महाकाव्य पर आधारित है अतः मेरे द्वारा प्रथम शती ई. पूर्व कालिदास से लेकर 21वीं शताब्दी तक के लगभग साठ रामायणोपजीव्य महाकाव्यों का कालक्रमानुसार अध्ययन किया गया है। इनके अतिरिक्त भी रामकथा पर आधारित अनेक महाकाव्य हैं जिनका सम्पूर्ण विवरण अनुपलब्ध होने के कारण, मेरे द्वारा नामोल्लेख मात्र किया गया है। इस तरह

राम–कथा पर आधारित शताधिक महाकाव्यों का अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि के पश्चात् 19वीं शती तक जितने भी रामायणोपजीव्य महाकाव्यों का प्रणयन हुआ है उनमें अधिकांश महाकवियों ने वाल्मीकि रामायण की कथा का ही अनुसरण किया है। यद्यपि इन महाकवियों के महाकाव्यों में भाषा–शैली, वर्णन–कौशल, रचना शिल्प, शब्द संयोजन आदि के क्षेत्र में तो वाल्मीकि रामायण से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है परन्तु परवर्ती किसी भी कवि ने अपने महाकाव्य में इतिवृत्त विषयक कोई विशेष परिवर्तन न करते हुए वाल्मीकि के पद चिन्हों का ही अनुगमन किया है, हाँ इतना अवश्य है कि नाट्य साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम भवभूति ने अपने 'उत्तररामचरितम्' नाटक की कथावस्तु में कई नवीन संयोजना करते हुए रामायण के दुखान्त कथानक को राम–सीता मिलन द्वारा सुखान्त कथानक बनाया है, परन्तु महाकाव्य के क्षेत्र में 19वीं शती तक किसी भी महाकवि द्वारा कथानक सम्बन्धी कोई मौलिक परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। परन्तु 20वीं शती में महाकाव्य के क्षेत्र में आधुनिक कवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र व डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी के नाम रामकथा में किए गए इतिवृत्त विषयक परिवर्तनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि दोनों महाकवियों के कथावस्तु में पार्थक्य भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। फिर भी इन दोनों ही महाकवियों ने रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन के प्रसंग में अपनी अभिनव कल्पनाओं का संयोजन किया है।

महाकवि डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'उत्तरसीताचरितम्' महाकाव्य में सीता विषयक लोकापवाद उठने पर, राम द्वारा सीता का निर्वासन हो, उससे पूर्व ही अपने पति की लोकप्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सीता का स्वेच्छा से वनगमन सम्बन्धी वर्णन प्रस्तुत कर अपने नूतन चिन्तन द्वारा सीता निर्वासन प्रसंग को परिवर्तित किया है। महाकवि द्विवेदी जी ने महाकाव्य में यद्यपि अपने नारीवादी विचारों को पुष्ट किया है परन्तु महाकवि कृत सीता निर्वासन की परिवर्तित कथा का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि महाकवि का सीता निर्वासन प्रसंग में किया

गया सम्पूर्ण प्रयास भी सदियों से सीता निर्वासन के आक्षेप से कलंकित श्रीराम के उदात्त स्वरूप की पुनः प्रतिष्ठापना की दिशा में ही है।

मेरा विषय महाकाव्य से सम्बन्धित है परन्तु यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि 20वीं शती में रामजी उपाध्याय द्वारा प्रणीत 'सीताभ्युदयम्' नाटक में भी, रामजी उपाध्याय ने सीता विषयक लोकापवाद को स्वीकार न करते हुए अभुक्तमूल नक्षत्र में सन्तानोत्तपत्ति को सीता के वन गमन का मुख्य कारण बताकर सीता निर्वासन प्रसंग को नवीन स्वरूप प्रदान किया है परन्तु रामजी उपाध्याय का यह कथा परिवर्तन भी राम के उज्ज्वल चरित्र की स्थापना की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।

डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी व डॉ. रामजी उपाध्याय दोनों के द्वारा परिवर्तित सीता निर्वासन प्रसंग की कथा का अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि यद्यपि दोनों कवियों ने इस प्रसंग में अपनी नव्य–नूतन कल्पनाओं का संयोजन कर यथासंभव कथा को नवीनता प्रदान करने का प्रयास किया है फिर भी दोनों ही ग्रन्थों में सीता का वन में निर्वासन तो होता ही है। सीता निर्वासन का जो प्रश्न सदियों से अनुत्तरित था, वह तो इन दोनों महाकवियों द्वारा किए गए कथा परिवर्तन के बाद भी यथावत् ही रहा। अतः समूचे साहित्य जगत में डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन प्रसंग के अनुत्तरित प्रश्न को परिवर्तित कर अभिनव रामकथा का सूत्रपात किया है। महाकवि ने न तो रामजी उपाध्याय के समान सीताविषयक लोकापवाद को अस्वीकारा है और न ही डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी के समान वनगमन में सीता की स्वेच्छा को कारण रूप में प्रतिपादित किया है, अभिराज जी ने तो अपनी प्रातिभ–प्रतिभा से महाकाव्य के 17वें व 18वें सर्ग में सीता विषयक लोकापवाद का शमन लोकतांत्रिक पद्धति से कर सदियों से अनुत्तरित सीता निर्वासन के प्रश्न का उत्तमोत्तम समाधान प्रस्तुत किया है। रामकथा में इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के साथ ही कविवर्य ने कथा में अन्य सूक्ष्म परिवर्तन भी किए हैं, जो निम्नवत् हैं–

1. द्वितीय अध्याय में महाकवि ने सीता की शिशुकेलियों का वयक्रमानुसार वर्णन किया है।
2. सप्तम व अष्टम सर्ग में महाकवि ने विवाह अवसर पर लोक प्रचलित विविध रीति–रिवाजों, गीतों आदि का वर्णन किया है।
3. नवम सर्ग में देवर–भाभी, देवरानी–जेठानी आदि के व्यंग्यमिश्रित, हास–परिहासपूर्ण व्यवहारों की सुन्दर अभिव्यक्ति महाकवि ने की है।
4. बीसवें व इक्कीसवें सर्ग में महाकवि ने सीता को पुनः पट्टमहिषी पद पर प्रतिष्ठापित कर नारी अस्मिता को गौरवान्वित किया है।

महाकवि अभिराज जी प्रणीत अभिनव प्रस्थान परम्परा वाला 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य प्राचीन व अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य लक्षणों की कसौटी पर खरा उतरता है। महाकवि के महाकाव्य में सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों का सफल सन्निवेश दृष्टिगोचर होता है। महाकवि के द्वारा स्वयं प्रतिपादित महाकाव्य लक्षणानुसार महाकवि ने अपने महाकाव्य में सीता को नायिकात्व प्रदान किया है।

कवि पु›व डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य में सीता चरित्र को प्रधानता देते हुए सीता निर्वासन को स्वीकार न करते हुए अभिनव प्रस्थान परम्परा महाकाव्य का सूत्रपात किया है तथा इस नूतन प्रस्थान परम्परा महाकाव्य द्वारा महाकवि ने ढाई हजार सहस्र वर्ष पुरातनी रामकथा में प्रक्षिप्त रूप से वर्णित सीता निर्वासन के अनुत्तरित प्रश्न का मानव कल्पना से परे समाधान प्रस्तुत कर रामकथा में विशिष्ट योगदान दिया है। महाकवि से पूर्व अधुनातन किसी भी कवि ने सीता निर्वासन पर उठे अनुत्तरित प्रश्नों का ईदृशी सुन्दर समाधान नहीं किया है।

भारत में प्राचीनकाल से ही स्त्रियों को पूजनीय पद प्राप्त था। महाभारत व स्मृतियों में कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी राम के वनवासोपरान्त महर्षि वसिष्ठ द्वारा सीता को सिंहासनारुढ़ कराने का प्रस्ताव रखना, तत्कालीन समाज में स्त्री के सम्मान तथा सर्वोच्च स्थान का प्रतिपादक है, स्त्री के प्रति इस तरह के आस्थावान् विचारों वाले

समाज में परम पावनी, पावयित्री, पतिव्रता जानकी को रजक जैसे क्षुद्र, तुच्छ, अल्पज्ञ, अज्ञ, अविद्य व्यक्ति द्वारा अपनी पत्नी के साथ आवेश में कहे गए वचनों को प्रधान मानकर लोकभय से भयभीत राम द्वारा सीता को निर्वासित करना, वह भी बिना किसी सूचना के, सदियों से प्रज्ञाचक्षु सम्पन्न चिन्तकों, मनीषियों, रामकथावाचकों, साधु–सन्तों, सन्यासियों, महाकवियों, विद्ववत्जनों द्वारा विचारणीय एवं अनुत्तरित ही रहा है और सभी स्वचिन्तन से अपने–अपने तर्क उपस्थित करते रहे हैं। सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो जाने के बाद भी यह प्रश्न, नारीवादी चिन्तकों के मन–मस्तिष्क को अद्यतन उद्वेलित कर देने वाला है। रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता निर्वासन की यह घटना तत्कालीन समाज की दारुणतम घटना है जो प्रत्येक पाठक के अन्तर्मन को झकझोर देने वाली है, साथ ही यह घटना तत्कालीन समाज में स्थित नारी दशा पर एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है, जो हमें भारतीय एवं पाश्चात्य उभय नारीवादी चिन्तकों के प्रश्न व्यूहों में लाकर खड़ा कर देती है। इस निन्दित, कुत्सित, हृदय विदारक कृत्य पर उठे आपत्तिजनक नाना कुतर्कों का तर्कसंगत मीमांसा से पूर्ण सुतरां नितरां हृदय को अभिभूत कर देने वाला लोकाभिराम लोकरंजक समाधान सर्वप्रथम डॉ. अभिराज जी ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से किया है। महाकवि ने महाकाव्य के 17वें व 18वें सर्ग में सीता निर्वासन के सम्पूर्ण घटनाक्रम को अपनी अप्रतिम लेखन कुशलता से, अपूर्व कल्पना से, सहृदयता, उदात्तता, सदाशयता के साथ अत्युत्तम प्रकल्प के रूप में समुपस्थापित किया है, जो कि अलौकिक एवं परमतोष पहुँचाने वाला है। महाकाव्य में सीता के विषय में लोकापवाद उठता है पर लक्ष्मण एवं वसिष्ठ के बुद्धि चातुर्य एवं समवेत प्रयास से नागरिकों की सभा के मध्य में लोकमत से वह अंकुरावस्था में ही शान्त हो जाता है।

महाकवि मिश्र द्वारा सीता निर्वासन प्रसंग के निराकरण में प्रजातांत्रिक प्रणाली का समावेश कवि की आधुनिक जनतांत्रिक दृष्टि का परिचायक है। सीता विषयक लोकापवाद के शमन के लिए महर्षि वसिष्ठ सभा का आयोजन करते हैं जिसमें वे समस्त पौरजनों सहित सीता के पवित्र चरित्र पर पंकप्रेक्षण करने वाले धोबी को भी

आमंत्रित करते हैं। सभा के मध्य में वसिष्ठ सीता के त्याग, तप, शील, सदाचार, पातिव्रत्य आदि गुणों की प्रशंसा करते हैं। गुरु वसिष्ठ के मुख से सीता के दिव्य चरित को सुनकर समस्त पौरजन मौन हो जाते हैं। त्रिकालदर्शी गुरु वसिष्ठ समस्त पौरजनों के समक्ष राम–सीता के देव–स्वरूप, वनवासों के कष्टों, अग्निपरीक्षा आदि प्रसंगों का मार्मिक चित्रण करते हैं साथ ही सीता के उज्ज्वल चरित को धूमिल करने वाले रजक को भरी सभा में अपना पक्ष उपस्थित करने हेतु आमंत्रित करते हैं। रजक भरी जनसभा में आवेशवश प्रोक्त सीताविषयक ला×छन युक्त वचनों के लिए पश्चात्ताप प्रकट करते हुए श्रीराम से बारम्बार क्षमायाचना करता है। वह रजक स्वयं को पापी, अपराधी, आत्महन्ता, अशिक्षित, अज्ञानी तथा भाग्यहीन बताते हुए सभी के समक्ष देवी सीता के पवित्र चरित्र को पापपूर्ण झूठे कलंक से कलंकित करने के झूठे अपराध को स्वीकारता है। करुणावरुणालय भगवान श्रीराम उसके पश्चाताप युक्त वचनों से द्रवित हो उसे क्षमा कर देते हैं।

अभिराज जी से पूर्व सीता निर्वासन के प्रसंग का इस तरह का समाधान अधुनातन किसी भी कवि ने प्रस्तुत नहीं किया है। क्या कारण है कि यह समाधान सर्वप्रथम अभिराज जी को ही सूझा? इसका जवाब भी महाकवि के महाकाव्य में उपलब्ध होता है। महाकवि ने एकादश सर्ग के अन्त में लिखा है कि **'काव्यं यत्क्रियते विदेहतनयासत्प्रेरणाभिर्नवः'** अर्थात् द्वादश सर्ग की कथा से लेकर एकविंश सर्ग तक की अभिनव कथा वाला महाकाव्य जानकी की अन्तःप्रेरणा से ही निःसृत हुआ है। महाकवि के इस वक्तव्य पर आक्षेप करते हुए कुछ विद्वान कहते हैं कि क्या अभिराज जी आर्षद्रष्टा कवि हैं? क्या वे वाल्मीकि हैं कि देवी सीता उन्हें अपना चरित लिखने के लिए प्रेरित करती थी? इन सब आक्षेपों के पश्चात् भी मेरा यह मत है कि निश्चय ही वैदेही की घनीभूत पीड़ा ने महाकवि के अन्तर्मन का स्पर्श किया था, जिसके परिणामस्वरूप ही महाकवि को ऐसा अप्रतिम समाधान अपनी नैसर्गिक काव्य प्रतिभा एवं देवी प्रेरणा से प्रस्फुटित हुआ।

महाकवि द्वारा प्रस्तुत सीता निर्वासन का समाधान प्रत्येक नर–नारी के चित्त को हृदयाह्लाद से अनुप्राणित कर देने वाला है।

कविवर्य ने आधुनिक जनतांत्रिक पद्धति का आश्रय लेकर सीता निर्वासन प्रसंग का जो सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है वह महाकवि के नारी अस्मिता सम्बन्धी विचारों को पुष्ट करने वाला है। आज नारी को समाज में पुरुष के समान ही सम्मान एवं अधिकार प्राप्त हैं परन्तु फिर भी हमारे समाज में पुरुष सत्ता ही प्रधान है। नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान के लिए आज भी छटपटा रही है। यही कारण है कि नारी अस्मिता के प्रति जागरुक अनेक कविगण नारी को अपने काव्य अथवा नाट्य ग्रन्थों की नायिका बनाकर विपुल साहित्य की सर्जना कर रहे हैं। रामायण से लेकर अधुनातन प्रणीत अग्निपरीक्षिता सीता का उसके पति द्वारा परित्याग वह भी बिना किसी सूचना के, नारी के प्रति युगों से चली आ रही पुरुष समाज की नृशंस क्रूरता, बर्बरता एवं निरंकुशता का परिचायक है रामकथा में यह दारुणतम प्रसंग है, जो सदियों से नारी अस्मिता के पतन की दुःखद कहानी वर्णित करता आ रहा है। सम्पूर्ण जगत के लिए रत्नस्वरूपा वैदेही की यह अवमानना आधुनिक नारीवादी चिन्तक कवि अभिराज जी को अभिप्रेत नहीं है, यही कारण है कि उन्होंने जानकी के दिव्य चरित के चित्रांकन द्वारा महाकाव्य में अनेक स्थलों पर नारी अस्मिता सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया है। परन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य में सत्रहवें व अठारहवें सर्ग इस दृष्टि से अन्यतम हैं। इन दोनों सर्गों में महाकवि ने लक्ष्मण व वसिष्ठ के उद्‌गारों द्वारा अपने नारी अस्मिता विषयक विचारों को अभिव्यक्त किया है जिनका विस्तृत उल्लेख षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

कविवर्य अभिराज जी ने अपने महाकाव्य द्वारा सीता के तेजस्विनी दीप्तिमय स्वरूप को भी पुनः प्रतिष्ठापित किया है। रामायण के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि की सीता परम तेजस्विनी नारी थी वह कहीं भी दीन–हीन, अबला दृष्टिगत नहीं होती है। परन्तु रामायण के पश्चात् समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप नारी की दशा के अनुरूप ही सीता के चरित्र में भी

युगानुकूल परिवर्तन कवियों की लेखनी से निःसृत हुआ है। जिसका प्रभाव परवर्ती साहित्य में वर्णित सीता के चरित्र में स्पष्टतया देखा जा सकता है। भास के काल में वाल्मीकि की तेजस्विनी सीता शांत एवं गंभीर हो गई, कालिदास के समय में वह एकदम मौन हो गई तथा भवभूति के साहित्य जगत में तो वाल्मीकि की ओजस्विनी क्षत्राणि सीता नितान्त निष्प्राण करुणा की प्रतिमूर्ति बन गई। इसके पश्चात् परवर्ती साहित्य में भी सीता का ऐसा ही चित्रांकन किया जाता रहा है परन्तु वर्तमान नारी सशक्तिकरण के युग में नारी की स्थिति में सामाजिक चेतना के फलस्वरूप परिवर्तन लक्षित होते हैं जिसका प्रभाव आधुनिक साहित्य पर भी परिलक्षित होता है। यही कारण है कि कविवर्य अभिराज जी ने सीता को परम तेजस्विनी नायिका के रूप में चित्रित करते हुए अपने महाकाव्य में अभिनव जानकी को पल्लवित पुष्पित किया है, जिसकी अपेक्षा सदियों से थी।

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सहस्राब्दियों से भूतल के विस्तीर्ण वितान पर प्रसृत रामकथा की अभिनव परम्परा की प्रतिष्ठापना कर महाकवि ने अग्रवर्ती कवियों को नव उपजीव्य प्रदान किया है तथा नारी अस्मिता की समुपस्थापना कर सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना की उदात्तता को प्रमाणित किया है। निः सन्देह ही बीसवीं शताब्दी का यह शीर्षस्थ महाकाव्य है।

◈◈◈

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

–: सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अग्निपुराण – आनंदाश्रम मुद्रणालय, सन् 1957
2. अद्‌भुत रामायण – खेमराज, श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई–4।
3. अध्यात्मरामायण – अनुवादक–मुनिलाल, गीता प्रेस गोरखपुर।
4. अनर्घराघव – मुरारि, सं. रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा संस्कृत विद्या भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण–1960
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास, सं. डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन।
6. अभिनव काव्यां–लंकारसूत्राणि – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, सं. डॉ. रमाकान्त पाण्डेय,जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, सन् 2009
7. अभिराजयशोभूषण – डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2006
8. अभिषेक नाटक – भास, सं. रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी–1
9. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा – श्री केसवराव मुसलगाँवकर, राजेश्वरशास्त्री मुसगलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004
10. आधुनिक संस्कृत नाटक – रामजी उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1996
11. आनन्दरामायण – अनु. पाण्डेय रामतेज शास्त्री, पंडित पुस्तकालय, काशी सन् 1958
12. आश्चर्यचूड़ामणि – श्री शक्तिभद्र महाकवि, श्री बालमनोरमा प्रेस, मेलापुर, मद्रास सन् 1933
13. उत्तरपुराण – श्री गुणाभद्राचार्य, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस।
14. उत्तररामचरितम् – भवभूति, अनु. पं. शेषराज शर्मा शास्त्री, विद्याविलास प्रेस बनारस, सन् 2006
15. उत्तरसीताचरितम् – रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास संस्थान, वाराणसी–5, सन्–1990
16. उदारराघव – श्री मल्लाचार्य, गोपाल नारायण मुद्रणालय, बम्बई।
17. उर्मिलीयम् – पं. नारायण शुक्ल, सन् 1973

18. काव्यप्रकाश – आचार्य मम्मट, सं. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, नवीन संस्करण 2001

19. काव्यादर्श – दण्डी, सं. डॉ. जमना पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी

20. काव्यानुशासन – हेमचन्द्र, टीकाकार डॉ. रामानन्द शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी

21. काव्यालंकार – भामह, भाष्यकार, डॉ.रामानन्द शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी

22. काव्यालंकार – रुद्रट, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

23. कुन्दमाला – दिङ्नाग सं. कृष्णकुमार धवन–कृष्णानंद शास्त्री, भारतीय संस्कृत भवन जालन्धर, प्रथम संस्करण 1955

24. कुमारसंभव – महाकवि कालिदास, व्या. डॉ. सुधाकर मालवीय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस।

25. चौरपंचाशिका – श्री बिल्हण, व्या. प्रो. ब्रजेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण वि. सं. 2070

26. जानकीजीवनम् – डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1988

27. जानकीजीवनम् – डॉ. दशरथ द्विवेदी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

28. जानकीपरिणयः – महाकवि मुकुन्द, सं. अच्युतनाथ झा, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् 1986

29. जानकीहरणम् – कुमारदास सं. ब्रजमोहन व्यास, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, सन् 1966

30. त्रिवेणी कवि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व – सं. (श्रीमती) डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री', वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद, मार्च 2005

31. दशरूपकम् – श्री धनंजय, सं. डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण–1969

32. दशावतारचरित – क्षेमेन्द्र, पं. दुर्गादास और निर्णयसागर प्रेस बम्बई, सन् 1930

33. धर्मशास्त्र का इतिहास – डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे, द्वितीय खण्ड।

34. नव्यकाव्यतत्वविमर्शः – रहस बिहारी द्विवेदी जी।

35. नैषधीयचरितम् – श्रीहर्ष, व्या. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, तृतीय संस्करण 2010।

36. पउमचरित – विमलसूरि, अनु. देवेन्द्र कुमार जैन, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला 26,30,31

37. प्रतिमा नाटक – भास, टीका, सं. तरू. वै. गणपति शास्त्री–श्रीधर मुद्रण यंत्रालय, त्रिवेन्द्रम्, 1924

38. प्रशान्तराघवम् – डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद, जनवरी 2008 ।

39. प्रसन्नराघवम् – जयदेव, अनु. पं. शेषराज शर्मा शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन बनारस, सन् 1956

40. बालरामायण – राजशेखर सं. गोविन्ददेवशास्त्री, मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस, सन् 1969

41. भट्टि और उनका रावणवध महाकाव्य – डॉ. कैलाशनाथ पाठक, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् 1994

42. भट्टिकाव्य – महाकवि भट्टि, अनु. पं. शेषराज शर्मा शास्त्री, हरिदास संस्कृत ग्रन्थ माला 136, जयकृष्णदास, हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस सन् 1951

43. भरतचरितामृतम् – डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल, शारदा सदन मुजफ्फर नगर, 1 जुलाई 1974

44. भामिनीविलास – पण्डितराज जगन्नाथ, सं. डॉ. रेखा शुक्ला, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी सन् 2006

45. मनुस्मृति – सं. डॉ. राकेश शास्त्री, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999

46. महावीरचरित – भवभूति, सं. आचार्य रामचन्द्रमिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस सन् 1955

47. मेघदूतम् – महाकवि कालिदास, सं. डॉ. विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ सन् 2001

48. रघुकुलकथावल्ली – श्री कृपाराम त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली सन् 2004
49. रघुवंश – महाकवि कालिदास अनुं. पं. श्री लक्ष्मी प्रपन्नाचार्य; सं. श्री रामचन्द्र झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी सन् 2012
50. रघुवीरचरित – मल्लिनाथ, सं. डॉ. मंजू उपाध्याय, संपूर्णानंद विश्वविद्यालय, वाराणसी
51. रामकथा – फादर कामिल बुल्के, पंचम संस्करण 1997ई. हिन्दी परिषद् हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।
52. रामकाव्यों में नारी – डॉ. श्रीमती विद्या, प्रकाशन संस्थान 4615/12 दयानन्द मार्ग दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985।
53. रामचरितम् – श्री पद्मनारायण त्रिपाठी, पूर्वभाग– 1965, उत्तरभाग– 1961।
54. रामचरितमानस – तुलसीदास जी, मानसांक (कल्याण पत्रिका) गीताप्रेस गोरखपुर, सन्– 1958।
55. रामायण – वाल्मिकी, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2069, बयालिसवाँ पुनर्मुद्रण।
56. रामायण में नारी – डॉ. अर्चना विश्नोई, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, सन् 2002।
57. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली सन् 2002
58. विक्रमांकदेवचरितम् – श्री बिल्हण, व्या. डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस,वाराणसी, (प्रथम सर्ग),सन्–2010।
59. विभिन्न युगों में सीता का चरित्र–चित्रण – डॉ. सुधा गुप्ता, प्रज्ञा प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1978
60. श्रीरामकीर्तिकाव्यम् – प्रो. डॉ. सत्यव्रतशास्त्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली।
61. श्री रामचरितम् – पण्डित रामविशाल त्रिपाठी शास्त्री, सन् 1970
62. श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् – नित्यानंद शास्त्री, आचार्य नित्यानंद स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थानम्, गिरिजा निकेतनम् ए–136, लेक गार्डेन, कोलकाता।
63. श्रीरामविजय – श्री रूपनाथ उपाध्याय, सं. श्री नारायण शास्त्री खिस्ते, सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय, वाराणसी।
64. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा – डॉ. केशव मुसलगाँवकर, सं. राजशेखर शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी सन् 2004

65. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी सन् 2001

66. संस्कृत साहित्य का इतिहास– वाचस्पति गौरेला, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी–1, सन् 1960

67. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, पुनर्मुद्रण सन् 2001

68. संस्कृत हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, अष्टम संस्करण, 2004

69. साहित्य दर्पण – कविराज विश्वनाथ, सं. डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ सन् 1974

70. सीताभ्युदयम् – रामजी उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी सन् सन् 1998

71. सीता–रावण संवाद झरि – श्रीराम शास्त्री, श्री सीतारामशास्त्री, सं. आचार्य रमेश चतुर्वेदी, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, सन् 2012

72. सुगमरामायणम् – डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल, देववाणी परिषद्, दिल्ली–6, वाणी विहार नई दिल्ली, सन् 1978

73. सौमित्रिसुन्दरीचरितम् – श्री भवानीदत्त शर्मा, सन् 1958

74. स्वातंत्र्योत्तरयुग में संस्कृत रामकाव्य – श्रीमती (डॉ.) प्रतिमा शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली सन् सन् 1993

75. हनुमान्नाटक – श्री दामोदर मिश्र, अनु. श्री मोहनदास, खेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई।

आंग्ल भाषा के ग्रन्थ–

History of Classical Sanskrit Literature - M. Krishnamachariar, Tirumalai-Tirupati Devastha-names press, Madras-1997

76. In search of Sita : Revisiting Mythology - Edited by Malashrilal & Namita Goghle. Yatra books, Penguin books (Reprinted-2014)

◈◈◈